हिन्दी समिति ग्रन्थमाला—१२८

# अवध की लूट

## (डक्वायटी इन एक्सेलसिस)

लेखक
मेजर आर० डब्ल्यू० बर्ड

अनुवादक
श्री राजेन्द्र पाण्डेय

हिन्दी समिति, सूचना विभाग,
उत्तर प्रदेश, लखनऊ

प्रथम संस्करण
१९६६

मूल्य
३.५०
तीन रुपये, पचास पैसे

मुद्रक
नरेन्द्र भार्गव
भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी

## प्रकाशकीय

भारत में व्यापार करने का बहाना लेकर आने वाली ईस्ट इंडिया कम्पनी के अर्थ-पिशाचों की वंचकता और कुकृत्यों के समाचार ब्रिटिश पार्लमेंट में भी पहुँचे थे। जन-प्रतिनिधियों ने सरकार से वस्तुस्थिति की रिपोर्ट माँगी थी, किन्तु कम्पनी के स्वार्थी एवं महत्त्वाकांक्षी अधिकारियों ने वास्तविकता पर पर्दा डाल कर उन्हें गलत सूचनाएँ दीं। धोखा-धड़ी करके यहाँ की रियासतों के राज-काज में वे हस्तक्षेप करते रहे और अंत में षड्यन्त्रों द्वारा उन्हें हड़प कर ही चैन ली।

प्रस्तुत पुस्तक के विवरण कम्पनी की धनलोलुपता और राज्य-लिप्सा के ज्वलंत प्रमाण हैं। इन्हें पढ़ कर पाठकों को पता चल जायगा कि अवध के शांति-प्रिय, संपन्न एवं सुसंस्कृत राज्य को कुचक्र फैला कर उसने किस भाँति हस्तगत किया और यहाँ के नवाबी घराने को तबाह कर रईसों की शान मिट्टी में मिला दी तथा जनता का बुरी तरह शोषण कर उसे बर्बाद किया।

ऐतिहासिक तथ्यों की दृष्टि से विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक विशेष रूप से अध्ययन योग्य है।

सुरेन्द्र तिवारी

**सचिव, हिन्दी समिति**

# विषय-सूची

# प्रस्तावना

सन् १६०१ में इंग्लैण्ड की महारानी एलिज़ाबेथ ने ईस्ट इंडिया कम्पनी को भारत से व्यापार करने की आज्ञा प्रदान की। सन् १८५५ में कुछ ब्रिटिश यात्री व्यापार के उद्देश्य से भारत आये। मुगल सम्राटों (शाहजहाँ और औरंगज़ेब) तथा बंगाल के नवाब ने उनका स्वागत किया और उनके व्यापार को प्रोत्साहन दिया। सन् १७५६ में बंगाल के नवाब अली वर्दी खाँ के उत्तराधिकारी के रूप में उसका पौत्र सिराजुद्दौला सिंहासनारूढ़ हुआ। उसने अंग्रेज़ों को व्यापार करने की अनुमति न देकर उन्हें बंगाल से निकाल दिया। १७५७ में लार्ड क्लाइव ने सिराजुद्दौला को युद्ध में परास्त किया और प्रथम बार कंपनी और नवाब के बीच संधि हुई। क्लाइव का तो कुछ और ही इरादा था, इसलिए प्लासी का युद्ध हुआ। नवाब का सेनापति मीरजाफर अंग्रेज़ों से मिल गया। पुरस्कारस्वरूप मीरजाफर सिंहासनारूढ़ किया गया। किंतु उससे भी कंपनी को पूर्ण तृप्ति न हुई। उसे भी उतार कर मीर कासिम को नवाब बनाया गया। इस प्रकार कठपुतलियों की भाँति नवाब बदले जाने लगे।

मुगल साम्राज्य के अंतिम काल में अवध राज्य का विकास हुआ था। १७२० में दिल्ली के बादशाह मुहम्मद शाह ने सौदागर मु० अमी को आगरा का सूबेदार बनाया। मु० अमी (सआदत खाँ) अवध राज्य के प्रथम नवाब (शासक) थे। ४ फरवरी, १८५६ को लखनऊ में ईस्ट इंडिया कंपनी के रेजिडेण्ट जनरल आउट्रम ने अवध के ग्यारहवें नवाब वाजिद अली शाह को गद्दी से उतार कर "अवध की प्रजा के हित एवं सुख के हेतु" अवध के शासन का भार अपने हाथों ले लिया। अवध में नवाबी शासन केवल १३६ वर्ष ३ मास एवं २४ दिन रहा। नवाबों के आधीन अवध का क्षेत्रफल २४,००० वर्गमील था और जनसंख्या लगभग ५०,००,००० थी। अपनी उर्वर भूमि के कारण अवध को 'भारत का उद्यान' कहा जाता था।

ईस्ट इंडिया कंपनी का एकमात्र उद्देश्य भारत को लूट कर अधिक से अधिक धन अर्जित करना था। बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा का अपहरण करने के उपरांत उसने अवध की ओर हाथ बढ़ाया। नवाब शुजाउद्दौला के साथ बक्सर युद्ध के पश्चात् सन् १७६५ ई० में हुई प्रथम संधि से अवध की लूट का श्रीगणेश हुआ। कंपनी ने युद्ध के दंडस्वरूप ५० लाख रुपया नवाब से माँगा। २० लाख रुपया तो नवाब ने तुरंत दे दिया

और ३० लाख की ज़मानत में चुनारगढ़ का किला अंग्रेज़ों को सौंपना पड़ा। अंततः जब ३० लाख रुपये का भुगतान भी हो गया तब भी किला वापस नहीं किया गया। इसके अतिरिक्त नवाब को फ्रांसीसी सैनिक हटा कर कंपनी की सेना रखनी पड़ी। सन् १७७३ में बनारस की संधि हुई जिसके अनुसार नवाब को कंपनी की सेना का खर्च २,१०,००० रुपये मासिक देना पड़ा। १७७५ में नवाब की मृत्यु हो गयी।

१७७५ में शुजाउद्दौला का पुत्र एवं उत्तराधिकारी आसफुद्दौला सिंहासनारूढ़ हुआ। उसने फैज़ाबाद छोड़कर लखनऊ राजधानी बनायी। लखनऊ का ऐश्वर्य बढ़ गया। आजकल लखनऊ में जो पुरानी इमारतें हम देखते हैं, वे अधिकांश आसफुद्दौला की ही बनवायी हुई हैं। आसफुद्दौला के उपरांत उसका भाई सआदत अली खाँ सिंहासन पर बैठा। उसके काल में कोई महत्त्वपूर्ण घटना नहीं घटी। सआदत अली खाँ के बाद उसके पुत्र गाज़ीउद्दीन हैदर उत्तराधिकारी हुए। यदि कोई नवाब जनहित के लिए कुछ करना चाहता था तो अंग्रेज़ उसमें अड़चनें डालते थे। इसका ज्वलंत उदाहरण यह है कि सिंचाई की सुविधा के लिए गंगा तथा गोमती के पानी को मिला कर नवाब गाज़ीउद्दीन ने एक नहर का निर्माण कराया, जिसे कंपनी ने चलने ही न दिया।

लखनऊ हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए प्रसिद्ध था। अपने स्वार्थों के हित में अंग्रेज़ इस सद्भावना से जलते थे और फूट डालने का प्रयत्न करते रहते थे। हेबर नामक पादरी ने अवध का अच्छा भ्रमण किया था। उसने वहाँ की सुव्यवस्था, कृषि, उद्योग-धंधों एवं परिश्रमी कृषकों की प्रशंसा की है। अंग्रेज़ों को ये बातें खटकती थीं और उन्होंने अवध का शोषण कर उसे लूटने में कोई कसर उठा न रखी।

गवर्नर जनरल मायरा ने नेपाल के विरुद्ध युद्ध के लिए नवाब से १ करोड़ रुपये ऋण के रूप में और बाद में ५० लाख रुपये दान स्वरूप लिये। १८१६ के ऋण के भुगतान में उसे खैरागढ़ और नेपाल की तराई का वन प्रदेशीय क्षेत्र दे दिया गया। साथ ही उसे 'बादशाह' की उपाधि से विभूषित किया गया। कंपनी को नवाब से प्रत्यक्ष रूप में प्राप्त धनराशि के अतिरिक्त लूट-खसोट की भी आय होती थी। नवाब शुजाउद्दौला की बेगम के साथ कंपनी ने बहुत बुरा व्यवहार किया था और उसकी मृत्यु के उपरांत उसका १ करोड़ रुपया हड़प लिया। बेगम के नौकर हुसेन, अलीजान आदि को २,००० रुपये मासिक पेंशन नवाब से दिलवायी।

१८२७ में ग़ाज़ीउद्दीन की मृत्यु के उपरांत उसका पुत्र नासिरुद्दीन उत्तराधिकारी बनकर गद्दी पर बैठा। यह नवाब बड़ा दानी व संगीत-प्रेमी था। उसी ने लखनऊ को 'उद्यानों का नगर' बना दिया। इसने एक अंग्रेज़ स्त्री से विवाह किया और उसका नाम मुकद्दरा औलिया रखा। इसी बीच कंपनी ने कर्ज के रूप में नवाब से ६२,४०,०००

रुपये लिये। इसका ब्याज भी नवाब को न मिला। यद्यपि यह नवाब बिलासी था, किंतु इसने प्रजा के हित के लिए अस्पताल बनवाये, ठगी, डकैती और गुलामी की प्रथा को समाप्त किया। रेजिडेंसी पर नवाब के २०,००० रुपये वार्षिक व्यय होते थे। इस धनराशि को बढ़ा कर ५०,०००रुपयें किया गया, क्योंकि इसमें गौरांग प्रभु निवास करते थे। नवाब के दीवान आग़ामीर कुशल शासक थे। उनकी कुशलता से कंपनी को लूट का अवसर न मिलता था। अतः उन्हें पदच्युत कर बंदी बनवा दिया गया। इसी बीच एक कर्मचारी फ़ज्ल अली ने नवाब के कोष से ३५ लाख रुपया ग़बन किया। नवाब ने उसे बंदी बनाने की आज्ञा दी। उस पर कंपनी के रेजिडेण्ट ने उसे शरण दी और वह रुपया लौटाने न दिया। इस प्रकार कंपनी नवाब के शासन में हस्तक्षेप करती थी। नवाब के काल में अच्छे सुधार हो रहे थे। इसलिए निकम्मे मंत्रियों को रेजिडेंट शरण दे रहे थे और बार-बार धमकी देते थे कि यदि "अव्यवस्था" समाप्त न हुई तो हम राज्य छीन लेंगे।

नसीरुद्दीन हैदर की मृत्यु होते ही अवध के बुरे दिन आये। अव सिंहासन पर उत्तराधिकार का प्रश्न उठा, क्योंकि नसीरुद्दीन ने मुन्नाजान को अपना वैधानिक पुत्र नहीं माना था। अंग्रेजों ने इस सुअवसर का लाभ उठाकर खूब धन ऐंठा। मृत्यु के समय नसीरुद्दीन की अवस्था केवल ३७ वर्ष की थी। अतः उत्तराधिकार के प्रश्न पर वे विचार तक न कर सके थे। किसी प्रकार बहुत रक्तपात के पश्चात् मुन्नाजान गद्दी पर बैठे, किन्तु अंग्रेजों ने विशेष धन और घूस लेकर मुन्नाजान को बंदी बनाया और नसीरुद्दौला को गद्दी पर बैठाया। नसीरुद्दौला वृद्ध एवं रोगी था। उसके शासनकाल में रुपया लूटना और भी सरल था। यह गाज़ीउद्दीन का तीसरा भाई था। इसी बीच कंपनी के सिपाहियों ने इतनी लूट मचायी कि अवध का सारा कोष रिक्त हो गया। नसीरुद्दौला नाम बदल कर मुहम्मद अलीशाह कर दिया गया। उसके जो मंत्री नियुक्त किये गये वह कंपनी के पिट्ठू थे और उन्हें कंपनी नवाब से ३,००० रुपया मासिक किसी न किसी रूप में दिलवाती थी। नवाब को यह असह्य हो गया, अतः अंत में हकीम मेंहदी को प्रधान मंत्री बनाया। नवाब ने अपने ५ वर्ष के शासनकाल म लखनऊ में ११ विशाल इमारतें बनवायीं। नवाब मुहम्मद अली कंपनी के इतने भक्त थे कि प्रत्येक कार्य रेजिडेंट से आज्ञा लेकर करते थे। १८३८ में नवाब ने कंपनी को ४ प्रतिशत ब्याज पर १७,००,००० रुपया कर्ज दिया। इससे कंपनी उस पर और प्रसन्न हुई और उसे बधाई दी। १८३७ में कंपनी ने अपने मन के मुताबिक एक संधि करायी। नवाब आनाकानी कर भी क्या सकता था, क्योंकि इसी शर्त पर उसे गद्दी मिली थी। इस संधि के अनुसार कंपनी की मातहती में एक सहायक सेना बनी, जिसमें तोपखाना भी था। इसमें अंग्रेज़ अफ़सर नियुक्त किये गये और इसका

उपयोग रेजिडेंट ही कर सकता था। इस पर १६ लाख रुपया वार्षिक व्यय होता था, जो नवाब को देना पड़ता था। इस संधि में यह भी निश्चित हुआ कि अवध के राज्य में जहाँ कुप्रबन्ध हो, वहाँ रेजिडेंट अपने प्रशासक रख कर शासन करवा सकता था। किंतु इससे कंपनी की बड़ी बदनामी हुई। अतः १८३९ में दूसरी संधि हुई। इसके अनुसार नवाब अपनी सेना रख सकते थे, किंतु कंपनी के आग्रह पर उसका आकार कम करना आवश्यक था। नवाब कंपनी की अधीनता में ही पलटन रख सकते थे। यह भी शर्त थी कि नवाब की सेना में ब्रिटिश अफसर भी होंगे और उनकी राय के अनुसार ही कार्य होगा। इसके अतिरिक्त यदि नवाब कंपनी के आग्रह के अनुसार न चलें और उनके राज्य में कुप्रबंध हो तो कंपनी वहाँ अपना शासन कर सकती थी। पंजाब में अंग्रेजों और सिक्खों के बीच जो युद्ध हुआ उसमें और किसी ने साथ न दिया, किन्तु मुहम्मद अली ने धन-जन से सहायता की। ५ वर्ष के शासन के उपरांत वृद्ध राजा की मृत्यु हो गयी।

सन् १८४२ में मुहम्मद अली की मृत्यु के उपरांत उसका पुत्र अमजद अली उत्तराधिकारी बना और सिंहासन पर बैठा। यह बहुत सीधा-सादा व्यक्ति था। इसने अंग्रेज़ों की लूट में कोई व्यवधान नहीं पहुँचाया। यह इतना अय्याश था कि लोग इसे 'हज़रत' कहते थे। जहाँ यह दफनाया गया वहीं आज की हज़रतगंज कालोनी स्थित है। इसने शासन की ओर ध्यान नहीं दिया। अपने ज्येष्ठ पुत्र मुस्तफा अली को युवराज न बना कर दूसरे पुत्र वाजिद अली शाह को बनाया। उसका कहना था कि मुस्तफा की माँ से जब उन्होंने ब्याह किया था, मुस्तफा डेढ़ वर्ष का बालक उसकी गोद में था (अर्थात् वह नवाब का पुत्र न था)। नवाब ने अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किये। लखनऊ और कानपुर के बीच ५ लाख रुपये लगा कर सड़क बनवायी। लंदन से बना-बनाया पुल मँगा कर 'लौह पुल' निर्मित कराया। इसमें तीन लाख रुपये व्यय हुए। इसी के समय में कंपनी का अफगानिस्तान से युद्ध छिड़ गया। इसमें नवाब ने ७०० घुड़सवार और २० लाख रुपये कंपनी को भेंट दिये। १८४७ में लगभग ४९ वर्ष की अवस्था में उसका देहांत हो गया।

१८४७ में अवध का अंतिम नवाब वाजिद अली शाह सिंहासन पर बैठा। यह साहित्य प्रेमी एवं जनप्रिय था। इसने अन्य छोटी-छोटी इमारतों के अतिरिक्त क़ैसरबाग के प्रसिद्ध भवनों का निर्माण कराया। इसमें ८०,००,००० रुपये व्यय हुए। इसके उपरांत कैसरबाग बारादरी का निर्माण कराया। गोमती के किनारे छतरमंजिल उसका निवासस्थान था। नवाब जिस तत्परता से राज्यकार्य करता था, वह अंग्रेज़ों से न देखा गया। उन्होंने हकीम को अपनी ओर मिलाकर राजमाता मलका किश्वर द्वारा कहला दिया कि नवाब का इतना कार्य करना स्वास्थ्यप्रद नहीं है और उसने जीर्णज्वर होने की

आशंका व्यक्त की। अतः नवाब द्वारा कवायद आदि कराने का कार्य समाप्त हो गया। कुछ का कहना है कि किसी हकीम के सुरमे से उसकी नेत्र-ज्योति जाते-जाते बची थी। कर्नल स्लीमैन के अनुसार नवाब ने प्रारंभ में बहुत अच्छे ढंग से कार्य किया, किंतु बाद में सारा कार्य मंत्रियों पर छोड़ दिया। इसका कारण यह था कि मलका किश्वर ने उसके भोग-विलास के सभी साधन एकत्रित कर दिये। हकीमों ने यही उसका उपचार बताया। किंतु नवाब की वास्तविक बीमारी थी अंग्रेज़ों द्वारा उत्पन्न उलझनें, उनकी चालाकी और उनका लूटने का दाँव।

वाजिद अली शाह का मंत्री अमीनुद्दौला बहुत ही योग्य प्रबंधक था, इसलिए अंग्रेज उसे हटाने और मन मुताबिक मंत्री बनाने का षड्यंत्र करने लगे। अवध का इतिहास इस बात का साक्षी है कि जो जितनी ही लगन से काम करता था, कंपनी को उतना ही अप्रिय लगता था। अंग्रेज़ों ने नकी नामक एक घूसखोर को मंत्री बनाने का निश्चय किया। फलतः अंग्रेज़ों ने अमीनुद्दौला को बीच सड़क पर पिटवा दिया और उसके ५०,००० रुपये लुटवा लिये। अपराधी बंदी बनाये गये, किंतु अंग्रेज़ों ने उनकी पैरवी की। अंततोगत्वा अमीनुद्दौला को पदच्युत् कर दिया गया और सय्यद अली नकी को प्रधान मंत्री बनाया गया। नकी की नियुक्ति दरबारी षडयंत्र और धन के प्रभाव से हुई। अवध के लिए यह दुर्भाग्य की बात रही कि इतना भ्रष्ट व्यक्ति मंत्री हुआ। वह अंग्रेज़ों का पिट्ठू तो था ही, नवाब को भी पक्ष में करने के लिए अपनी पुत्री का ब्याह वाजिद अली शाह से कर दिया। तत्पश्चात् नकी ने नवाब के विरुद्ध कुचक्र एवं षडयंत्र रचना प्रारंभ किया। वह राज्य में बिल्कुल रुचि नहीं लेता था। नवाब उससे छुटकारा पाने की युक्ति सोचने लगा, किंतु उसे इसलिए निकाल न पाता था कि कंपनी उसके पक्ष में थी। वह तो ऐसा निकम्मा मंत्री चाहती ही थी जिससे उसके लिए अवध के शासन को निर्बल बना कर लूटना सुविधाजनक हो सके। अवध के शासन को बड़ी भयंकर कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। अवध का वास्तविक शासक रेजिडेंट था, नवाब नहीं, यह नवाब को भी पता था।

नवाब वाजिद अली शाह धीरे-धीरे नकी के चंगुल में आते गये। अंग्रेज़, बेगमें और दरबारी सभी उनका शोषण कर रहे थे। शासन शिथिल होता गया। अधिकारी और अहलकार भी नवाब की चिंता नहीं करते थे। नवाब के शासन को निकम्मा बनाने के लिए रेजिडेंट पूर्ण प्रयास करता था। फलतः रेजिडेंट इतना शक्तिशाली हो गया कि वह नवाब के प्रधान न्यायाधीश के फैसलों की अपील भी सुनने लगा। तहसीलदारों की नियुक्ति भी रेजिडेंट करने लगा। बादशाह जिसे दंड देता, रेजिडेंट उसे प्रश्रय देता। बादशाह जिन्हें नौकरी से निकाल देते, उनके लिए रेजिडेंसी में नौकरी के द्वार खुले थे।

नवाबी शासन में और विघ्न डालने के लिए रेजिडेंट स्लीमैन ने अपना पृथक् दरबार लगाना प्रारंभ किया और जनता से प्रार्थना-पत्र लेने लगा। बादशाह के दरबार के खारिज मुकदमों पर स्लीमैन साहब ने सुनवाई भी प्रारंभ कर दी। कंपनी के भक्त तहसीलदारों को प्रशंसापत्र और उच्चपद दिये जाते थे। जिन ताल्लुकेदारों से नवाब अप्रसन्न हुए उनसे स्लीमैन साहब घनिष्ठता बढ़ाने लगते थे। जिन्हें राजा बंदी बनाना चाहते थे उसे रेजिडेंट प्रश्रय देते थे। नवाब के वफ़ादार नौकरों की सरेआम बेइज्जती होती थी और बगावती नौकरों की तारीफ। इस प्रकार बादशाह का दरबार कुचक्र और षड्यन्त्र का अड्डा हो गया और उसे विश्वासपात्र नौकर भी मिलना दूभर हो गया। दरबारी अपने को मालामाल करने के फिराक में थे। इस प्रकार दरबार की नैतिकता बिल्कुल जाती रही। बेगमें षड्यंत्रों में भाग लेती थीं। अनेक बेगमों को तो रेजिडेंसी से पेंशनें मिलने लगीं। इस प्रकार वे कंपनी की हिमायत और बादशाह का विरोध करने लगीं। कंपनी ने कुछ ऐसे जासूस नियुक्त कर रखे थे जो दरबार का भेद लाकर रेजिडेंट को देते थे। इस प्रकार दरबार में बैचेनी बढ़ गयी।

नवाब को अपनी परेशानी छिपाने के लिए नाचरंग में डूबे रहना पड़ता। शराब का शौक उसे नहीं था। वह उच्च कोटि का शायर भी था। अच्छे कव्वाल, वेश्याओं तथा संगीतज्ञों का सदा जमघट रहता था। रासलीलाएँ तथा 'रहस' हुआ करते थे। नवाब में साम्प्रदायिक भावना बिल्कुल न थी। वह हिन्दुओं के त्योहार यथा होली, दशहरा, दीवाली बड़ी धूम से मनाता था। हिंदू-मुसलमानों में एकता थी। यह अंग्रेजों को बहुत खटकती थी। इसके अतिरिक्त नवाब संगीत और कला का प्रेमी और उच्च श्रेणी का कलाकार था। नवाब कृत ठुमरी लय तथा पद, ताल की दृष्टि से बेजोड़ हैं। नवाब का व्यक्तिगत चरित्र ऊँचा था। बिना विवाह किये किसी स्त्री से संबंध नहीं रखा। किसी हिंदू स्त्री पर कुदृष्टि नहीं डाली। कई बेगमें अवश्य थीं, किन्तु यह कहना गलत है कि ५०० थीं। संभवत: ३० थीं। ४५ पुत्र तथा ३४ पुत्रियाँ हुईं। एक ईसाई स्त्री ने विवाह के लिए प्रार्थना की। अंत में जब वह मुसलमान बन गयी तभी विवाह किया। हाँ, राजकाज की परेशानियों के कारण अपना जी बहलाने के लिए कई दर्जन उपपत्नियाँ रख ली थीं। नित्य साँझ को कैसरबाग में सभी बेंगमें साज-सिंगार कर एकत्र होती थीं। नवाब की विलासिता का प्रमुख कारण राजनीतिक उलझनें थीं। साहित्यिक प्रेम अगाध था। नवाब ने स्वयं ४० ग्रंथ रचे और लाखों शेर लिखे। नवाब के प्रश्रय में लिखे गये 'इंदर सभा' आदि कई 'आपेरा' किस्म के नाटक उर्दू के प्रथम नाटकों में से हैं। नवाब के ज्येष्ठ पुत्र नौशेरवाँ कद्र नपुंसक और पागल थे। वे गदर में गत हुए। १८५७ की क्रांति में क्रांतिकारियों ने चौथे राजकुमार बिरजीस कद्र को सिंहासन पर बैठाया था।

माता बेगम हज़रत महल क्रांति की नेत्री बनीं। किंतु परास्त होने पर वह अपनी माँ के साथ नेपाल चला गया था। बाद में दूसरा पुत्र मिर्ज़ा कमर कद्र उत्तराधिकारी हुआ। किंतु शीघ्र ही उसका देहांत हो गया।

वाजिद अली शाह से मिलने के लिए तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड हार्डिंज १८४७ में कानपुर आया। नवाब स्वयं जाकर उसे लखनऊ लिवा लाया। उसका स्वागत बड़ी धूम-धाम से हुआ। नवाब ने बड़े लाट के कर्मचारियों को ३४६५ रुपयों का इनाम बाँटा। काफी मैत्रीपूर्ण बातें हुईं। दोनों ओर की भेंटस्वरूप सामग्रियों का आदान-प्रदान हुआ। नवाब और बड़े लाट की दो घंटे गुप्त वार्ता भी हुई। देखने में तो अनेक बातें तय हो गयीं। निश्चय हुआ कि लगान वसूल करने वालों से जमानतें ले ली जायँ। न्याय विभाग का वास्तविक प्रधान नवाब स्वयं होगा और उसका सहकारी रेजिडेंट होगा। रेजिडेंट को आदेश हुआ कि नवाब के कार्य में हस्तक्षेप न करे। देखने में तो यह यात्रा शांति से समाप्त हुई, किन्तु कलकत्ता पहुँच कर बड़े लाट ने रेजिडेंट के द्वारा नवाब को एक पत्र भेजा जो एक प्रकार का आदेश था जिसमें कहा गया था कि यदि कंपनी की उपेक्षा की गयी तो नवाब के शासन को हस्तगत कर लिया जायगा।

राजकाज में सुधार के लिए नवाब को दो वर्ष का समय दिया गया। तहसील के न्यायालयों पर कंपनी के आदमी नियुक्त हुए। नवाब ने बड़े लाट के पत्र का उत्तर कलकत्ता भेजा, किंतु उत्तर आया कि बड़े लाट नवाब के जवाब से संतुष्ट नहीं हैं। कर्नल स्लीमैन का कथन है कि दो वर्ष समाप्त हो गये और नवाब के शासन में कुछ भी सुधार नहीं हुआ है। अतः यही एकमात्र उपाय है कि पूरे शासन को कंपनी अपने हाथ में लेकर शासन का व्यय काट कर शेष धन नवाब और उसके परिवार को पेंशन के रूप दे। अवध के पढ़े-लिखे लोगों को दीवानी में नौकरियाँ दे दी जायँ।

दूसरी ओर नवाब शासन-सुधार के लिए बहुत उत्सुक था और अंग्रेज़ों के ढंग के अनुसार ही शासन करना चाहता था। इसकी पुष्टि तत्कालीन सहायक रेजिडेंट मेर बर्ड ने भी की है। बर्ड के अनुसार १८४८ में नवाब ने अपने मंत्री नक़ी खाँ से ब्रिटिश ढंग का शासन चलाने के लिए रेजिडेंट द्वारा गवर्नर-जनरल से योजना माँगी। रेजिडेंट रिचमाण्ड ने अपने सहायक बर्ड को आज्ञा दी कि प्रस्ताव प्रस्तुत करें। जब रेजिडेंट और उसके सहायक बर्ड के संयुक्त प्रयास से और नवाब की स्वीकृति से योजना तैयार हुई तो आगरा के लेफ्टिनेंट गवर्नर थामसन के पास पूरी योजना भेजी गयी। उसने इस कर-सुधार योजना में संशोधन कर रेजिडेंट को वापस भेज दिया। इस योजना में ३२ प्रस्ताव तथा उतनी ही थामसन की टिप्पणियाँ थीं (इसकी मूल प्रति ब्रिटिश म्यूज़ियम में उपलब्ध है)। यह दस्तावेज़ बड़े महत्त्व का था। इसमें पहले तो निश्चित प्रस्ताव है

और बाद में थामसन द्वारा प्रश्न किये गये हैं। सभी प्रस्तावों पर रेजिडेंट ने नवाब की स्वीकृति प्राप्त कर ली थी। अतः सिद्ध है कि कंपनी की सरकार को प्रसन्न करने के लिए दुर्बल नवाब ने विवश होकर सब कुछ स्वीकार कर लिया था। इसके अनुसार माल-गुज़ारी वसूल करना, मुकदमें, पुलिस, सेना आदि कंपनी के अधिकार में आ गये थे। नवाब ने विवश होकर न्यायालय का काम भी रेजिडेंट को सौंप दिया था और अब वे अंतिम अपील भी नहीं सुन सकते थे। नवाब का एकमात्र कार्य केवल यह था कि सब कर्मचारियों का वेतन नियमित रूप से रेजिडेंट के कोष में भेज दिया करे।

परिश्रम से तैयार की हुई योजना के प्रारूप को बर्ड ने थामसन की टीकाओं के साथ गवर्नर-जनरल के पास भेज दिया। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि योजना अंतिम रूप से थामसन (छोटे लाट) द्वारा तैयार की गयी थी। रेजिडेंट ने उसके अंतिम रूप को नवाब को भी नहीं दिखाया था और उसे बड़े लाट के विदेशी विभाग के सचिव (तथा तत्कालीन इतिहासज्ञ) सर हेनरी इलियट के पास भेज दिया था। उसने बड़े लाट से परामर्श कर उस योजना को इस आधार पर अस्वीकृत कर दिया कि यदि नवाब सम्पूर्ण राज्य छोड़ने को तैयार हों तो कंपनी उस पर विचार कर सकती है, अन्यथा नहीं।

१८४८ में बड़े लाट लार्ड हार्डिंज़ के स्थान पर लार्ड डलहौज़ी आया। उसने १८४९ में स्लीमैन को अवध का रेजिडेंट नियुक्त किया। उसके आते ही मेजर बर्ड ने थामसन द्वारा तैयार की हुई योजना उसके सामने रखी, किंतु स्लीमैन ने उस पर ध्यान ही नहीं दिया। उसने आते ही नवाब की ज़ोरों से निंदा करना प्रारंभ कर दिया। उसका व्यवहार सहिष्णु नबाव के प्रति बड़ा अपमानजनक था।

डलहौज़ी ने वाजिद अली शाह को सिंहासन से उतारने के प्रयत्न करने प्रारंभ किये। उसने भी अवध का भ्रमण किया, किंतु नवाब से मिला ही नहीं। यह नवाब के लिए अपमान की बात थी, फिर भी , वह ब्रिटेन की नेकनीयती पर भरोसा किये बैठे थे। उधर स्लीमैन उनके विरोध में षड्यन्त्र रच रहा था। स्लीमैन ने एक ओर रईसों को, दूसरी ओर किसानों को खोखला कर दिया। अस्वस्थ होकर जब वह स्वदेश जाने लगा तो प्रश्न उठा कि वैसी ही नीति चलाने वाला दूसरा कौन है। उसके सहायक मेजर बर्ड से उसकी पटती न थी, क्योंकि वह नवाब का पक्ष लेता था। शासन सुधारने का प्रयत्न भी करता था, साथ ही उसे सत्परामर्श भी देता था। यह बात स्लीमैन को खटकती थी। अंत में उसे लखनऊ से हटना पड़ा। किंतु नवाब के दुर्दिनों में वह उनके साथ रहा और माता किश्वर के साथ विलायत गया था। जब स्लीमैन अवध के दौरे पर था, मेजर बर्ड स्थानापन्न रेजिडेंट था। अतः जब स्लीमैन बाहर जाने लगा तो रेजिडेंट आउट्रम को सहायक बना गया।

कर्नल स्लीमैन ने अवध की स्थिति का वर्णन अपनी डायरी में किया है। यह एक-पक्षीय मत है। उसने प्रत्येक बात में नवाब के दोष निकाले हैं। १ दिसम्बर, १९४९ को उसकी अवध की यात्रा प्रारंभ होती है। यह यात्रा उसने बहराइच ज़िले से प्रारंभ की। उसने बहराइच, बलरामपुर, पयागंपुर, गोरखपुर, फ़ैज़ाबाद, सुल्तानपुर, भदरी, रामपुर, सोती, सीतापुर, ओयल, महेबा, महमूदाबाद, फतेहपुर, इटौंजा आदि स्थानों का भ्रमण कर दो भागों में पुस्तक प्रकाशित करायी है। इसमें जमींदारों एवं ताल्लुकेदारों के अत्याचारों तथा लूट का वर्णन किया गया है। स्लीमैन का अवध के ज़मीदारों से अप्रसन्न होने का कारण यह था कि बलरामपुर-जैसे कुछ राज्यों के अतिरिक्त कोई भी अंग्रेज़ों का भक्त न था। उसने अपनी डायरी में नवाब के शासन तथा स्वयं नवाब पर अनेक आक्षेप किये। उसी की रिपोर्ट के आधार पर उसके उत्तराधिकारी जनरल आउ-ट्रम ने भी नवाब पर सात अभियोग लगाये। स्लीमैन के सहायक मेजर बर्ड ने स्लीमैन के दोष व शिकायतें लिख भेजी थीं। दूसरे ब्रैंडम नामक अंग्रेज़ व्यापारी ने स्लीमैन की पोलें लंदन में खोली थीं। ये दोनों स्लीमैन को निकलवाने में सहायक हुए। दूसरे डलहौज़ी स्लीमैन से अपना काम निकाल चुका था, उसे लखनऊ से हटाना ही चाहता था। स्लीमैन में सबसे बड़ा दोष यह था कि वह मुखबिरों और गुप्तचरों को प्रश्रय देता था और उनकी सहायता से नवाब के भक्तों को निकलवाने की फिराक में रहता था। दुबारा नवाब के आदमियों की नियुक्ति स्वयं करता था। इससे दरबारियों को यह निश्चय होता गया कि अवध के कर्मचारियों का हाकिम नवाब नहीं, रेजिडेंट है। अतः वे नवाब के पास न जाकर रेजिडेंट की शरण में जाना अधिक लाभदायक समझते थे।

स्लीमैन का मंतव्य शासन-सुधार के नाम पर डाका डालना था। शासन-सुधार के लिए वास्तविक परामर्श देते रहना उसका लक्ष्य नहीं था। मेजर बर्ड के अनुसार अवध सरकार के काम में कम-से-कम १५० मामलों में स्लीमैन ने हस्तक्षेप किया। ज़मीदारों और ताल्लुकेदारों द्वारा प्रजा पर अत्याचार विषयक स्लीमैन की अधिकांश बातें असत्य एवं नवाब को बदनाम करने वाली हैं। इतना सब होते हुए भी कंपनी का शासन अवध के शासन की तुलना में बहुत खराब था। कंपनी के शासन में जनता पर अत्याचार होते थे। कंपनी की फौजदारी अदालतें जनता के लिए भयावह एवं आतंक उत्पन्न करने वाली थीं। कंपनी के कर्मचारियों का साहस बहुत बढ़ा हुआ था। वे झूठे दावे करके ज़मीन पर अधिकार कर लेते थे। इसके विपरीत अवध का न्यायशासन अच्छा था, पर अवध की सेना के गोरे सिपाही भारतीय स्त्रियों के साथ बलात्कार करते, डाके डलवाते और हिंदू-मुस्लिम दंगों के लिए आग फूँकते थे। १८५३ में इलाहाबाद में दंगा हुआ। १८५५ में मुहर्रम के अवसर पर मुरादाबाद में बलवा हुआ। इसके पूर्व

अवध में ऐसा कभी नहीं हुआ था। कंपनी इन बलवाइयों और डाकुओं को प्रश्रय देती थी। अवध में १० वर्षीय नवाबी शासन में लखनऊ में ८,००० आदमी बाहर से आकर बसे, किंतु कंपनी का शासन होते ही एक वर्ष में ४,००० व्यक्ति भूखों मरने के कारण लखनऊ छोड़ कर भाग गये।

अवध की ५० लाख की जनसंख्या में सन् १८४८ से १८५४ तक लगभग प्रतिवर्ष १६,००० नर-हत्याएँ तथा लगभग २०० डाके पड़े। इसके विपरीत कंपनी के काल में इससे कहीं अधिक अपराध हुए। कंपनी का शासन बहुत अधिक खर्चीला था। मज़ा यह कि सब नवाब का ही धन उड़ रहा था। यह शासन जनता के लिए सुविधाजनक एवं लाभदायक न था। 'अवध ब्लू बुक' के अनुसार कंपनी की शासन-प्रणाली बड़ी दोष-पूर्ण थी। कलेक्टर और सिविल जज में बहुधा मतभेद हो जाता था। जनता बहुत पीड़ित थी। बहुधा हिंदू-मुस्लिम दंगे हो जाते थे। किंतु वाजिद अली शाह के शासन में केवल अयोध्या म हनुमान गढ़ी पर १८५५ में दंगा हुआ। जब नवाब की सेना में कुछ बढ़ती होने लगती तो रेजिडेंट बाधा उपस्थित करता था कि किसी प्रकार भी ३५,००० से अधिक सैनिक न हों। वाजिद अली शाह की सबसे बड़ी इच्छा यह थी कि सेना का पुन:संगठन हो, किंतु वैसा न करने के लिए उसे विवश किया गया। लगान प्रथा में भी कंपनी किसी प्रकार का सुधार नहीं करने देना चाहती थी।

कंपनी के अत्यधिक हस्तक्षेप के कारण नवाब को राजनीतिक स्वतंत्रता लेशमात्र न थी। अत: उस क्षेत्र में वह निराश ही रहा, परंतु सांस्कृतिक एवं सामाजिक क्षेत्र में उसने देश की बड़ी सेवा की। लखनऊ सम्पन्नता, संस्कृति, भाषा, कला, चित्रकला, साहित्य में अग्रगण्य था। पत्रकारिता की कला की काफी उन्नति हुई। लखनऊ में एक वेधशाला भी थी। इसका अफसर बहुधा अंग्रेज़ होता था, जो १७०० रुपया मासिक वेतन पाता था। समय बताने के लिए यहाँ तोप दगती थी। गणित एवं ज्योतिष संबंधी अनुसंधानकार्य होता था। इन विषयों पर २१ अंग्रेज़ी पुस्तकों का उर्दू में अनुवाद कराया गया। इसके साथ ही एक वेधशाला में चुम्बक पत्थर लगाया गया। इस पर ६,००० रुपया वार्षिक व्यय तथा २०० रुपया मासिक वेतन नवाब से मिलता था। बादशाह ने जनहित के लिएँ सरायें, पुलिस चौकियाँ तथा कुएँ आदि बनवाये।

नवाब वाजिद अली शाह एक अच्छा शासक था, किन्तु अंग्रेज़ों ने प्रत्यक्ष रूप से इसे कभी स्वीकार नहीं किया। लार्ड डलहौज़ी को अवध का अपहरण करने का कोई बहाना नहीं मिल रहा था, क्योंकि नवाब नि:संतान भी न था जिससे गोद न लेने का प्रश्न उठा सकता और नवाब का स्वास्थ्य भी अधिक खराब न था। अत: लार्ड डलहौज़ी ने एक स्मृतिपत्र निकाला जिसके अनुसार १८३७ की संधि को ठुकराते हुए यह प्रस्ताव

रखा कि दीवानी एवं सैनिक शासन नवाब से लेकर राज्य की आय से जो धनराशि शेष बचे, वह उसे गुजारे के लिए दे दी जाया करे और वह सिंहासन से उतारा न जाय। किंतु बहुमत इस पक्ष में था कि उनका पद छीन लिया जाय और पेंशन दे दी जाय। अंत में डलहौज़ी ने बोर्ड आफ डायरेक्टर्स की सलाह से १८५६ में नवाब को सिंहासन से उतारने का आदेश कानपुर पहुँचा दिया और वहाँ कंपनी की पलटनें एकत्र होने लगीं। १८५६ के प्रारंभ में ही रेजिडेंट जेनरल आउट्रम कलकत्ते से आदेश प्राप्त कर लखनऊ आये।

उधर अवध के अपहरण की ये तैयारियाँ हो रही थीं और अवध दरबार को कुछ पता हीं न था। जब किसी ने नवाब से ये बातें कहीं तो वह मज़ाक समझ कर टाल गया। ३१ जनवरी, १८५६ को आउट्रम ने वज़ीर नकी खाँ को बताया कि कंपनी के बोर्ड आफ डाइरेक्टर्स ने नवाब को १५ लाख रुपये वार्षिक पेंशन देकर अवध पर स्वयं शासन करने का निर्णय कर लिया है। नकी खाँ को मछरेहटा कस्बा की एक लाख आय की ज़ागीर देने का लालच देकर नवाब से इसकी स्वीकृति लाने का आदेश दिया गया। यह भी स्पष्ट कर दिया गया कि यदि वे आसानी से न मानेंगे तो उन्हें विवश किया जायगा और यदि वे फिर भी न मानेंगे तो तोपखाने पर कब्जा कर लिया जायेगा। अवध में दो वर्ष के लिए सैनिक शासन रहेगा। सभी सरकारी कर्मचारी बंदी बना लिये जायेंगे और ज़मीदारों एवं ज़ागीरदारों से भूमि छीन ली जायगी। इस प्रकार १९ हिदायतें दी गयीं। किंतु, जब नकी खाँ ने विवशता दिखायी तो आउट्रम नवाब के पास स्वयं गया और कंपनी के आदेश से नवाब को अवगत किया। नवाब तथा मलका किश्वर इसके लिए तैयार न हुईं। आउट्रम ने मलका किश्वर को लालच दिया कि यदि वह नवाब से हस्ताक्षर करा दे तो उसे १ लाख रुपया वार्षिक पेंशन दी जायगी। किंतु उसने अस्वीकार कर दिया।

मंत्री नकी खाँ ने एक चाल चली। उसने राय दी कि अंग्रेज़ों को प्रसन्न करने के लिए सेना को निःशस्त्र कर दिया जाय, तोपों को चर्ख से हटा दिया जाय, सिपाहियों के हथियार गोदामों में रखवा दिये जायँ। नवाब ने ऐसा ही करके अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय दिया। जब आउट्रम कलकत्ते से गुप्त मंत्रणा कर नवाब से मिलने आया तो नवाब के शिष्टाचार और निःशस्त्र सैनिकों को देखकर बड़ा आश्चर्यचकित हुआ। उसने यहाँ का पूरा ब्योरा गवर्नर-जनरल के पास कलकत्ते लिख भेजा।

इससे प्रजा में अशांति छा गयी। प्रजा एवं सेना नवाब का जी-जान के साथ देना चाहती थी, किंतु नवाब ने ही उनका साथ न दिया। नकी खाँ ने नवाब की ओर से जनता को शांत हो जाने का आदेश दिया। लोग रो-रो कर मातम मना रहे थे और राजाज्ञा की राह देख रहे थे। उधर नवाब अंग्रेज़ों को प्रसन्न करने का स्वप्न देख रहा था। सारे

नगर में आतंक छाया था। बहुतों ने भोजन त्याग दिया। बिना रक्तपात के शासन बड़ी आसानी से ईस्ट इंडिया कंपनी के हाथों चला गया। ४ फरवरी, १८५६ को आउट्रम जब प्रातः आठ बजे नवाब के सामने जर्द कोठी महल पहुँचा, तो नवाब मानसिक वेदना से व्याकुल एवं अस्वस्थ था। आउट्रम ने घोषणा की कि सन् १८०१ वाली संधि समाप्त हो गयी और नयी संधि प्रस्तुत है जिसके अनुसार नवाब को १५ लाख वार्षिक मिलेंगे। धारा एक के अनुसार 'सारा दीवानी तथा सैनिक शासन सदैव के लिए कंपनी को सौंप दिया जायगा।'

आउट्रम ने सभी प्रयास किये, किंतु नवाब ने संधि-पत्र पर हस्ताक्षर न किये। नकी खाँ को भी डराया-धमकाया गया, किंतु सभी प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध हुए। आउट्रम ने नवाब को पेंशन की रकम बढ़ा देने का भी लालच दिया, किंतु नवाब अडिग रहा। इधर रेजिडेंट की घोषणाएँ हो रही थीं। वज़ीर नकी संधि-पत्र पर मोहर लगा चुका था और नवाब से हस्ताक्षर कराने के लिए मिन्नतें कर रहा था, किंतु नवाब अपने निश्चय पर डटा रहा। ७ फरवरी को नवाब ने अपना उत्तर भी रेजिडेंट के पास लिख भेजा। १२ बजे मध्याह्न रेजिडेंट ने अवध के उच्च अधिकारियों को बुला भेजा और घोषणा की कि अवध का शासन कंपनी अपने हाथों ले रही है। उसने उन अफसरों की ज़मानतें ले लीं। नवाब की सलामी ज़ब्त कर ली गयी। उसका गवर्नर-जनरल से मिलना बंद हो गया। उसको लखनऊ में रहना भी मना हो गया और उसकी सीर भी अपहरण कर ली गयी। विद्रोह न हो, इसलिए कंपनी धीरे-धीरे प्रबंध करने लगी। आउट्रम प्रधान कमिश्नर नियुक्त हुआ। खैराबाद, मोहमदी, लखनऊ, बहराइच तथा फैज़ाबाद की कमिश्नरियाँ एक-एक कमिश्नर के अधिकार में की गयीं। जिले पृथक् किये गये जिसके अधिकारी डिप्टी कमिश्नर बने। दो केन्द्रीय कमिश्नर नियुक्त हुए, एक न्याय विभाग के लिए, दूसरा माल-विभाग के लिए। अवध भर में दो वर्ष के लिए सैनिक शासन की घोषणा कर दी गयी।

संसार के इतिहास में किसी भी राजा ने इतनी तत्परता, शांति, उदारता, दृढ़ता, निष्ठा एवं आत्मसमर्पण की भावना से अपने राज्य का त्याग नहीं किया होगा जैसे वाजिद अली शाह ने किया। किंतु उनके हस्ताक्षर न करने के निश्चय के कारण ही अंग्रेज़ों को उनका प्रत्येक कार्य शंकापूर्ण लगता था।

कंपनी ने अवध की बागडोर अपने हाथों में लेकर रईसों तथा राजाओं को लूटना आरंभ कर दिया। नवाबी सामान को नीलाम किया जाने लगा। ताल्लुकेदारों की गढ़ियाँ गिरा दी गयीं। रईस निःशस्त्र कर दिये गये। राजाओं से गाँव छीन लिये गये। उनकी शक्ति नष्ट कर दी गयी। अनेक राजा साधु वेष धारण कर काशी भाग

गये। नवाबी सेना पर अधिकार कर लिया गया। बहुत-से सिपाही हटा दिये गये। सेना के परेड करने का स्थान ध्वस्त कर दिया गया। हजरतगंज के द्वार तोड़ दिये गये। बेगमों की जायदाद की छानबीन के लिए विशेष अधिकारी नियुक्त हुआ। शाही परिवार की बड़ी दुर्गति की गयी। बादशाह के बंधु-बांधवों को कैद किया जाने लगा। बेगमों की जायदादें ज़ब्त कर ली गयीं। नवाब की संपत्ति पर कंपनी का हस्तक्षेप शुरू हुआ। नवाब के निजी निवास छतरमंजिल की छानबीन की गयी और नवाब के प्रति बड़ी अशिष्टता बरती गयी। बेगमों के साथ दुर्व्यवहार किया गया। उन्हें घसीट कर बाहर निकाल दिया गया। कंपनी के प्रति नवाब ने अभी तक जो वफादारी की थी यही उसका फल उसे मिलने लगा। इस दुर्व्यवहार से नवाब बड़ा दुःखी हुआ। उसने तीन दिन भोजन न किया। उसने इस विषय में गवर्नर-जनरल को अनेक पत्र लिखे, किंतु पहले तो जवाब ही न आया और अंत में अपनी सफाई देते हुए उत्तर आया कि "संधि की धाराओं के अनुसार ही उनकी सुरक्षा के लिए काम हो रहा है।" इस प्रकार डाका डालकर अवध पर पूर्ण अधिकार कर लिया गया और बादशाह की संपत्ति का दुरुपयोग किया गया।

कंपनी का एकमात्र ध्येय था अवध को लूट कर अधिक से अधिक धन एकत्र करना। चारों ओर खूब बेगार ली जाने लगी। इस प्रकार कुल मिलाकर २० करोड़ रुपये प्रतिवर्ष ब्रिटेन जाने लगे जिसके बदले अवध को कुछ नहीं मिलता था। कंपनी के शासन का श्रीगणेश होते ही अवध के दुर्दिन आ गये। खाद्यसामग्री महँगी हो गयी। सरकार गल्ला सीधे किसानों से सस्ते दामों पर खरीदने लगी। किसानों को सीधे बाजार में बेचने पर प्रतिबंध लग गया। फलस्वरूप राज्य में डाके पड़ने लगे, हत्याएँ होने लगीं।

अंग्रेज चाहते थे कि किसी प्रकार नवाब संधि-पत्र पर हस्ताक्षर कर दे जिससे वे संसार के सम्मुख नैतिक बन सकें। नकी खाँ, अमीनुद्दौला और आउट्रम के सभी प्रयास विफल हो चुके थे। इधर नवाब अंग्रेज़ों के मित्रों को बुला कर बड़े लाट के पास पैगाम भेजते थे। जब सभी प्रयास निष्फल हुए तो नवाब स्वयं फरियाद लेकर जाने को तैयार हो गये और कहा कि यदि वहाँ भी सफलता न मिली तो लंदन जायेंगे। इस समय इस पुस्तक का लेखक मेजर बर्ड कंपनी की नौकरी छोड़कर नवाब के पास आया। नवाब ने उसे अपना वकील बना कर लंदन भेजा। इसका पारिश्रमिक उसे लगभग २ लाख रुपया दिया गया। नवाब बहुत उदास था और लखनऊ में रहना उसे प्रति पल खटक रहा था। अतः उसे लखनऊ त्यागने की स्वीकृति मिल गयी। १८५६ में लार्ड डलहौज़ी के स्थान पर लार्ड कैनिंग बड़ा लाट होकर आया। उसने नवाब के पास मैत्रीपत्र भेजा। इसी बीच आउट्रम को लकवा मार गया, अतः वह लंदन चला गया और उसके स्थान पर

चार्ली जैक्सन नियुक्त हुआ। पर यह भी अधिक दिन न टिक सका। इसके स्थान पर जनरल लारेंस आया। इस बीच वज़ीर नकी खाँ की जनता ने बड़ी दुर्गति की। उनका बड़ा अपमान हुआ।

१३ मार्च, १८५६ को रात्रि में आठ-नौ बजे नवाब कानपुर के लिए रवाना हुआ। जनता को मालूम न होने दिया गया, फिर भी उसके पीछे ३,००० व्यक्ति चल रहे थे। १४ मार्च को प्रातः कानपुर पहुँचा और अपने व्यापारी मित्र ब्रैंडन (जिसे स्लीमैन ने लखनऊ से निकाल दिया था), के बंगले पर ठहरा। दूसरे दिन मल्का किश्वर तथा अन्य बेगमें आयीं। यहाँ नवाब पर कड़ी निगाह रखी गयी। आजिज आकर नवाब ने एक-दो लोगों को छोड़कर सबसे मिलना बंद कर दिया। यहाँ नवाब एक मास रुका। यहाँ से इलाहाबाद होकर बनारस पहुँचा। मार्ग में उसे बड़ा कष्ट रहा। कंपनी ने प्रबंध के जो वायदे किये थे वे झूठे निकले। नवाब को सारा प्रबंध स्वयं करना पड़ा। बनारस के राजा ने उसका उचित स्वागत-सत्कार किया। २५ अप्रैल को नवाब स्टीमर पर गंगा नदी के मार्ग से कलकत्ता के लिए रवाना हुआ। उसके साथ ११० व्यक्ति थे। दूसरे दिन मल्का तथा नबाब खास महल आदि डाक गाड़ी से रवाना हुईं। स्टीमर यात्रा में नवाब को बड़ा कष्ट हुआ। अतः उसने लंदन जाने का विचार त्याग दिया। २,००० रुपया मासिक पर एक कोठी किराये पर ली गयी। १३ मई को नवाब वहाँ पहुँचा। कंपनी ने नवाब का स्वागत तोपों की सलामी देकर किया। इन दिनों लंदन की पार्लियामेंट में अवध का हिसाब पेश हुआ और जो करोड़ों रुपया कंपनी ने अवध से कर्ज लिया था उसका फरजी विवरण दिया गया। उधर अवध के शाही परिवार में आपसी मतभेद बहुत बढ़ गये। इधर मल्का किश्वर की सवारी १६ जून, १८५६ को लंदन के लिए रवाना हुई। इस यात्रा में करोड़ों रुपये खर्च हुए। मार्ग में ब्रेडन उनके साथ रहा। २० अगस्त को जहाज इंगलैंड पहुँचा। वहाँ मेजर बर्ड ने बड़ी सहायता और दौड़-धूप की। मल्का की कोई पूछ न हुई। उल्टे उसे कंपनी द्वारा तैयार की गयी नवाब के विरुद्ध अभियोग पुस्तिका (ब्लू बुक) दी गयी। उसने उसे कलकत्ता भेजा। नवाब ने उसके उत्तर की ३०० प्रतियाँ और एक पत्र महारानी विक्टोरिया के पास भेजा। मल्का किश्वर के स्वागत में मल्का विक्टोरिया ने एक विशेष जनाना दरबार किया। विक्टोरिया ने योंही ऊपरी बातें करके टाल दिया और १३ वर्षीय बालक एडवर्ड को मल्का की गोद में बैठा दिया। मल्का ने विक्टोरिया को भेंट में लाखों रुपये दिये और बेटे को तो अपना हार ही उतार कर पहना दिया। उसके बाद यहाँ भी आपस में फूट पड़ गयी और भारत में १८५७ की क्रांति का समाचार लंदन पहुँचा। इस प्रकार किश्वर का लंदन आना व्यर्थ सिद्ध हुआ। वह स्वदेश के लिए वापस लौटी किंतु पेरिस में उसकी मृत्यु हो गयी।

अवध का अपहरण हो जाने के कारण लोग उद्विग्न हो रहे थे। विद्रोह की अग्नि सारे देश में भभक उठी। अंग्रेज़ों को नवाब पर संदेह हो रहा था, किंतु अंत तक वे भाग न लेकर लाहौर और ग्वालियर नरेशों की भाँति अंग्रेज़ों के स्वामिभक्त बने रहे। फिर भी, कंपनी ने नवाब के प्रति अपने अत्याचारपूर्ण व्यवहार में परिवर्तन नहीं किया। अपितु क्रांति में उनके भाग लेने का संदेह किया। फलस्वरूप नवाब को फोर्ट विलियम में कैद कर लिया गया। नवाब से सम्बन्धित कलकत्ते के अनेक मुसलमान बंदी बनाये गये। उनके पत्र-व्यवहार पर कड़ी दृष्टि रखी गयी। बंदी-जीवन में निर्दोष नवाब को बड़ी यातनाएँ झेलनी पड़ीं। गोरे सिपाही उसका बड़ा अनादर करने लगे, अपशब्द कहने लगे। पौने दो वर्ष के बाद उसकी बेगमों के बड़े प्रयत्नों के बाद उसे जेल से रिहा किया गया और एक कोठी में रखा गया। बंदी-जीवन में उसने एक ग्रंथ की रचना की। जेल से छूटने के बाद उसका जीवन रसहीन हो चुका था। बंदी-जीवन में उसका खर्च इतना अधिक हो चुका था कि वह कर्ज से लद गया था। माता, भाई और एक पुत्र का देहांत हो चुका था। अधिकांश परिवार लखनऊ में नष्ट हो चुका था। इस समय उसके पास न धन था, न सम्मान। इस गम में उसका स्वास्थ्य खराब ही होता गया और इसी शोक में ७५ वर्ष की अवस्था में अवध का नवाब स्वर्ग सिधार गया।

सन् १८५७ की क्रांति के प्रमुख कारणों में से वाजिद अली शाह को गद्दी से हटाया जाना भी था। अवध की प्रजा अंग्रेज़ी शासन नहीं चाहती थी। दैवयोग से कंपनी का शासन आते ही भुखमरी, दुराचार, बेकारी, डकैती तथा हत्याओं में वृद्धि हो गयी। फलस्वरूप क्रांति का श्रीगणेश हुआ। १४ फरवरी, १८५७ को फज्ल अली ने तुलसी-पुर में कंपनी सरकार की सम्पत्ति लूटी, कर्मचारियों की हत्या की और नेपाल भाग गया। ३० मई को कंपनी की ७१ नम्बर की पल्टनों ने विद्रोह किया। २९ जून को चिनहट पर आक्रमण हुआ। लखनऊ पर भी आक्रमण हुआ। ७ जून को फैज़ाबाद स्वतंत्र हो गया। ३१ मई को बरेली में क्रांति हुई। १० जून को मेरठ पर क्रांतिकारियों का अधि-कार हो गया। २८ जून को कानपुर स्वतंत्र हुआ।

लखनऊ की सिकन्दर बाग की लड़ाई में कंपनी की फौजें विजयी हुईं, किंतु सेनापति हैवलाक गत हुए। क्रांतिकारी हताश नहीं हुए। युद्ध जारी रहा। १७ मार्च, १८५८ को वाजिद अली शाह के पुत्र (जिन्हें जनता ने नवाब माना था) अपनी माँ बेगम हजरत महल के साथ लखनऊ से भागे। लखनऊ के निकट के ताल्लुकेदारों (मलीहाबाद के ज़मींदार, राजा गुरसहाय, राजा चंडीसहाय, फैज़ाबाद के अहमदशाह, राजा जयपाल, मम्मू खाँ तथा कासिम खाँ) ने क्रांति में पूर्णरूपेण भाग लिया। मलीहाबाद में कंपनी की हार हुई। ३० जून, १८५८ को चिनहट विजय के उपरांत क्रांतिकारियों का लखनऊ पर

अधिकार हो गया। इस बीच क्रांतिकारियों ने बिरजीस कदर का राज्याभिषेक किया। बिरजीस कदर का दरबार बारादरी में नियमित रूप से लगने लगा। इसी बीच क्रांतिकारियों के आपसी मतभेद ने आंदोलन को क्षति पहुँचायी और क्रांति असफल हुई। यद्यपि बेगम हज़रत महल ने अपने पति के जीवित रहते बिरजीस कदर को नवाब स्वीकार नहीं किया तथापि क्रांति का संचालन बड़ी वीरता और अद्भुत् प्रखर बुद्धि से किया। क्रांति के सभी नेता तितर-बितर हो गये। बेगम भी १७ मार्च, १८५८ को अपने नन्हे बालक को लेकर लखनऊ से नेपाल भाग गयीं। वहाँ राणा जंग बहादुर ने उन्हें प्रश्रय दिया।

यह पुस्तक मेजर आर० डब्ल्यू० बर्ड द्वारा सन् १८५७ में लिखी गयी थी। मेजर बर्ड १८४७ में ईस्ट इंडिया कंपनी के रेजिडेंट स्लीमैन के सहायक के रूप में नियुक्त हुआ था। यद्यपि वह अंग्रेज़ था तथापि उसने अवध पर कंपनी द्वारा किये गये अत्याचारों का विरोध किया था। उसने स्लीमैन द्वारा रचे गये षड्यंत्रों का प्रतिवाद किया और नवाब वाजिद अली शाह का पक्ष लिया। मेजर बर्ड ने यह पुस्तक 'डक्वायटीज़ ( ? ) इन एक्सेलिसिस अथवा स्पोलियेशन आफ अवध' लिख कर अवध पर कंपनी द्वारा किये गये अत्याचारों का स्पष्ट वर्णन किया है। यह पुस्तक उसने लिख कर जे० आर० टेलर, ५४ चांसरी लेन, लंदन द्वारा १८५७ में प्रकाशित करायी थी। किंतु १८५७ की क्रांति के बाद उसके भीतर के अंग्रेज़ ने उसके विचार बदल दिये और ६ फरवरी, १८५८ को साउथेम्पटन में अपने एक व्याख्यान में उसने पुस्तक से अपना नाम हटा लिया। इसके पूर्व जब बर्ड लखनऊ में स्लीमैन का सहायक था तो नवाब का साथ देने के कारण ही स्लीमैन बर्ड से अप्रसन्न रहता था। कुछ लोगों का कहना है कि वह नवाब के शासन सुधारने में सहायक होना चाहता था। वह नवाब की निजी आदतों के सुधार का भी परामर्श दिया करता था। यह सब स्लीमैन को खटकता था। जब स्लीमैन ने अवध की यात्रा प्रारंभ की तो बर्ड स्थानापन्न रेजिडेंट हो गया। किंतु मतभेद बढ़ जाने से स्लीमैन ने १८ मार्च, १८५२ को लार्ड डलहौज़ी को पत्र लिखकर अवध के पद-भार से उसे मुक्त करा दिया। बर्ड राजस्थान भेज दिया गया। वहाँ से भी उसे हटना पड़ा। बादशाह के दुर्दिन में वह बादशाह के साथ रहा और उसकी माता के साथ इंग्लैण्ड गया। वहाँ उसने राजमाता के लिए बड़ी दौड़-धूप तथा पैरवी की।

यह अनुवाद करने में मैं हिंदी समिति, उत्तर प्रदेश शासन का ऋणी हूँ जिसने यह काम देकर मुझे कृतज्ञ किया है। मेजर बर्ड की इस पुस्तक का मैंने शाब्दिक अनुवाद न करके भावार्थ ही लिया है। मूल पुस्तक पुराने ढंग की अलंकारमयी अंग्रेजी में लिखी गयी है। बहुत-सी व्यर्थ बातों को पाठकों की सुविधा के लिए मैंने हटा दिया है। इसके अनुवाद

कार्य में सहयोग के लिए मैं श्री प्रभात किशोर मिश्र तथा श्रीमती विनोदिनी पाण्डेय का ऋणी हूँ जिन्होंने अपना अमूल्य समय देकर मुझे सहायता प्रदान की ।

हिंदी में इस पुस्तक का अभाव खटकता था । आशा है हिंदी साहित्य के इतिहास में रुचि लेने वाले पाठकों को इससे कुछ सहायता मिल सकेगी ।

# भूमिका

आजकल ब्रिटिश संसद के दोनों सदनों में अवध के शासक तथा उसके परिवार के लोगों की ओर से एक न्याय सम्बन्धी याचिका उनके राज्य एवं राजस्व अधिकारों के अपहरण के सम्बन्ध में विचारार्थ प्रस्तुत की गयी है। यह स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि यूरोप पर इस ज्वलंत अन्याय को बलात लादा जायेगा और इस याचिका के मुख्य आरोपों को इससे संबंधित अपराधी व्यक्तियों द्वारा छिपाने का प्रयत्न किया जायेगा। सत्य का उद्घाटन तो जाँच के समाप्त होने पर ही हो सकेगा। जिस पाप को ब्रिटिश जनता से बड़ी चालाकी से अभी तक छिपाया गया है, वह सामने आकर ही रहेगा। जब उन लोगों को ज्ञात होगा कि उनकी सरकार की काली करतूतों के विषय में अब तक वे निरंतर अंधकार में रखे गये तो वे आश्चर्यचकित हुए बिना नहीं रहेंगे। उनको यह भी विदित होगा कि उनकी सरकार ने लूट मचाने के लिए करों के बोझ से लोगों को अपंगु करके उनकी संपत्ति का अपहरण करने की नीति अपनायी है। अवध राज्य को सहायता देना तो दूर रहा, उसके मार्ग में तरह-तरह के हस्तक्षेपों द्वारा रुकावटें तथा मुसीबतें खड़ी कर दी गयीं। कोई सरकार अपने इरादों को पूरा करने के लिए कितना गिर सकती है? अपनी धन की भूख मिटाने के लिए अवध के लोगों को बुरा बताते हुए हम उन पर बल-पूर्वक अपना शासन लाद देने में ज़रा भी नहीं हिचके। यह हमारे लालच की चरम सीमा नहीं तो और क्या है? बर्क और शेरिडन द्वारा क्रोध के आवेश में आकर किये गये दोषारोपण की बातें अब परम्परा की कड़ी बन गयी हैं। हमारे अत्याचार अब भी हेस्टिंग्ज़ के अमानुषिक कृत्यों के समकक्ष रखे जा सकते हैं। अवध की बेग़मों की करुण कहानी का उपसंहार अभी नहीं हुआ है। आँसुओं की श्रृंखला अभी टूटी नहीं है। आज भी हम उसी अमानुषिक लूट-खसोट, अपहरण, छीना-झपटी तथा उपद्रव से मुक्त नहीं हैं। देखा जाय तो अंग्रेज़ों ने इससे भी कहीं अधिक बुरे काम किये जिनके विषय में हमें आजतक कुछ नहीं पता चलने दिया गया। जब ठीक से जाँच की जायेगी तब एक-एक बात सामने आ जायेगी। 'अवध ब्लू बुक', में इस सम्बन्ध में अंग्रेज़ पाठकों के अज्ञान को जान कर इन स्वार्थी एवं महत्त्वाकांक्षी अधिकारियों ने जो क्षमा-याचना की है उसका कोई विशेष महत्त्व नहीं रह जाता। कारण यह है कि वास्तविक स्थिति, बतायी गयी स्थिति

की अपेक्षा कहीं अधिक गम्भीर है। पूर्ण सत्य का उद्‌घाटन होना अभी भी शेष ही है। जाँच करने के लिए सबसे पहला काम तो यह करना चाहिए कि अपने सच्चे एवं वफ़ादार मित्र राज्य अवध में की गयी अपनी लूट के विषय में और अवध के द्वारा उसका कोई विरोध न किये जाने की घटना के विषय में सारगर्भित इतिहास लिखवाएँ। इसके अतिरिक्त अकारण ही संधि भंग कर देने, कृतघ्नता प्रदर्शित करके स्वार्थ-पूर्त्ति करने, अवध को छीन लेने और स्वयं ही अशान्ति उत्पन्न करके अपने अधिकारियों द्वारा इन कुकृत्यों पर पर्दा डालने का भी उल्लेख करें। यहाँ पर जो शब्द प्रयुक्त किये गये हैं वे कठोर भले ही हों, लेकिन काफी सोच-विचार कर लिखे गये हैं। इनकी सत्यता एवं उपयुक्तता शीघ्र ही प्रमाणित हो जायेगी। अभी इसका उद्देश्य कुछ विशेष पक्षों पर ही केन्द्रित है, अत्याचार के साङ्गोपांग विवरण पर नहीं। एक बात हम यहाँ बता देना आवश्यक समझते हैं। जिस समय अंग्रेज़ अधिकारी अवध में बरबादी की शिकायतों का विवरण तैयार कर रहे थे, उन्हें करों के ठीक से वसूल न किये जाने, सेना के संगठित न होने, ज़मींदारों के विद्रोही हो जाने, खेतिहरों की बढ़ती हुई ग़रीबी, उपजाऊ ज़मीनों के रेगिस्तानों में बदलते जाने, खेतिहरों को बेच कर गुलाम बना लिये जाने, सरकार के ढीलेपन और राज्य की नपुंसकता के कारण ज़िलों में बढ़ते हुए अपराधों की प्रगति तथा आनंद, दमन और शोषण से त्रस्त जनता की असहायता आदि की झूठी-सच्ची शिकायतें खूब बढ़ा-चढ़ा कर बतायी जा रही थीं। केवल एक ही जिले से ४०,००० कृषक-दल के ग़ायब हो जाने जैसी असंभव बातें भी इन रिपोर्टों में देखने को मिल सकती हैं।[१] ऐसे विचित्र 'काल्पनिक आख्यानों' की सृष्टि हमारे अधिकारी लेखकों की प्रौढ़ लेखनी ही कर सकती है। इस निराधार काल्पनिक लेखन के संबंध में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि इतने कष्ट से रहने के बाद भी अवध के लोगों ने अवध को छोड़कर ईस्ट इंडिया कम्पनी के अधीनस्थ भाग में रहना पसंद नहीं किया। ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकारियों द्वारा सुविधा और समृद्धि के झूठे प्रलोभन भी अवध के निवासियों को अवध छोड़ने के लिए तैयार न कर सके और उन्होंने अपने राज्य के तथाकथित असंतोषजनक वातावरण में रहना, कंपनी के सुनियंत्रित शासन की अपेक्षा अधिक श्रेयस्कर समझा। भारतीय सरकार के अधिकारियों के लिए[२] यह परिस्थिति काफी परेशानी पैदा करने वाली थी। इसका कोई संतोषजनक उत्तर उनके मस्तिष्क में किसी प्रकार भी नहीं आ रहा था। जिन लोगों को दोनों ही ओर का अनुभव प्राप्त था वे कंपनी के द्वारा नियुक्त किये गये लगभग पचास हजार (५०,०००)

**१. 'अवध ब्लू बुक' पृष्ठ ८ और 'रिप्लाई टु दि चार्जेज़ अगेंस्ट दि किंग आफ अवध' (अवध के बादशाह के विरुद्ध लगाये गये आरोपों के उत्तर) पृष्ठ २२ कलकत्ता। देखिए।**

**२. इस परिस्थिति पर हमारे अधिकारियों की परेशानी आगे चल कर बतायी जायेगी।**

सिपाही थे। इन बेचारों को तो कंपनी के द्वारा बड़े ही कटु अनुभव प्राप्त हुए थे। वे बेचारे अपनी धन-सम्पत्ति, स्त्री-बच्चों को बेसहारा छोड़ने के अभ्यस्त हो चले थे, अपने वेतन का स्वल्पांश भी घर भेजना कदाचित् ही संभव था। सेवामुक्त होने पर ही वे अपने घरों को लौट पाते थे। उनके भविष्य के लिए कोई प्रबंध नहीं रहता था। जब से अवध पर ईस्ट इंडिया कंपनी का अधिकार हुआ, लगभग ४,००० व्यक्ति तो केवल लखनऊ छोड़ कर ही चले गये हैं। कहा जाता है कि सैनिकों को सेवा स्वीकार नहीं है। प्रजा शासन की सार्वभौम प्रभुता की उपेक्षा करती है। 'अवध ब्लू बुक' में लगाये गये आरोपों का भारतीय प्रेस परतंत्रता की परिधि में होने पर भी खंडन कर रहे हैं और इस आरोप का कि अवध की जनता शासन की नपुंसकता से आक्रांत होकर सुनियंत्रित शासन चाहती थी, उपहास-सा करते हैं और फिर हमको यह विश्वास है कि इस देश से आने वाले ब्रिटिश अधिकारियों का, यहाँ की शस्य-श्यामला वनस्पति तथा भौतिक संपन्नता को देखकर, अपनी आँखों पर से विश्वास उठ गया होगा। अपहरण के इस आधार के विरुद्ध हमारे पास और भी निर्विवाद प्रमाण हैं।

उपयुक्त स्थान पर 'अवध ब्लू बुक' के इन काले पृष्ठों के भ्रष्ट इतिहास का विस्तार-पूर्वक परीक्षण किया जायेगा। इस समय यह विचार है कि आरंभ से लेकर आज तक अवध राज्य के प्रति किये हमारे व्यवहारों का एक संक्षिप्त विवरण तैयार किया जाय जो हमारे जघन्य आरोपों के आधार का, जिन पर यह याचिका सदन के सम्मुख प्रस्तुत है, निराकरण कर सके, और जो हमको यह बता सके कि आरंभ से अंत तक इस दुखी देश के प्रति हमारा व्यवहार नैतिक स्तर से कितना नीचे गिरा हुआ रहा है। तथा जो कुछ भी हमने अंत में इस देश के साथ किया वह अंतर्राष्ट्रीय नियमों के सर्वथा विरुद्ध था ताकि यह स्पष्ट रूप से विदित हो जाय कि साम्राज्य-सुख से वंचित अवध-परिवार के पक्ष में तार्किक प्रमाणों का बाहुल्य है और उस संतप्त परिवार की ओर से या तो राजमाता के सम्मुख या संसद के किसी भी सदन के सदस्यों की सभा (कमेटी) के सम्मुख यह विवरण उचित जाँच के लिए प्रस्तुत किया जाय। जिन व्यक्तियों ने यहाँ इस प्रश्न को उठाया है वह सदैव इसे उचित महत्त्व दिलाने के लिए प्रयत्नशील रहेंगे और ब्रिटिश जनता की न्याय-प्रियता के सम्मान की सदैव रक्षा करेंगे।

## अध्याय १

### कम्पनी को किस प्रकार शुजाउद्दौला के धन की जानकारी हुई और किस शीघ्रता से उसके राज्य तथा कोष से अंतरंगता व्यापी ।

अवध की राजधानी भारत प्रायद्वीप[1] के मध्य में अवस्थित है। गंगा एवं हिमालय के बीच फैला हुआ 'अवध' लगभग २४,००० वर्गमील स्थान घेरे हुए है और यहाँ लगभग ५०,००,००० व्यक्ति निवास करते हैं। यहाँ के लोग निर्भीक एवं युद्धप्रिय हैं और वे हमारी सेना के सर्वोत्तम अंग हैं। इस उर्वर प्रदेश के राज्यों में यह राज्य इतना अधिक उपजाऊ है कि सामान्यतः इसे 'भारत का उद्यान' कहा जाता है। इसके सरकारी राजस्व तथा उत्पादन में अनुपात ठीक बैठता है। ईस्ट इंडिया कंपनी अपनी दूरदर्शिता के लिए सदा से ही प्रसिद्ध है। उसने आरंभ से ही अपनी हर प्रकार की सामर्थ्य का उपयोग किया। इसके किसान वर्ग से उसने न केवल अपनी सर्वोत्तम सेनाए

**१. "अवध राज्य के उत्तर तथा उत्तर पूर्व में नेपाल है, पूर्व में ब्रिटिश जिला गोरखपुर है, दक्षिण में ब्रिटिश जिला आजमगढ़ तथा जौनपुर हैं, दक्षिण में अंग्रेजी जिला इलाहाबाद है, दक्षिण पश्चिम में दोआब जिसमें अंग्रेजी जिले फतेहपुर, कानपुर तथा फर्रुखाबाद सम्मिलित हैं और उत्तर पश्चिम में शाहजहाँपुर है। यह उत्तरी अक्षांश २९°६–२५°३४ और ७९.४५°–८३°११ पूर्व देशांतर के मध्यस्थित है। दक्षिणपूर्व से उत्तरपश्चिम तक इसकी लम्बाई २७० मील और चौड़ाई १६० मील है। इसका क्षेत्रफल २३९२३ वर्गमील तथा आबादी ५०००,००० है अर्थात् २५०½ प्रतिवर्ग मील। एम० एम० मसीहुद्दीन।**

**लखनऊ डाकघर के अधिकारी वर्ग के अनुसार अवध की वर्तमान राजधानी कलकत्ता से ६१९ मील दूर है। यह एक सुन्दर शहर है और रेजिनाल्ड हब्बेर को इसे देख कर 'ड्रेसडन' याद आता है। इमारतों तथा अन्य विशेषताओं का संदिग्ध प्रामाणिक विवरण** The Private Life of An Eastern "King" **नामक पुस्तक में वर्णित है।**

ही लीं अपितु इसी सैन्यदल से यहाँ के राजाओं की रक्षा करना अंगीकार करके यहाँ के राजस्व का एक बड़ा भाग भी हड़प लिया।

अवध उसकी सेना-भरती का क्षेत्र तो था ही, साथ ही सैनिक व्यय तथा अन्य कर भी यहीं से वसूल होते थे और जब कभी रुपये की आवश्यकता पड़ती तो बैंक की तरह यहाँ से अग्रिम रुपया ले लिया जाता था। हिसाब लगाया गया है कि जब से उसका इस प्रदेश से सम्पर्क हुआ अनुपूर्तियों, ऋण, विनिमय तथा अन्य तरीकों द्वारा यहाँ से उसने कम-से-कम पाँच करोड़ पाउण्ड धन वसूल किया होगा। जब भी किभी वह शाही बतख की गर्दन निर्दयतापूर्वक मरोड़ती, उसे उसी प्रकार के सुनहरे अंडे प्राप्त हो जाते।

यह सब कैसे संभव हुआ, इस ब्योरे से बड़ी जानकारी मिलती है और इसके स्पष्टीकरण के लिए विस्तृत ऐतिहासिक विवरण की आवश्यकता है। हमें उसके अस्तित्व की जानकारी होने से बहुत पहले अवध प्राचीन परंपराओं वाला देश था तथा भारत की प्राचीनतम कथा का घटनास्थल था। संस्कृत के प्रथम् महाकाव्य में यह देश एक महान् राजा तथा वीर जनता का निवास स्थल बताया गया है। उसकी राजधानी 'अवध' का विवरण बड़ा रोमांचकारी है।[१] इस समय से इसके प्रामाणिक इतिहास के विषय

१. जहाँ तक संभव हुआ केरी के अनुवाद के अनुसार निम्नलिखित विवरण रामायण से लिया गया है :—

"इस नगरी की सड़कों तथा गलियों की बनावट प्रशंसनीय थी और मुख्य सड़कों पर अच्छी तरह छिड़काव किया जाता था। सारथियों तथा हथियारबंद हरकारों की भीड़ थी, पताकाओं तथा झंडियों से सड़कें सुसज्जित थीं। नर्तक तथा नर्तकियों की भरमार थी। हाथी, घोड़े तथा रथों की भीड़ थी। विभिन्न देशों से व्यापारी तथा राजदूत आया करते थे। नगरी रत्नों की खान अथवा लक्ष्मी के धाम के समान जान पड़ती थी। विभिन्न प्रकार के जवाहरातों से दीवालें शतरंज की बिसात के समान चित्रित की गयी थीं। मकान समान ऊँचाई की कतारों में विन्यस्त थे। कहीं मृदंग की थाप, कहीं धनुष की टंकार वेदों की पवित्र पाठध्वनि सुनाई दे रही थी। धूप, फूलमालाओं, तथा हवन सामग्री की सुगंधि हृदय को प्रसन्न कर रही थी।

भोजन संतृप्त इस सुखी नगरी में सभी वर्ण अपना अपना कर्तव्य-पालन करते थे। सभी स्वजन संबंधियों से भरे-पूरे थे। अपनी पत्नियों को प्यार करते थे, स्त्रियाँ अपने पतियों की आज्ञाकारिणी तथा अनुगामिनी थीं। कोई भी ऐसा न था जो कुंडल न पहने हो, सभी सुगंध द्रव्य व्यवहार करते थे। प्रत्येक ब्राह्मण के यहाँ

में हम वहुत कम जानते हैं, किन्तु बारहवीं शताब्दी के लगभग कन्नौज पर मुसलमानों की विजय के उपरांत गजनी के सुलतान मुहम्मद गोरी ने इसे जीत कर कुतुबुद्दीन ऐबक को भारत का शासक बनाया। उस समय से बराबर यह दिल्ली के सम्राट् के राज्य का अखंड भाग हो गया और बाबर की विजय के पश्चात् यह आसानी से वश में हो गया। मैकाले ने कुछ विवेकपूर्ण शब्दों में उस साम्राज्य के विध्वंस से सम्बन्धित उसके भवितव्य का चित्रण किया है :—

"मुगलों के शासन-पत्र (फरमान) के आधार पर अपने पद प्राप्त करने वाले कुछ बड़े शासकों ने संख्या में उतनी प्रजा पर शासन किया; जैसे फ्रांस के राजा या जर्मनी के सम्राट् ने। यहाँ तक इन शासकों के नायब तक विस्तार तथा आय के विचार से 'टस्कनी' के ग्रैण्ड ड्यूक या सैक्सोनी के एलेक्टर के समकक्ष रखे जा सकते थे। ××× जहाँ कहीं भी मुगलों के प्रतिनिधि राजाओं ने शासन-कार्य सम्हाला वे स्वतंत्र सर्वोच्चशक्ति युक्त हो गये। यह संभव है कि वे कहने भर को तैमूर के राजवंश की अधीनता स्वीकार करते हों—उसी प्रकार जैसे बाद वाले कार्लोविंग के मूख तथा असहाय वंशजों की अधीनता फ्लैंडर्स के काउंट तथा वरगंडी के ड्यूक स्वीकार करते हैं। वे समय-समय पर अपने नाममात्र के उपाधिधारी राजाओं को एक चाटुकारितापूर्ण उपहार भेज सकते थे या किसी उपाधि के लिए अनुरोध कर सकते थे। पर वास्तविकता यह है कि वे अब इच्छा-नुसार पदच्युत किये जा सकने वाले नायब सेनापति नहीं थे, अपितु कुल-क्रमागत स्वतंत्र

**निरंतर प्रदीप्त अग्नि थी और कोई भी व्यक्ति हज़ार रुपये से कम ब्राह्मणों को दान न करता था। नगर की रक्षा योद्धा उसी प्रकार करते थे जैसे शेर पहाड़ की गुफा की करता है। कम्बोज तथा अन्य स्थानों से आये घोड़ों की, विंध्य पर्वत के हाथियों की भरमार थी और इक्ष्वाकु वंश के प्रमुख दशरथ उसी प्रकार अयोध्या का शासन करते थे जैसे इंद्र अपनी नगरी का।**

**राजा को वेदों तथा वेदांगों का पूरा ज्ञान था। वह महारथी था और निरंतर यज्ञ करता रहता था। उसके दरबारी बुद्धिमान्, मन का भाव समझने में समर्थ थे तथा उसके प्रति श्रद्धा रखते थे। आठ ब्राह्मणों को उनका मुख्य मंत्री कहा जाता था, दो चुन हुए पुरोहित उनके प्रधान मंत्री कहलाते ह और शेष छः, भी मंत्रणादायक थे।" इन सब बुद्धिमान्, स्वामिभक्त मंत्रियों से घिरे हुए महान् राज्य के कल्याण के लिए बुद्धिमानों की मंत्रणा ग्रहण करने वाले, सूर्य के समान विश्व को प्रकाशित करने वाले दशरथ राज्य करते थे।"**

राजा थे। इस प्रकार वे महान् मुसलमान् घराने बने जो पहले बंगाल और करनाटक पर शासन करते थे, जो अभी तक राजा हैं (१८४९ में लिखित), और जो, यद्यपि (दिल्ली के) अधीन होते हुए भी, लखनऊ एवं हैदराबाद में राजकीय अधिकारों का उपभोग कर रहे हैं।

उपर्युक्त परिस्थितियों में (और जिनके लिए निश्चय ही वे उस अंग्रेज व्यापारियों की कंपनी के ऋणी नहीं थे जिसने १६९९ में दिल्ली की अनुज्ञा पर फोर्ट विलियम का निर्माण किया) ईस्ट इंडिया कंपनी से उन राजाओं के दुर्विपाक सम्बन्ध स्थापित हुए।[1]

१. विधा के लिए हम अवध के राजाओं की सूची 'ईस्ट इंडिया कम्पनी' के इतिहास की तिथियों के साथ प्रस्तुत कर रहे हैं—

A.D. १७११ सआदत अली खाँ
,, ,, १७३९ सफदर जंग
,, ,, १७५६ शुजाउद्दौला
११७५ आसफुद्दौला
१७९७ वज़ीर अली (जारज, उसे हटा कर वज़ीर अली को गद्दी मिली।)
१७९८ सआदत अली
१८१४ गाज़ीउद्दीन
१८२७ नसीरुद्दीन हैदर
१८३७ मोहम्मद अलीशाह
१८४२ सूरएजहाँ अमजद अलीशाह
१८४७ वाजिद अली शाह

१६०१ में रानी एलिज़ाबेथ ने व्यापारियों के एक दल को भारत तथा उसके समीप के देश तथा टापुओं से व्यापार करने के लिए राजपत्र स्वीकार किया था। १६३४ में इस कम्पनी ने शाहजहाँ से, बंगाल में समुद्र द्वारा व्यापार तथा एक कारखाना स्थापित करने के लिए राजकीय आज्ञापत्र प्राप्त किया। १६५२ में उसी सम्राट् से बंगाल प्रदेश में व्यापार की अनुमति प्राप्त कर ली। १६८६ में इन व्यापारियों ने अपने अधिकारों की रक्षा के लिए एक सुसज्जित सैन्यदल का प्रबन्ध किया। १६९८ में बंगाल के सूबेदार से वह भूमि खरीदने की आज्ञा मिली जहाँ कलकत्ता स्थित है। १६९९ में फोर्ट विलियम तैयार हो गया। १७१७ में कंपनी को उसके समस्त विशेष अधिकारों के लिए राजकीय समर्थन प्राप्त हुआ और १७५६ तक वे अपना व्यापार सफलतापूर्वक चलाते रहे जब सिराजुद्दौला अपने पितामह अलीवर्दी के उत्तराधिकार में बंगाल का सूबेदार हो गया और जब

सन् १६९८ में कंपनी ने बंगाल के सूबेदार से उस भूमि खंड का कथित क्रय किया, जिस पर आज कलकत्ता बसा हुआ है। सच बात तो यह है कि यही भूमिखंड भारत को उलट देने का आधार बन गया, और इसी क्रय ने वह परिस्थिति पैदा कर दी जिससे वे राजे लपेट में आ गये। एक बहुत बड़ी धनराशि—एक करोड़ सत्तर लाख रुपये—लेकर कंपनी ने एक महत्त्वाकांक्षी को बंगाल की गद्दी प्राप्त करने के लिए सहायता दी थी। आगे चल कर कंपनी की भिन्न-भिन्न संधियों में कंपनी का यह तरीका सर्वविदित हो गया, जब २३ जून, १७५७ को प्लासी के युद्ध-क्षेत्र में अपने पोष्य उम्मीदवार को गद्दी पर बिठाकर तथा उसके प्रतिद्वंद्वी को नष्ट करके कंपनी ने अपना उद्देश्य पूरा किया।

सन् १६६० में उस पोष्य उम्मीदवार को अयोग्य सिद्ध कर उसे पदच्युत कर दिया गया और उसका उत्तराधिकारी नियुक्त किया गया। उसे भी पदच्युत कर दिया गया जिसके अनंतर प्रथम पोष्य व्यक्ति को पूर्व पद पर पुनः नियुक्त किया गया। कंपनी के इन अभागे कृपापात्रों में, जिन्हें चुना और पदच्युत किया गया, प्रधान नाम 'कासिम अली' का है, जो अपनी पदच्युति के विरोध में कई लड़ाइयों म हार कर अवध के नवाब शुजाउद्दौला के पास भाग गया था और कंपनी के विरोधी झगड़े में उसे भी सम्मिलित किया था। कासिम का पक्ष ग्रहण करके शुजाउद्दौला ने अपनी फौज के साथ बिहार में प्रवेश किया। बक्सर में ईस्ट इंडिया कंपनी की फौज से उसकी मुठभेड़ हुई। लगभग १०० साल[1] पहले २३ अक्तूबर, १७६४ को उसकी हार हुई और उसे ईस्ट इंडिया कंपनी के साथ "शाश्वत" तथा सार्वलौकिक शांति, "निष्कपट मैत्री", तथा "दृढ़ संधि" के लिए बाध्य होना पड़ा। इस प्रकार ईस्ट इंडिया कंपनी ने शुजाउद्दौला के खजाने में अपनी नली घुसेड़ कर धन का वह बहुमल्य झरना खोल लिया जिसे वह लोलुप दृष्टि से देख रही थी। यह "संधि" १६ अगस्त, १७६५ को संपन्न हुई थी और नवाब ने ५०,००,००० पौंड कंपनी को खर्चे के लिए देना स्वीकार ही किया था। इसके अतिरिक्त स्वाभाविक परिणामस्वरूप "मित्रता के बंधन दृढ़ करने तथा दृढ़ संधि के लिए" अन्य अनेक प्रकार के व्यय की सूची तैयार करने के लिए भी वज़ीर को प्रेरित किया गया। इस प्रकार संधि-पत्र के दूसरे भाग में

**गवर्नर ड्रेक ने अपनी सम्पत्ति सहित भागकर किले के अंदर आश्रय लिए हुए एक देशी आदमी को लौटाने से इनकार कर दिया। उसने आक्रमण करके कलकत्ते को अपने अधिकार में कर लिया।**

१. नोट :—पुस्तक लिखने के समय के अनुसार।

परस्पर आक्रमणात्मक तथा रक्षात्मक नीति की व्यवस्था की गयी और यह भी तय हुआ कि अवध के शासक ने कंपनी की सेनाओं का उपयोग किया तो उक्त सेना के विशिष्ट खर्चे उसे ही देने पड़ेंगे। ऐसा अवसर तो लगभग निश्चित रूप से आना ही था और खर्चों को तो 'विशिष्ट' हो जाना ही था—जिस भाव से उन्हें संधि-पत्र में दिखाया गया था उससे बिल्कुल भिन्न रूप में। २ जनवरी, १७५७ को कलकत्ता पुनः जीत लिया गया। अंग्रेज़ों के विरुद्ध कलकत्ते की ओर प्रस्थान करने वाले सिराजुद्दौला को लार्ड क्लाइव ने समूल नष्ट कर दिया। इस प्रकार ईस्ट इंडीज़ के साथ व्यापार करने वाली व्यापारियों की कंपनी ने बंगाल के सूबेदार सिराजुद्दौला के साथ प्रथम संधि-पत्र लिखा।

"साधारण" घटना के फलस्वरूप अति अधिक मात्रा में तथा निरंतर रुपये की वसूली के लिए बलिपशु तैयार करना आवश्यक था ही, अथवा प्रतीक्षारत आमाशय के लिए शिकार को उपयोगी बनाना ही था। इस काम के लिए, जो शब्दावली प्रयुक्त की गयी थी, वह उस बलिपशु को चिकना करने के लिए बनायी गयी थी जिससे वह धीरे-धीरे पूरी तरह हज़म हो जाय।

यह पहला ही कदम था, पर तब से जो क्रम चालू हुआ वह कभी रुका नहीं। जो नली धन खींचने के लिए घुसेड़ी गयी थी, उसका बहाव कभी बंद न हुआ। इस नाज़ुक धागे के द्वारा अवध धीरे-धीरे कंपनी के जाल में खिंच आया। कर लगाकर उसे दरिद्र बनाया गया, जकड़ कर बाँध लिया गया और भाँति-भाँति से तब तक सताया गया जब तक वह स्पष्टतः हज़म करने योग्य न हो गया। इस काम के लिए जो तरीका इस्तेमाल हुआ, वह विशेष रूप से गुप्त तथा धीमा था क्योंकि अवध के राजाओं ने किसी अविवेक अथवा कपट का सहारा न लिया था। अपनी निष्ठा के लिए उन्हें कभी दोषी नहीं ठहराया जा सका। उनके कट्टर दुश्मनों द्वारा अभी भी उनके भले कामों की सराहना की जाती है। कहा जाता है कि जो पत्र आदि बाद में पकड़े गये उनमें कोई भी ऐसी बात न मिली जो उनके लगाव अथवा स्वामिभक्ति के विरुद्ध पड़ती हो।[1] लेकिन इस संधि

१. इसके विपरीत उनकी विश्वस्तता का एक स्मरणीय दृष्टांत चार साल बाद सामने आया, जब टीपू सुलतान के पिता हैदर नायक के पास अवध नरेश की ओर से एक पत्र लाने वाले दो जासूस अंग्रेज अधिकारियों द्वारा लखनऊ में पकड़े गये। पत्र के लेखार्थ से ठीक-ठीक बात जान कर रेजिडेंट संतुष्ट हो गया, क्योंकि वह पत्र हैदर नायक द्वारा अवध नरेश को लिखे गये एक पत्र का उत्तर था जिसमें हैदर ने लिखा था—"मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है कि इतनी बड़ी फौज और इतने साधन होते हुए भी आप ईसाइयों की गुलामी सहते हैं। आप के लिए अच्छा तो यह होगा

के तीन साल बाद भारतीय सरकार के पास एक अफ़वाह पहुँची (जो बाद में कौसिल के तीन सदस्यों द्वारा निराधार सिद्ध कर दी गयी) कि अवध का नवाब उसका विरोध करने के लिए सेनाएँ एकत्र कर रहा है। इस संबंध में पत्र-व्यवहार हुआ और भली-भाँति सफाई भी पेश की गयी, किन्तु कंपनी ने इस अवसर का लाभ उठाकर एक और शर्त लगा दी कि नवाब को ३५,००० से अधिक फौज रखने का अधिकार नहीं रह गया। यह प्रतिबंध कंपनी की गुप्त प्रतिक्रिया का दूसरा कदम था जिसके कारण नवाब निश्चय ही ब्रिटिश सहायता पर अधिक निर्भर हो गया था। धीरे-धीरे उसकी शक्ति कम होती गयी। उसके सामने इस रोक को प्रशंसात्मक ढंग से रखा गया और कहा गया कि यदि नवाब तथा उसके उत्तराधिकारी यह शर्त मानते रहेंगे तो कंपनी अपनी माँगों में कोई बढ़ोत्तरी नहीं करेगी। कंपनी और नवाब के बीच व्यवहारों में इस प्रकार के मिथ्या अभयदान उतने भ्रामक नहीं थे जितना अनुमान किया जा सकता है क्योंकि कंपनी की ओर से नियमित तथा निश्चित रूप से उन्हें भंग किया जाता था।

इस प्रकार के वचन-भंग के अनेक उदाहरण देकर हम अपने कथन की पुष्टि आगे करेंगे। प्रथम उदाहरण के रूप में निम्नलिखित घटना प्रस्तुत है:—

कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स ने भारत सरकार से बार-बार कहा था कि चुनार के किले पर अधिकार कर लेना बहुत महत्त्वपूर्ण है और इसके लिए किसी भी अवसर को खोना उचित न होगा।[1] संधि-पत्र के छठे भाग के अनुसार नवाब को पाँच लाख स्टर्लिंग चुकाने चाहिए।

कि आप अपनी ओर से उन पर आक्रमण करें और मैं अपनी ओर से। और हम सम्मिलित प्रयत्न से उन्हें नष्ट कर दें।" पकड़े गये पत्र में इसका उत्तर था—"धर्म के लिए हठ उन लोगों के लिए है जो सांसारिकता से मुक्ति पा चुके हैं, पर हम जैसों के लिए दूसरे हजारों व्यक्तियों द्वारा माने जाने वाले अपने से भिन्न धर्मों के प्रति भी कर्तव्य है, एक धर्म पर दूसरे की महत्ता दिखाना निंदायोग्य होगा। और मेरे जिन विपुल साधनों तथा विशाल फौज के विषय में आपने सुन रखा है, वे ईस्ट इंडिया कंपनी के शत्रुओं के विरोध के लिए हैं। अतः उनके अन्य किसी उपयोग की आप मुझसे आशा न रखें।" पत्र की सामग्री से अवगत हो जाने के पश्चात् रेजिडेंट ने वह पत्र भारत के गवर्नर-जनरल के पास भेजने की अनुमति नवाब से ले ली, जिससे गवर्नर-जनरल महोदय भी नवाब की निष्कपटता तथा उनकी मैत्री के प्रति आश्वस्त हो जायें।—एम० एम० मसीदुद्दीन।

1. "Return to House of Lords of Treaties and Engagements between East India Company and Native powers in Asia, sc," (1853), p. 55.

यही दावा प्रस्तुत करके संधि-पत्र के सातवें भाग के अधीन ब्रिटिश ने जमानत के रूप में चुनार को अपने अधिकार में कर लिया था। किन्तु जब रुपया चुका दिया गया तो उन लोगों के पास उसे अपने हाथ में रखने के लिए कोई बहाना शेष न रहा। अतः पुनः नवाब को वापस करना पड़ा। पर इस प्रकार के अस्थायी अधिकार से उसे हथियाने विषयक कंपनी की लालसा समाप्त नहीं हुई। वे तो जो रुपया पा चुके थे, उसके अतिरिक्त जमानत को भी अधिकार में करने का लोभ करने लगे। अतः चुनार को अपने अधिकार में करने के लिए और साथ ही इलाहाबाद का किला जिसे दिल्ली के बादशाह ने अपने अधिकार-काल में १७११ में अवध के नवाब को हस्तांतरित कर दिया था, अपने अधिकार में करने के लिए एक बहाना किया गया। बहाना यह था कि यह सब "ईस्ट इंडिया कंपनी की फौजों को अधिक शक्तिशाली बनाने के लिए किया गया है, ताकि वह नवाब की राज्य-शक्ति का संरक्षण कर सके।" ऐसा जान पड़ता है कि उस समय मराठे 'रोहिलकुंड' होकर अवध को धमकी दे रहे थे, या इस प्रकार कहा जा सकता है कि अवध को उत्तर तथा पश्चिम से खतरा था जब कि इलाहाबाद तथा चुनार दक्षिण तथा पूर्व में स्थित थे।

इन स्थानों को हथियाने के उद्देश्य के पीछे सुरक्षा की नीति उतनी नहीं जान पड़ती, जितनी उनके हस्तांतरण के लिए राजनीतिक दबाव। यह हस्तांतरण नवाब के हक म हुआ, यह उतना स्पष्ट नहीं है जितना कि इस हस्तांतरण से कंपनी की स्वार्थ-सिद्धि होती थी। फिर भी, २० मार्च, १७७२ को लिखे गये दो संधि-पत्रों द्वारा चुनार ले लिया गया और इलाहाबाद को अपने अधिकार में रोक रखा गया। इस प्रकार शुजाउद्दौला के जीवन-काल में ही अगस्त, १७६५ की संधि के पहले ही दो कदम ऐसे उठाये गये कि नवाब की फौज घटा दी गयी। उसके किले आत्मसात् कर लिये गये और "सच्ची मित्रता तथा दृढ़ मिलाप" के लिए उसे तैयार कर लिया गया। इस नीति का पूरा परिणाम नवाब के उत्तराधिकारियों के लिए सुरक्षित हो गया।

शुजाउद्दौला को शांति न थी, क्योंकि दृढ़ मित्रता ने बहते हुए फोड़े का रूप ले लिया था। १७७२ में वारेन हेस्टिंग्ज़ बंगाल का गवर्नर हो गया था। वह नवाब से मिला और उससे चालू संधि-पत्रों की पुनः परीक्षा के लिए बातचीत की, जिसके लिए दोनों पक्षों की परिस्थितियों ने पहले से ही प्रवृत कर रखा था। जिस समय हेस्टिंग्ज़ ने शासन कार्य सँभाला, उस समय एक ओर तो ईस्ट इंडिया कंपनी की संकट-बेला थी। उसकी यह दशा थी कि भारत की बहुत-सी संपत्ति हज़म कर चुकने के बाद वह अपनी सब आमदनी खर्च कर चुकी थी और घाटे का सामना कर रही थी। हेस्टिंग्ज़ सरकार ऋण से लदी हुई थी। तत्कालीन परिस्थिति के लिए, श्री मैकाले के अनुसार "उसने भले या बुरे

किसी भी तरीके से इस ऋण से छुटकारा पाने का निश्चय किया।" प्रतिष्ठित इतिहासकार ने संकटकाल में गवर्नर के शासन-प्रबन्ध का इस प्रशंसनीय ढंग से वर्णन किया है कि वह हमारी कहानी का एक महत्त्वपूर्ण अंग बन गया है। श्री मैकाले के अनुसार "हेस्टिंग्ज़ ने अपने पड़ोसियों से जिस प्रकार के बर्ताव का सिद्धांत अपनाया उसे टेवियाटडेल परिवार के एक बड़े डाकू परिवार की एक पुरानी कहावत से भली-भाँति प्रकट किया जा सकता है "मेरे पास कमी हो इसके पहले तुम्हारे पास कमी होगी।" ऐसा जान पड़ता है कि उसने अकाट्य मूलतत्व के रूप में मान लिया था कि जब लोक सेवा के लिए आवश्यक धन उसके पास नहीं है तो उसे वह रुपया उसके पास से लेना ही है जिसके पास है। उसके पक्ष में एक बात अवश्य कही जा सकती है कि उसके प्रभुओं ने उस पर जितना अधिक प्रभाव डाला उसका सामना बहुत बड़ा तपस्वी ही कर सकता था—वास्तव में उसके सम्मुख कोई चारा न था, उसे या तो बड़े-से-बड़े गलत काम करने थे, या फिर उसे अपने पद से हट जाना था, और पदत्याग के अर्थ थे धन और प्रतिष्ठा की सारी संभावनाओं का समाप्त हो जाना। यह सत्य है कि डाइरेक्टरों ने न कभी किसी दुष्कर्म की आज्ञा ही दी और न उसकी प्रशंसा की। यही नहीं, जो भी कोई उनके इस समय लिखे हुए पत्रों को देखेगा, उसे पता चलेगा कि उनमें अनेक निष्पक्ष और मानवीय संवेदनापूर्ण बातें तथा अनेक सदुपदेश हैं। उन्हें संक्षेप में राजनीतिक नैतिकता की व्यवहार-संहिता कहा जा सकता है। पर रुपये की माँग के सम्मुख सभी चेतावनियाँ रूपांतरित हो जाती थीं। 'दयालुता से शासन करो, तथा रुपया और अधिक भेजो; न्याय का कठोरता से पालन करो और पड़ोसी शक्तियों के प्रति संयम बरतो और रुपया अधिक भेजो'। वास्तव में हेस्टिंग्ज को अपने देश से मिले आदेशों का यही सार था। इन आदेशों की व्याख्या का अर्थ सामान्यतः यह निकलता है "जनता के पिता बने रहो, उन पर दमन भी करो, न्यायी बनकर अन्याय करो, संयत होकर लूटो।" संचालक भारत के साथ उसी प्रकार का व्यवहार करते थे जैसा कि प्राचीन समय में नास्तिकों के साथ गिरजाघर करते थे। वे बलि किये जाने वाले को जल्लाद के हाथ सौंप देते थे, इस आग्रह के साथ कि इसके साथ हर संभव दया की जानी चाहिए। इन आदेशों के भेजने वालों को हम अपराधी नहीं कहते, न उन पर संदेह ही करते हैं। यह संभव है, पंद्रह हजार मील दूर कार्यान्वित होने वाले अपने आदेशों के असंगत परिणाम को वे अनुभव भी न कर सकते हों। पर, यह असंगति कलकत्तावासी उनके नायब सेनापति पर प्रकट थी। उसका ख़ज़ाना खाली था, सेना को वेतन न मिला था, यहाँ तक कि उसकी तनख्वाह भी बक़ाये में थी। अन्न का अभाव था। सरकारी असामी नित्य भागते रहते थे। उससे कहा जाता था कि पाँच लाख पाउंड निश्चय ही फिर भेजो। हेस्टिंग्ज ने देखा कि उसके लिए यह ज़रूरी

हो गया है कि या तो वह अपने स्वामियों के आदर्श वाक्यों की या उनकी आर्थिक माँगों की उपेक्षा करे।

जब उन लोगों की किसी एक आज्ञा का उल्लंघन करना ही था तो उसे यह निर्णय करना था कि किस आज्ञा का उल्लंघन अधिक क्षम्य होगा। उसने ठीक ही निर्णय किया कि उपदेशों की उपेक्षा कर रुपया प्राप्त करना ही सबसे सुरक्षित मार्ग है।

शुजाउद्दौला के पास धन था, किंतु वह हमारा सच्चा दोस्त एवं स्वामिभक्त साथी था, अतः उसकी इच्छा के विरुद्ध उससे धन वसूल करने का कोई बहाना न था। इसी प्रकार कंपनी ने तीन लाख बीस हज़ार पाउंड के लिए बंगाल के नवाब को वचन दे रखा था। फिर भी, उसकी इच्छा के विपरीत हेस्टिंग्ज ने इस रकम का आधा उससे वसूल कर लिया। १६ अगस्त, १७६५ की संधि के अनुसार कोड़ा तथा इलाहाबाद के ज़िले दिल्ली के मुग़ल सम्राट् को दिये गये थे, पर इसी प्रकार हेस्टिंग्ज ने यह कह कर छीन लिया कि सम्राट् कोई स्वतंत्र राजा थोड़े ही है। कठिनाई यह थी कि छीने हुए ज़िलों की स्थिति ऐसी थी कि वे उस समय कंपनी के किसी काम के न थे। वे शुजाउद्दौला के काम के थे। अतः शुजाउद्दौला को पाँच लाख पाउंड की कीमत पर उन्हें ख़रीदने के लिए वाध्य किया गया और बनारस में लिखे गये ७ सितम्बर, १७७३ के संधि-पत्र में इस कार्य के लिए शर्तें शामिल की गयीं। (Parliamentary Return of Treaties. Sc. P. 57) इस संधि द्वारा हमारे पक्ष वाले उस राजा को 'हिंदुस्तान का वज़ीर' की उपाधि ग्रहण करने की अनुमति दी गयी। मैकाले के अनुसार यह वैसे ही था जैसे पिछली शताब्दी में सैक्सोनी तथा ब्रांडेनबर्ग के एलेक्टर, बादशाह के विरोधी होते हुए भी, गर्व से अपने को उसका ग्रैंड चैम्बरलिन तथा ग्रैंड मार्शल कहते थे। उपाधि के साथ इन ज़िलों के ख़रीद-दार के नाम हस्तांतरित करने में दूरदर्शिता तो थी नहीं, हाँ, कुछ बचत अवश्य थी, क्योंकि तीस वर्ष से भी कम अवधि में १८०१ की संधि के अनुसार शुजाउद्दौला के उत्तराधिकारी से कंपनी ने पाँच लाख पाउंड स्टर्लिंग में ख़रीदे हुए इन दोनों ज़िलों को ज़बरदस्ती झटक लिया। यह सत्य है कि उस समय उन्होंने उसे यह आश्वासन दिया था कि जिस प्रकार अवध तथा अन्य प्रदेश उसके राज्य में हैं उसी प्रकार 'कोड़ा' तथा 'कड़ा' व 'इलाहाबाद' भी सदा उसके अधिकार में रहेंगे। उस ज़ोरदार संधि-पत्र में कहा गया था—"कंपनी अथवा अंग्रेज़ अधिकारी किसी प्रकार अथवा किसी भी बहाने से इन क्षेत्रों के संबंध में विघ्न न डाल सकेंगे और वर्तमान शर्त के अनुसार नियत धन के अतिरिक्त इस संबंध में उनसे अन्ध किसी प्रकार की माँग न की जायेगी।" परंतु जो भूमि नवाब ने धन देकर ख़रीदी थी, उसके लिए उसके वंशजों तथा उत्तराधिकारियों पर दावा किया गया।

अच्छी तरह सिखाये हुए कबूतर की भाँति संपत्ति और उसका मूल्य दोनों ही 'मूल'

स्वामी के पास पहुँच गये। पूर्व में एक कहावत प्रचलित है कि अभिशाप उस चिड़िया के समान होते हैं जो निश्चित रूप से अपने अड्डे पर बसेरा लेने के लिए आती है। इस घटना में कपटपूर्ण उपकारों ने वापस आने की शक्ति प्रदर्शित की और जिन्हें यह परमानंद प्राप्त हुआ वे रोते रह गये।

पर इस समय उनके पास शुजाउद्दौला के खज़ाने से और रुपया निकालने का एक अच्छा बहाना था। शुजाउद्दौला ने ही चालू संधियों के संशोधन का अनुरोध किया था और इसीलिए उचित समय पर तथा चतुराई के साथ उपर्युक्त उपकार किये गये।

जैसा कि हम कह चुके हैं, शुजाउद्दौला इस समय बहुत परेशान था। जिस 'प्रगाढ़ मित्रता तथा दृढ़ संगठन' द्वारा वह सम्मानित किया गया था, वह उसके लिए बड़ी उलझन प्रमाणित हुआ था। उसकी सेना सीमित कर दी गयी थी। उसके किलों पर अधिकार कर लिया गया था। प्रत्येक नये बंदोबस्त द्वारा वह ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकाधिक प्रभाव तथा अनुशासन में आता जाता था। यद्यपि सेनाएँ उसकी रक्षा के लिए अनिवार्य नहीं थीं, पर संधियों के अनुसार वे उस पर लाद दी गयीं थीं और उसे उनका संपूर्ण खर्च उठाना ही था। जब कोई बहुत परेशान हो जाता है तो वह अपने ऊपर आयी विपत्ति का पूरा अंदाज़ा लगाना चाहता है। उसी प्रकार नवाब ने भी अपनी विपत्तियों का पूर्वाभास पाकर यह जानना चाहा कि ज़बरदस्ती लादी हुई इन "सेवाओं" के लिए उसे कुल कितना रुपया देना पड़ेगा। 'कोड़ा' तथा 'इलाहाबाद' के समर्पण वाले संधि-पत्र में उसने एक शर्त रखायी, जिसके अनुसार यदि कोई झगड़ा पड़े तो एक ब्रिगेड के लिए २,१०,००० सिक्का रुपया प्रतिमास[१] उसे देना पड़ेगा और इस रकम के अतिरिक्त

**१. ऐसा विदित होता है कि शुजाउद्दौला तथा कंपनी के बीच होने वाले प्रबंध से रोहिलों को पराजित करने के कार्यक्रम का कोई संबंध न था। इस बात का उल्लेख मेकालेने वारेन हेस्टिंग्ज के सम्बन्ध में लिखे हुए अपने एक लेख में किया है—"हम देख चुके हैं कि इसके पूर्व अवध रोहिलकुंड की ओर से मराठों द्वारा आतंकित किया जा रहा था और एम० एम० मसीउद्दीन के अनुसार "इस संधि-पत्र के पश्चात् नवाब शुजाउद्दौला ने रोहिल प्रदेश पर विजय पाने के लिए फौज की माँग की। रोहिलों के दमन के पश्चात्, किन्तु सेनाओं को लौटने की आज्ञा मिलने के पहले ही नवाब शुजाउद्दौला का देहांत हो गया और फौजों ने उसके राज्य को अधिकार में किये रखा। नवाब ने रोहिल की विजय के पश्चात् फौजों के खर्च के अतिरिक्त पचास लाख रुपये की रकम और देने का वादा किया था। यह बात हिजएक्सलेंसी नवाब शुजाउद्दौला**

किसी भी रूप में और कुछ न माँगा जायगा। जैसा कि हम लिख चुके हैं, यह संधि-पत्र ७ सितम्बर, १७७३ में लिखा गया और इस संधि-पत्र का शुजाउद्दौला ने अपने जीवन-काल में उल्लंघन न किया क्योंकि सन् १७७५ में उसकी मृत्यु हो गयी और इस प्रकार उसको अपने हठी मित्रों की माँग से छुटकारा मिल गया।

को लिखे गये हेस्टिंग्ज के पत्र तथा उसके उत्तर से स्पष्ट हैं। वारेन हेस्टिंग्ज के २२ अप्रैल, १७७३ भी लिखे गये पत्र का अनुवाद निम्नलिखित है—"माननीय ईस्ट इंडिया कंपनी को अपने पत्र में आप ने लिखा है कि यदि वादा किया हुआ चालीस लाख रुपया देने से रोहिल्ले इंकार करते हैं तो उन्हें समूल नष्ट कर दिया जाय।" इस विषय में आपको सूचित किया जाता है कि यदि कंपनी आप के अनुरोध पर यह कार्य संपन्न कर देती है और उनका सारा क्षेत्र आपके अधिकार में कर देती है तो क्या आप कंपनी की इस सेवा के लिए उसे पचास लाख रुपया देंगे ? क्योंकि इस धन से कम्पनी दिल्ली के सम्राट् का राज्यकर चुका सकेगी और इस प्रकार उसे अपने ऋण से छुटकारा मिल जायेगा। १८ नवम्बर, १७७३ को नवाब ने हेस्टिंग्ज को इस प्रकार जवाब दिया—" बनारस में जो हम लोगों की बातचीत हुई थी, उसके अनुसार रोहिलों को दंड देने तथा उन्हें देश के बाहर खदेड़ देने के लिए मैं कंपनी की पलटनों की सहायता लूंगा और मुझे पचास लाख रुपये ईस्ट इंडिया कम्पनी को देने होंगे। यह इस बात का प्रमाण है कि एक विशेष सेवा के लिए एक विशिष्ट समझौता हुआ था। पुल के लिए जो मासिक राशि देने की बात थी, उससे इसका कोई संबंध न था।

# अध्याय २

मृत्यु के उपरांत जब शुजाउद्दौला ईस्ट इंडिया कंपनी के चंगुल से पूर्णतया छुटकारा पा गया, उसके स्थान पर उसके पुत्र आसफुद्दौला को कष्ट मिलने प्रारंभ हुए। किसी राजकुमार का राज्याभिषेक उन अवसरों में से एक था जब कंपनी अपनी स्थिति सुधारने से नहीं चूकती थी। और बिना किसी हिचकिचाहट के इस अवसर पर उसने ऐसा किया भी। मृत्यु के समय शुजाउद्दौला को यही संतोष था कि कंपनी की फौजों के लिइ उसे केवल २,१०,००० रुपया प्रतिमास देना होगा। पर कंपनी ने शीघ्रता से उसे अपने फंदे में कस कर उससे प्रतिमास ५०,००० रुपया अधिक वसूल करना प्रारंभ कर दिया। यह अधिक वसूली इस प्रकार हुई। यद्यपि संधि-पत्र द्वारा शुजाउद्दौला को आश्वासन दिया गया था कि "उपर्युक्त धनराशि के अतिरिक्त किसी भी स्थिति में और माँग न की जायेगी," पर कौंसिल के अधिकांश व्यक्तियों ने दूरदर्शिता प्रदर्शित करते हुए निश्चय किया कि उसके साथ होने वाली संधि उसकी मृत्यु के साथ ही समाप्त हो गयी, अतः उसके उत्तराधिकारी के साथ और अधिक लागत की संधि निश्चित की गयी। २१ मई, १७७५ को इस संधि-पत्र पर हस्ताक्षर हुए और उसमें उल्लेख किया गया कि "ईस्ट इंडिया कंपनी तथा नवाब आसफुद्दौला के बीच सदैव सर्वव्यापक शांति, दृढ़ मैत्री तथा पूर्ण सहयोग रहेगा।" इस प्रकार के उत्तम तथा प्रशंसनीय उद्देश्य से, दो साल पूर्व निश्चित हुए धन के परिमाण से फौज का खर्च और अधिक बढ़ गया और कुछ अन्य भार भी, जिनके लिए अलग से कहना होगा, उस पर लादे गये।

इस संधि-पत्र ने सबसे पहले तो नवाब के राजस्व का एक बड़ा भाग, बिना किसी प्रतिदान के, हड़प लिया, क्योंकि, उसकी पाँचवीं शर्त के अनुसार बनारस तथा उसके आसपास के प्रदेश "हितैषी" कंपनी ने सदा के लिए अपने अधिकार में कर लिये। धार्मिक हिंदुओं का तीर्थस्थल बनारस उस समय विलास-सामग्री के वाणिज्य की दृष्टि से उत्तरी भारत का सबसे धनी नगर था। भारतीय साम्राज्य के विघटन के समय इसका राजा मुगल साम्राज्य से स्वतंत्र हो गया था। पर, बाद में उसे मुगल साम्राज्य के अधीन होने के लिए बाध्य होना पड़ा। उसे अवध के नवाब को राज्यकर चुकाना पड़ता था, और इस

परिवर्तन के बाद से यह राज्यकर सीधे कंपनी की पेटी में ले जाया जाने लगा।[1] बड़ी बेफिक्री से इस प्रकार जब भी कंपनी अपने उस मित्र से अधिक धन की माँग कर रही थी,

१. सैखुल मुतखुर्रीन के इतिहास में इसका उल्लेख है कि डाइरेक्टरों की इच्छा से वारेन हेस्टिंग्ज ने नवाब शुजाउद्दौला को बार-बार बनारस का पूरा राज्य कंपनी को सौंप देने को कहा, लेकिन नवाब इसके लिए राजी न हुआ। उसकी मृत्यु के पश्चात् लखनऊ के रेजिडेंट श्री ब्रिस्टो को आसफुद्दौला के वज़ीर मुख्तारउद्दौला के षड्यंत्रों तथा साजिशों से इसे कंपनी के अधीन कर देने में सफलता मिली। वास्तव में घटना की वास्तविक दशा यह थी कि आसफुद्दौला रोहलेखंड के राज्य पर शासन करता था। उसे भय था कि उसका पिता, उसके भाई को उसका स्वतंत्र शासक न बना दे। जब नवाब ने रेजिडेंट से अनुरोध किया कि वह उसके भाई से वहाँ का शासन ले लें, तो रेजिडेंट ने इनकार कर दिया। पर, जैसे ही अभीप्सित क्षेत्र (बनारस ?) का हस्तांतरण हो गया, नवाब के अनुरोध का पालन कर दिया गया।

उसी इतिहास में कहा गया है कि वारेन हेस्टिंग्ज ने अवध से अलग किये हुए बनारस को ईस्ट इंडिया कंपनी के साम्राज्य के अधीन करना न्यायानुकल नहीं समझा। उसने अपनी यह लिखित राय अपने देश के अधिकारियों को भी लिख भेजी, पर कौंसिल के मेंबरों के एकमत होने के कारण यह मामला जैसे का तैसा रहा। आगे चल कर लार्ड डलहौज़ी ने भी यही किया। जब भारत सरकार की परिषद् में इस विषय पर विचार-विमर्श हुआ तो इतना अधिक मत वैभिन्य था कि संधि-पत्र अस्वीकार कर दिया गया। इसलिए १८५३ की संधि-पुस्तक में इसे नवाब आसफुद्दौला के साथ प्रस्तावित संधि की धाराएँ लिखा गया है।

इस संधि-पत्र के संबंध में डाइरेक्टरों का व्यवहार ध्यान देने योग्य है। अपने १५ नवम्बर, १७७५ के पत्र में कौंसिल के स्वीकृत प्रस्ताव द्वारा स्वर्गीय नवाब शुजाउद्दौला के साथ संधि की उपेक्षा की और संकेत करते हुए वे कहते हैं—" यद्यपि शुजाउद्दौला की मृत्यु के पश्चात् उसके उत्तराधिकारी के साथ नया प्रबंध होना आवश्यक है, पर हम कौंसल की इस बात से सहमत नहीं हैं कि नवाब की मृत्यु के साथ ही अवध के साथ हमारी संधियाँ समाप्त हो गयीं। पर जैसे ही नये राजस्व की वृत्ति तथा फौजों के लिए नये भत्ते की जानकारी उन्हें मिल गयी, उन्होंने अपने अपने २४ दिसम्बर, १७७६ के पत्र म लिखा—"बड़े संतोष के साथ हम देखते हैं कि हमारे नौकरों ने अपने स्वामियों के हितों का पर्याप्त ध्यान रखा है, और स्व ीय

उस समय उसने उसके धन-प्राप्ति के साधन तथा स्रोत कम कर दिये थ। कहावत के अनुसार वे "मोमबत्ती के दोनों सिरे जला रहे थे", क्योंकि वे देखते थे कि खच मोमबत्ती बनाने वाले का होता है। आसफुद्दौला के राज्याभिषेक के अवसर पर उससे "सुदृढ़ मैत्री" और "पूर्ण सहयोग" को कायम रखने के लिए केवल यही उपाय काम में नहीं लाये गये। 'कोड़ा' और 'इलाहाबाद' के ज़िलों के संबंध में नवाब के पिता को वचन दिया गया था कि वे सदा उसके अधिकार में रहेंगे। एक ओर तो इन ज़िलों के व्यास में कमी कर दी गयी और वर्तमान संधि की चौथी धारा के अनुसार जब तक कि कोर्ट आफ़ डाइरेक्टर्स की इच्छा की सूचना न मिले तभी तक उनकी रक्षा करने का आश्वासन दिया गया, दूसरी ओर संधि-पत्र की सातवीं शर्त के अनुसार यदि वह दी हुई सेना के अतिरिक्त कोई सेवा लेना चाहता हो या फिर (जैसा कि हम शर्त की व्याख्या करते हुए कह चुके हैं) नवाब की नहीं, वरन् अपनी सुविधा के लिए पलटन बढ़ाना चाहेंगे, तो नवाब को और अधिक धन देना पड़ेगा। इस संधि के फलस्वरूप नवाब पर करों का भार बढ़ गया था, उसके राज्य के कई भाग कट गये थे, उसका व्यास घट गया था और कंपनी की भावी सुविधाएँ बढ़ गयी थीं। फिर भी, शुजाउद्दौला के साथ जो संधि हुई थी, उसे हटा कर इसे सन्निविष्ट करते समय कंपनी के गणकों ने पिछली संधि की कोई सुविधाएँ हाथ से न जाने दीं। संधि के समय परस्पर व्यवहार के अनेक पावने थे। उनका हिसाब करते समय वज़ीर के पावनों को तो घटाया गया, परंतु कंपनी वालों ने अपने पावने पाई-पाई वसूल कर लिये। प्रथम संधि-पत्र को रद्द करके तथा लाभ का अंतिम हिस्सा तक चूस कर उसे निचोड़े हुए संतरे के समान एक ओर फेंक दिया गया, क्योंकि वर्तमान संधि के परिशिष्ट रूप में उसी तारीख में कहा गया कि कोड़ा, इलाहाबाद, रुहेलखंड तथा सैनिकों के वेतन के रूप में कंपनी का जो पावना स्वर्गीय नवाब शुजाउद्दौला की शर्तों के अनुसार है वह बिना किसी झगड़े के नियत समय पर दिया जायेगा। इस प्रकार साम्राज्यवादी महत्त्वाकांक्षा तथा सूदखोरी की भावना एकत्र हो गयी और कुटिल कूटनीतिज्ञों के चंगुल में पड़कर अवध के नवाब को उनकी नित्य परिवर्तित होने वाली आवश्यकताओं के लिए कुर्बान किया जाता रहा।

**शुजाउद्दौला के उत्तराधिकारी आसफुद्दौला के साथ जो हम लोगों के लिए ठोस और स्थायी लाभकारी आशा दिलाने वाली संधि हुई है, उसे भी हम साधुवाद देते हैं। एम० एम० मसीदुद्दीन ने पृष्ठ १९ पर लिखा है कि बनारस के सूबे से नवाब को ७० लाख रुपया वार्षिक आय थी और कंपनी के ख़जाने में वहाँ से २५ लाख रुपया नगद मुनाफा पहुँचता था।**

कंपनी अपने नौकरों को परस्पर विरोधी आदेश दिया करती थी और मैकाले के अनुसार वे तत्कालीन आवश्यकताओं के अनुसार उन आदेशों का अर्थ लगाते थे। यहाँ पर यह कहना उचित होगा कि कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स ने अवध के नवाब को दरिद्र बनाने के विरुद्ध स्थानीय सरकार को चेतावनी दी थी; जब कि उसी सरकार ने स्वयं को ऋण-ग्रस्त तथा मुसीबतों में पाकर परेशान करने वाले उन्हीं के विरोधी आदेशों का भी पालन किया था। १७७३ की संधि द्वारा डाइरेक्टरों ने अपनी फौजों का भार नवाब पर लादने में अनिच्छा का नाट्य किया था। संधि के अनुसार भी यह भार अस्थायी तथा वैकल्पिक था, किन्तु स्थानीय सरकार ने इसे एक स्थायी बोझ बना देने के लिए अपनी पूरी शक्ति लगा दी। अंत में दबी ज़बान यह कह कर इस बात की मंजूरी दी कि "यह सब कुछ सूबे की पूर्ण सहमति से किया जाय।" ऊपर की टिप्पणी में दिखाया जा चुका है कि किस प्रकार डाइरेक्टर पहले तो हिचकिचाते थे, किन्तु बाद को उन्होंने १७७५ की संधि स्वीकार कर ली थी, और अब कुछ बचे हुए विकल्पों के कारण, उसकी कुछ शर्तों को कार्य-रूप में परिणत करने में शंकाएँ करने का बहाना करते थे। इस प्रकार सन् १७७७ में एक फौज, जिसे अस्थायी फौज़ कहा जाता था और जिसके विषय में प्रकट रूप में यह स्थिति थी कि उसका खर्च नवाब को तभी तक देना होगा, जब तक वह उसे अपनी सेवा में रखेगा, स्थायी कर दी गयी। यही नहीं, हाल में उसके लिए वसूल किया जाता हुआ खर्च भी बढ़ा दिया गया था, जब कि प्रगट रूप से डाइरेक्टर अब भी इस बात के लिए उत्सुक होने का बहाना करते थे कि नवाब पर उसकी इच्छा के विरुद्ध भार न लादा जाये। कौंसिल में गवर्नर जनरल को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा—"यदि आप पहले नवाब को यह प्रस्ताव मानने के लिए राजी करने में अपना ढंग इस्तेमाल करते हैं और बाद में उसे अपनी मर्ज़ी के अनुसार फौजों का खर्च देने के लिए बाध्य करते हैं तो आपके उद्देश्य अन्यायपूर्ण हैं। इससे कंपनी की बड़ी बदनामी होगी।" जैसा कि सर पीटल टीजल जोसेफ के संबंध में कहते हैं—"कितने उच्च विचार हैं।" कितने खेद की बात है कि ये विचार प्रयोग में नहीं लाये गये। इन उद्‌गारों के होते हुए भी वह अस्थायी ब्रिगेड स्थायी हो गयी। जिन अंग्रेज़ सिपाहियों के पोषण का भार नवाब पर डाल दिया गया था, उनके खर्च की यही सीमा नहीं थी। कंपनी की सेवा से नियुक्त कुछ फुटकर फौजें भी उसके खर्च में डाल दी गयी थीं और उसकी देशी फौजों का एक बड़ा भाग कंपनी के अफसरों के नेतृत्व में कर दिया गया था। संक्षेप में फौजों के लिए उसका कुल खर्च, चाहे वह सेना के लिए नवाब द्वारा दिये जाते धन या राज्य में दौरों के रूप में हों, धीरे-धीरे बढ़ता गया। यहाँ तक कि यह खर्च डेढ़ करोड़ रुपया या पंद्रह लाख पाऊंड स्टर्लिंग हो गया। परिणाम-स्वरूप उसका राज्यकोष इतना खाली हो चुका था कि दुखी नवाब और अधिक न सह

सका। उसने बार-बार जोर देकर कहना शुरू कर दिया कि उसमें अब न तो पलटनों व फौजों का खर्च उठाने की क्षमता है और न अन्य उपाधिधारियों को ही, जिन्हें वह वेतन दिया करता था, धन देने की शक्ति है। इस प्रकार की तरह-तरह की प्रार्थनाओं के बाद[1] सन १७७९ में उसने गवर्नरजनरल के नाम एक पत्र लिखा। इसमें उसने कंपनी की निरंतर जारी रहने वाली अन्यायपूर्ण माँगों, उसके फौजी अधिकारियों के अत्याचारों तथा निर्दयता का वर्णन किया, साथ ही उस कथित अस्थायी सैन्यदल को वापस बुला लेने की प्रार्थना भी की। किन्तु यह अस्थायी बोझ उसी (आख्योपन्यास में वर्णित) समुद्री बूढ़े के समान सिद्ध हुआ जो अभागे सिन्दबाद के कंधों पर सवार हो गया था। पहले तो वारेन हेस्टिंग्ज स्वयं ही ब्रिगेड की वापसी का विरोध करता रहा, पर नवाब ने एक भेंट के लिए विशेष इच्छा प्रकट की और ११ सितम्बर, १७८१ को चुनार में यह अवसर देकर उसे कृतार्थ किया गया। वहाँ नवाब ने अपने ऊपर लादे हुए खर्च को वहन करने में अपनी असमर्थता जतायी और फौजों की वापसी के संबंध में उसकी प्रार्थना के विरुद्ध अन्य कोई चारा न देख कर गवर्नर जनरल ने १९ सितम्बर को फौजों की वापसी के राजीनामे पर हस्ताक्षर कर दिये। यह राजीनामा Parliamentary Return of Treaties के पृष्ठ ६० और ६१ पर मिलेगा। पर वहाँ इस बात का कोई संकेत भी नहीं है कि इसे कभी प्रयोग में नहीं लाया गया। हाउस आफ लार्ड्स में पेश की हुई संधियों के साथ जो प्रस्तावनाएँ तथा ऐतिहासिक टिप्पणियाँ होती हैं, उनका यह मूल्य है। वास्तविकता यह है कि इस प्रकट वादे के होते हुए भी कई साल तक अनिच्छुक नवाब पर इन अतिरिक्त फौजों का भार रहा और उनके खर्च उसके दरिद्र बना दिये गये राज्यों से निर्दयतापूर्वक वसूल किये जाते रहे।

घटना का अब ब्योरेवार वर्णन किया जायेगा। इस बीच राज्यों की सरकार के कार्यों में नवाब के हस्तक्षेप की प्रारंभिक घटनाओं की ओर दृष्टिपात करना उचित होगा। इसका उल्लेख एक बिना तारीख वाले राज़ीनामें में हुआ जो प्रकट रूप से उपर्युक्त राजीनामें का समकालीन ही है। (देखिए "Parliamentary Return of Treaties S. c." p. 61.)। इस समझौते द्वारा नवाब को स्वयं अपनी तथा खजाने की स्थिति सुदृढ़ करने के लिए अपनी फौजों की संख्या कम करने की सलाह दी गयी थी। सुझाव था कि नवाब निजी तथा गृहस्थी के खर्च के लिए एक निश्चित धनराशि अलग कर ले और राजस्व का शेष भाग जनता के मंत्रियों के प्रबंध में तथा "रेजिडेंट की देख-रेख में"

१. Recital in agreement of 19th September 1781." Parliamentary Return o Treaties; Sc." p. 60.

जनता के खज़ाने में जमा कर दे। इस प्रकार जाँच करने वाले रेजिडेंट द्वारा नवाब के राजस्व को हथियाने के साथ-साथ कंपनी ने उसके निजी मामलों में भी हस्तक्षेप करना शुरू कर दिया। संयोग ऐसा हुआ कि एंड्र्यू मार्क्विस डलहौज़ी के अंतिम झपट्टे के लिए सब सामान जुट गये। फिलहाल कंपनी तथा नवाब के बीच धन के प्रश्न ने कंपनी का ध्यान अपनी ओर केंद्रित कर रखा था और नवाब को अपनी भावी बरबादी का भय परेशान कर रहा था। जैसा ८ अप्रैल, १८८९ के कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स के परिपत्र में स्वीकार किया गया है, १ फरवरी, १७७४ से १७८३ के सितम्बर के अंत तक लगभग नौ साल की अवधि में कंपनी ने अपने उस नवाब मित्र से लगभग दो करोड़ तीस लाख रुपये (२,३०,००,००० पौंड स्टर्लिंग) ऐंठ लिये और डाइरेक्टरों की आज्ञा पर नवाब के राज्य की दशा दयनीय हो गयी। राज्य के खज़ाने से इतने बड़े निकास का प्रभाव कंपनी को मिलने वाले कर पर पड़ना अवश्यंभावी था। सहायक राज्यों का दिवाला ही निकलने वाला हो गया था। यहाँ तक कि अवध के प्रति कंपनी के व्यवहार की ओर संकेत करते हुए स्वयं वारेन हेस्टिंग्ज कहता है—"नवाब की सेवा में नियुक्त कंपनी के असामरिक तथा सामरिक पदाधिकारियों के वेतन, भत्ते तथा पेंशन के लिए वसूल की जाती हुई रकमों की संख्या परिमाण के कारण नवाब के राजस्व और अधिकारों पर असहनीय बोझ पड़ रहा था। और नवाब के स्वदेशी सेवकों तथा अनुगामियों को उनकी सेवाओं से मुक्त कर दिये जाने के कारण हम पूरे देश की ईर्ष्या तथा क्रोध के पात्र हो गये हैं।" संक्षेप में कहना यह चाहिए कि अब उन पर यह प्रकट हो गया था कि उनकी दूध देने वाली गाय अब दुबली हो रही थी, अत: अब उसकी सावधानी से देख-भाल की ज़रूरत है, अन्यथा उसके क्षुधार्त अवशेषों के मूल्य से भी हाथ धोना पड़ेगा। पर वे लोग उन दिनों ऐसे बड़े उपाय के लिए तैयार न थे अत: अवध को कुछ समय के लिए छुटकारा दिया गया जिसकी भूमिका में ३१ दिसम्बर, १७८३ में रेजिडेंसी को समाप्त कर दिया गया।[1]

१. एम० एम० मसीहुद्दीन ने लिखा है कि यह ध्यान देने योग्य बात है कि रेजिडेंट से मुहलत के इस समय में, न तो कहीं किसी प्रकार के उपद्रव ही हुए, न राजस्व वसूल करने में ज़रा भी कठिनाई हुई। यही नहीं, देश पुनः पूर्वावस्था में आने लगा, उसका खज़ाना पुनः भरने पूरने लगा और नवाब के शासन में प्रजा पूर्ण रूप से संतुष्ट थी। रेजिडेंट के दफ्तर के समाप्त होने का इतना अच्छा परिणाम माननीय एफ० जे० शोर के इस वक्तव्य का समर्थन करता है—"देशी दरबारों में रेजिडेंट की नियुक्ति से कुछ भी लाभ होता है, यह अनुभव करना बहुत कठिन है। वास्तव में यह मानने का पुष्ट आधार है कि यह प्रथा भिन्न-भिन्न राज्यों में कुशासन तथा भ्रम को प्रोत्साहित

१७८५ को वारेन हेस्टिंग्ज भारत छोड़ कर चला गया। अवध के साथ कुछ दया-लुता के बर्ताव की छोटी-सी अवधि १७८६ में लार्ड कार्नवालिस के आगमन के साथ आरंभ हुई। अन्य बातों के साथ-साथ वारेन हेस्टिंग्ज इस प्रदेश की बेगमों के प्रति अपने व्यवहार की जबाबदेही लेकर गया था। प्रकट किये गये तथ्य इतने अपूर्ण हैं कि दबी ज़बान जो 'ब्लू बुक' प्रकाशित की गयी है, उसमें इस सम्बन्ध का एक शब्द भी नहीं है। हेस्टिंग्ज के चले जाने के बाद न्याय विरुद्ध माँगों में कुछ कमी आयी। साथ ही कंपनी के हस्तक्षेपों में भी कमी हो गयी क्योंकि लार्ड कार्नवालिस का ध्यान अवध की घटनाओं की ओर आकर्षित कराया गया था और उसने अस्थायी कष्ट शमन के लिए कुछ उपयुक्त उपाय भी किये थे। यह सच है कि उसने अस्थायी ब्रिगेडों को वापस लौटा लेने से इनकार कर दिया था और नवाब को सलाह दी कि उसका इन फौजों पर जितना अधिक खर्च हो रहा है, उस हिसाब से अपनी फौजें कम कर दे। पर उसने उनके रख-रखाव के लिए उन करों को वसूल करने में ढील दी जो अभी तक बिना किसी औचित्य या न्याय के वसूल किये जाते रहे थे। संधि के अनुसार नवाब को प्रतिवर्ष कंपनी को ३४ लाख से कुछ अधिक रुपया देना होता था, किंतु हेस्टिंग्ज द्वारा उस पर अतिरिक्त फौजें लादी गयी थीं, अन्य बहानों द्वारा भी धन वसूल किया जाता था और इस प्रकार वास्तव में नवाब को लगभग चौरासी लाख रुपया देना पड़ता था। अब यह मान लिया गया कि यह रकम घटा कर पहले के संधि-पत्र की शर्त के अनुसार पचास लाख[1] कर दी जानी चाहिए।

**करने के उद्देश्य से ही चलायी गयी है। इन राज्यों पर अधिकार करने का बहाना तथा अवसर उत्पन्न करना भी इसका एक उद्देश्य जान पड़ता है।"**
( Notes on Indian Affairs. )

१. **इस कार्य व्यापार को 'ब्रिटिश इंडिया' के इतिहासकार 'श्री मिल' ने 'ब्रिटिश इंडिया' के पाँचवें भाग के पृष्ठ २५९ पर इस प्रकार लिखा है—"आर्थिक भार के कारण मार्क्विस ने कुछ परिवर्तन करने की अनुमति दी। ऐसा जान पड़ता है कि पूर्ववर्त्ती-नौ वर्षों में नवाब ने विभिन्न शीर्षकों के अंतर्गत कंपनी को प्रतिवर्ष चौरासी लाख रुपये की दर से दिया था यद्यपि १७७५ की संधि के अनुसार उसे केवल ३१,२०,००० रुपया सालाना और १७८१ की संधि के अनुसार ३४,२०,२००० रुपया सालाना देना था।**

**"यह मान लिया गया है कि नवाब को प्रतिवर्ष पचास लाख रुपया देना होगा और इसमें सभी कुछ सम्मिलित होगा। गवर्नर जनरल ने यह घोषित कर दिया कि नवाब से संबंधित जो भार कंपनी ने अपने ऊपर ले लिया है, उसकी क्षतिपूर्ति के**

यह धनराशि अब भी पिछली शर्त के अनुसार नियत धनराशि से बहुत अधिक थी। किंतु पहले होने वाली उन न्याय विरुद्ध माँगों की तुलना में गनीमत थी। और वर्तमान माँग के साथ, जिनमें दिया गया था कि राज़ीनामें की तारीख के दिन से नियत रकम के अतिरिक्त कोई भी माँग नहीं की जायेगी, यह वादा भी आगे चल कर तोड़ दिया गया था। फिर भी, लार्ड कार्नवालिस ने उस समय कंपनी के अफसरों द्वारा लिये जाने वाले प्रच्छन्न वेतन तथा उपहारों पर रोक लगायी। इनके दमन के लिए उसने अवैध कर-संग्रह का समाचार डाइरेक्टरों को देने की योजना बनायी। साथ ही उसने आग्रह किया कि वारेन हेस्टिग्ज की आज्ञा से जो फौजें 'अंगरक्षकों' के रूप में नियुक्त की गयी थीं और जिनकी तनख्वाह नवाब को देनी पड़ती थीं, समाप्त कर देनी चाहिए क्योंकि यह खर्च उस पर बहुत बड़ा बोझ था। उसने यह भी कहा कि अंगरक्षक बहुत पहले हट जाने चाहिए थे। इसी समय उसने उन व्यक्तिगत प्रतिनिधियों की ओर संकेत किया जो रेजिडेंट के स्थान पर नियुक्त हुए थे और जिन पर वार्षिक खर्च १,१२,९५० पौंड स्टर्लिंग था। इसमें अतिरिक्त मेजर ने उस समय जो लाभजनक पद सँभाल रखा था उसका वेतन था २२,८०० पौंड। लार्ड कार्नवालिस ने यद्यपि नवाब को इस खर्च से मुक्ति नहीं दी, पर उसने रेजिडेंट का पद पुनः चालू करने के लिए पत्र-व्यवहार किया, क्योंकि इस पद के समय नवाब का केवल ६५,००० पाउंड वार्षिक खर्च होता था। इस पर भी जब रेजिडेंसी की पुनः स्थापना हुई तो उसने इसके संबंध म " Parliamentary Returns of Treaties S. c. पृष्ठ ६४" पर अपने एक पत्र में बड़ा बुद्धिमत्तापूण तथा विवेकपूर्ण कार्यक्रम लिखा है :—

"आपके दरबार में इस समय एक रेजिडेंट रह गया है, पर चूँकि कंपनी का यह अभिप्राय है और मेरा यह निश्चित उद्देश्य है, आपकी सरकार के मामलों की छोटी-छोटी बातों में कोई हस्तक्षेप नहीं किया जायेगा, इसलिए रेजिडेंट को कड़े शब्दों में आदेश भेजे जायँगे कि वह न तो स्वयं ही हस्तक्षेप करे और न नागरिकों अथवा सरकार के अधीन व्यक्तियों के सार्वजनिक अथवा निजी व्यवहार के शुल्कों से अथवा अन्य किसी रूप में हस्तक्षेप करने दे। संक्षेप में आपके तथा आपके मंत्रियों के हाथ आप के देश के प्रबंध का समस्त भार छोड़ कर, मैं अन्य लोगों के हस्तक्षेप पर रोक लगा दूँगा। पिछले कई वर्षों से आपके राज्य के निवासियों ने अपने स्वार्थवश इस सरकार के पास फरियाद

**लिए यह धन पर्याप्त होगा। दूसरे शब्दों में यह घोषित कर दिया गया कि उस अधीन नवाब से पिछले नौ वर्षों में प्रतिवर्ष चौंतीस लाख रुपया अनुचित रूप से लिया जाता रहा।"**

की है और इसमें आपकी हानि हुई है। अतः मैंने उनके इस अन्याय को रोकने का, और उनके आवेदन पत्रों की उपेक्षा करने का निश्चय कर लिया है, लेकिन क्योंकि दोनों सरकारों के संबंध आपको ज्ञात हैं, आपकी ओर से न्याय की ओर विशेष ध्यान देने से दोनों को ही सम्मान तथा यश प्राप्त होगा।

अंत में उसने घोषित किया कि उसका उद्देश्य जरूरी माँगों के अलावा कोई अन्य माँग करके नवाब को परेशान करना नहीं है। हाँ, उसकी इच्छा है कि कंपनी की फौजों के कारण जो पिछला हिसाब बाकी रह गया है, उसे नवाब को चुका देना चाहिए, शेष जो बचेगा, उसे बही से काट कर चुकता समझ लिया जायेगा। नवाब के प्रति अपने उपाय के प्रभाव का वह साधारणतया इस प्रकार वर्णन करता है—"हम उसके देश की सुरक्षा का भार लेते हैं, उसके बदले में वह (नवाब) वह असली खच देता है जो उसने अपने हित की एक शर्त द्वारा स्वीकार किया है और अपने राज्य के आंतरिक शासन का पूरा दायित्व तथा अधिकार उसके अपने हैं।[1] अपने आपके प्रति सम्माननीय उद्देश्यों से प्रेरित होकर अपने निष्ठावान् सहपक्षी के प्रति अपने कर्त्तव्यों का ध्यान रखते हुए तथा ब्रिटिश प्रतिष्ठा और नैतिकता के प्रतिनिधि के रूप में अपने कर्त्तव्यों की दृष्टि से लार्ड कार्नवालिस इस नतीजे पर पहुँचा।[2] हमारे भारतीय राजकर्मचारियों के वंशज अपनी पूर्ववंशावली तथा परंपरागत कथाओं को बड़े गर्व से कह सकते हैं।

कंपनी तथा नवाब के बीच एक व्यापारिक समझौता १७८८ में अच्छे तथा उदार

१. Papers relating to East Indies, printed by order of the House of Commons in 1806. No. 2. pp. 1-14.

२. **बेगमों के विषय में शेरिडन अधूरी प्रकाशित रिपोर्ट में इस बात का प्रमाण है कि आसफुद्दौला (जिसे भूल से शुजाउद्दौला कहा गया है) ने इस संबंध में लॉर्ड कार्नवालिस से एक करुण विनती की थी। जब लॉर्ड कार्नवालिस ने नवाब से कुछ ऐसे तरीके अपनाने को कहा जिनसे उसके राज्य का पुनः सुधार हो सके और लोग खुश रह सकें, तो नवाब ने प्रभावशाली उत्तर दिया। उस अपमानित नवाब ने लॉर्ड लार्ड साहब से कहा कि जब तक अवध के राजस्व पर अंगरेज सरकार की माँगें असीम रहेंगी, तब तक बचत के लिए कोई उपाय निकालने की उसकी (नवाब की) कोई कोई रुचि नहीं है, और जब तक अंगरेज उसके देश की सरकार के मामलों में हस्तक्षेप करते रहेंगे, कोई भी सुधार करने का प्रयत्न उसके लिए व्यर्थ होगा, क्योंकि उसकी प्रजा जानती है कि अपने ही राज्यों में वह एक तुच्छ व्यक्ति है। अतः वह उसकी तथा उसके मंत्रियों की हँसी उड़ाती है और उनसे घृणा करती है।**

वातावरण में हुआ। जैसा कि भारत छोड़ने से पूर्व लार्ड कार्नवालिस ने मंजूर किया था, और नवाब को जताया था, वह पचास लाख धन जनता के उपकारार्थ नियम से दिया जाता था। अवध पुनः उन्नतिशील, खुशहाल तथा मालदार हो गया था। लेकिन कार्नवालिस द्वारा जो गंभीरतापूर्वक उपर्युक्त वादा किया गया था, वह तभी तक रहा जब तक कि लार्ड कार्नवालिस भारत में रहे। लार्ड कार्नवालिस के आदेश के अनुसार नवाब नियमित रूप से पचास लाख का कर देता रहा। अवध इस अवधि में खुशहाल, प्रसन्न तथा ऋणशोधनक्षम रहा। लार्ड कार्नवालिस के प्रस्थान के साथ ही वह वादा तोड़ दिया गया। आगामी गवर्नर जनरल सर जान शोर ने उस अभागे नवाब '('मिल की भाषा में') को जनता के उपकारार्थ नियत किये हुए धन के साथ एक यूरोपियन तथा एक देशी अश्वारोही पलटन का खर्च देने को कहा, इस शर्त पर कि यह खर्च साढ़े पाँच लाख रुपया वार्षिक से अधिक न होगा। लार्ड कार्नवालिस का किया हुआ समझौता इस लज्जास्पद ढंग से तोड़ा गया। न्याय विरुद्ध माँगें, जिनके विषय में नवाब का ख्याल था कि वे नियत की जा चुकी हैं, बढ़ती ही गयीं। इस अन्याय के ज्ञान ने उसका साहस बढ़ा दिया और उसने (नवाब ने) एक कौड़ी भी और देने से साहसपूर्वक इनकार कर दिया। अविवादास्पद तथा घोषित वादे में विश्वास तथा साहस व्यर्थ था। निष्कपट नवाब को अब भी समझना था कि "सच्ची मित्रता तथा सुदृढ़ मैत्री" ने 'निर्लोभ' मित्रों का साहस कितना बढ़ा दिया है। कहा जाता है कि ब्रिटिश अधिकारियों ने उस अस्वीकृति का दोषी नवाब के मंत्री महाराजा झाऊलाल को ठहराया और नवाब के प्रतिरोधों तथा विरोधों के होते हुए भी उस निर्दोष भले आदमी को राजनीतिक कैदी बना कर अपने इलाके में भेज दिया। उसके बाद नवाब को अतिरिक्त धन देने को बाध्य करने के लिए सर जान शोर मार्च, १७९७ को लखनऊ के लिए रवाना हुआ और धमकी तथा छल द्वारा जो कुछ चाहता था उसे कराने के लिए नवाब पर बल प्रयोग किया। इस प्रकार दो अश्वारोही सेनाएँ, एक यूरोपियन तथा दो पैदल (देशी) सेनाओं का भार अतिरिक्त रूप से अवध राज्य पर डाल दिया गया, जिनका अतिरिक्त खर्च प्रतिवर्ष पाँच लाख पचास हजार रुपया था। इस प्रकार कंपनी इस दूसरे परिणाम पर पहुँच गयी जिसकी न तो शायद इच्छा ही की गयी थी और न निंदा।

इस व्यवहार का आसफुद्दौला के हृदय पर इतना बुरा प्रभाव पड़ा कि वह बीमार पड़ गया और उसने औषधि लेने से यह कहते हुए इनकार कर दिया—"टूटे हुए दिल की कोई दवा नहीं होती।" कुछ ही महीने बाद उसका स्वर्गवास हो गया। पहले की तरह नये उत्तराधिकार के अवसर पर कंपनी को अपनी स्थिति और भी अधिक सुधारने का अवसर मिल गया।

# अध्याय ३

किस प्रकार आर्थिक सहायता की प्रणाली अपनी अंतिम सीमा तक बढ़ती गयी और अंत में समाप्त हो गयी और किस प्रकार लार्ड वेलेज़ली ने 'दोआब' को सुविधाजनक सममूल्य के रूप में बलपूर्वक छीन लिया।

आसफुद्दौला की मृत्यु के उपरांत, कंपनी ने उसके वर्णसंकर पुत्र वज़ीर अली का उत्तराधिकार स्वीकार कर लिया, पर यह देख कर कि स्वर्गवासी नवाब के भाई के साथ, जिसका नाम सआदत अली है, इससे अच्छा सौदा हो सकता है, सर जान शोर बनारस गये और सआदत अली से वज़ीर अली को गद्दी से उतार देने का प्रस्ताव रखा और कहा कि यदि वह जनता के उपकारार्थ दी जाने वाली आर्थिक सहायता को मुद्रा के या उपज के रूप में बहुत अधिक बढ़ा दे तो कंपनी उसे गद्दी प्राप्त करने में सहायता कर सकती है। राज्य पदाभिलाषी वह साहसी तथा बेहया व्यक्ति इस शर्त के लिए खुशी से तैयार हो गया। लखनऊ में कुछ प्राथमिक कार्रवाई के बाद (जिसे 'पार्लियामेंटरी रिटर्न आफ ट्रीटीज' में पूरी जाँच पड़ताल के बाद कहा गया है) और वज़ीर अली की वर्णसंकरता के विषय में जाँच करने के बाद उसे पदच्युत कर दिया गया और उसके स्थान पर सआदत अली २१ फरवरी, १७९८ को लखनऊ में पदाधिकारी घोषित कर दिया गया। उसके बाद २१ फरवरी, १७९८ को सत्रह शर्तों के एक संधि-पत्र पर हस्ताक्षर हुए, जिसकी शर्तों में सआदत अली तथा सर जान शोर के बीच पहले से ही हुए समझौते के अनुसार रुपये की 'बू' अधिक थी। हम एक टिप्पणी[1] में क्रमशः विभिन्न शर्तों का सार बता चुके हैं

१. **यह संधि-पत्र** Parliamentary Return of Treaties S. c. **के पृष्ठ ७१–७४ पर देखा जा सकता है। पहली शर्त के अनुसार मित्रता तथा संगठन विषयक पहले की सभी सामान्य शर्तें अब तथा आगे भी समान रहेंगी। दूसरी शर्त के अनुसार अवध के नवाब द्वारा अब तक जो छप्पन लाख रुपये से कुछ अधिक आर्थिक सहायता दी जाती थी वह बढ़ा कर ७६ लाख कर दी गयी थी। तीसरी शर्त के अनुसार यह रकम नियमपूर्वक समय से मासिक किश्तों द्वारा दी जानी चाहिए और इसके साथ (छठी शर्त के अनुसार) बनारस में रहने वाले युवराजों तथा बेगमों की पेंशन**

और उनके बीच रुपये की लीक विपुलता तथा स्वतंत्रता से चली गयी है जिससे कि दस्तावेज के एक पक्ष की प्रवृत्तियों के विषय में कोई संदेह नहीं रह जाता है। नवाब को सभी पिछला हिसाब चुकाना था। नवाब से इलाहाबाद का किला छोड़ने को कहा गया और उस दान की हुई वस्तु की मरम्मत के लिए आठ लाख रुपये देने को कहा गया। तीन लाख रुपये 'फूटी गढ़' के किले की मरम्मत के लिए उसे देने थे। नवाब को फौजों के लिए खर्च देना था; यह लाखों की धनराशि अब भी अनिश्चित थी। उसके अधिकार दिलाने में कंपनी का जो धन खर्च हुआ था उसके लिए उसे कंपनी को १२ लाख रुपया देना था। नवाब को अपने पदच्युत प्रतिद्वंद्वी को डेढ़ लाख रुपये की पेंशन भी देनी थी। अंत में नवाब द्वारा दी जाने वाली वार्षिक आर्थिक सहायता, जो छप्पन लाख रुपये से कुछ अधिक थी, अब बढ़ाकर छिहत्तर लाख कर दी गयी, कहना चाहिए कि ५५,५०,००० पाउंड से

**भी देनी होगी जो सवा दो लाख रुपये से कुछ अधिक वार्षिक होगी। जो कुछ पिछला हिसाब बाकी पड़ा था (चौथी शर्त के अनुसार) उसे तुरंत अदा कर देना होगा। पदच्युत नवाब वजीर अली को पाँचवीं शर्त के अनुसार डेढ़ लाख की पेंशन मिलनी चाहिए। हम देखते हैं कि सातवीं शर्त में बढ़ी हुई आर्थिक सहायता का अनुमान किया गया था। अवध में ब्रिटिश फौजों में १०००० से कम व्यक्ति कभी नहीं होने चाहिए किसी भी समय, यदि जरूरत पड़े तो यह संख्या बढ़ा कर १३००० से अधिक की जा जा सकती है, इसके लिए नवाब को धन देना पड़ेगा: कभी यह संख्या ८००० से भी कम हो सकती है, अतः इस कमी अथवा अधिकता के बीच एक अनुपात होना चाहिए। आठवीं शर्त में कहा गया है कि, क्योंकि अवध के राज्यों के किसी किले पर इंगलिश कंपनी का अधिकार नहीं है, अतः नवाब सआदत अली खाँ इंगलिश कंपनी की मित्रता का विश्वास करके इलाहाबाद का किला, उसकी समस्त इमारतें तथा उससे संबंधित वस्तुओं पर उसका एकमात्र अधिकार स्वीकार करता है। इलाहाबाद के किले की मरम्मत के लिए आठ लाख रुपया पेशगी दिया जाय और फूटी गढ़ के किले की मरम्मत आदि के लिए तीन लाख रुपया और अधिक देना तय हुआ। नवीं शर्त के अनुसार सैनिक टुकड़ियाँ, जिनका भार नवाब पर छोड़ दिया गया था, उचित छावनियों में भेज दी जायेंगी और उनका खर्च नवाब को देना होगा। उसके बाद अवध की राज-गद्दी के खरे मूल्य की बारी आती है। ग्यारहवीं शर्त में सआदत अली ने वादा किया है कि कंपनी ने उसके अधिकार दिलाने में जो परिश्रम किया है उसके लिए वह कंपनी को १२ लाख रुपये देगा। अगली शर्त के अनुसार नवाब को संतोषजनक जमानत भविष्य में जमा करनी होगी।**

जबरदस्ती ७६०००० पाउंड कर दी गयी। केवल एक वर्ष के अंदर कंपनी ने दस लाख रुपया तथा इलाहाबाद का किला हड़प लिया। इस पूरी धनराशि का आधा भाग लार्ड कार्नवालिस के द्वारा किये गये शर्तनामें के उल्लंघन की क्षतिपूर्ति में लिया गया और आधी राशि उस मित्रता के परिणामस्वरूप थी जो कंपनी और उसके चंगुल में फँसे हुए बलि होने वाले व्यक्ति के बीच निरंतर प्रगाढ़ हो रही थी। कुछ महीनों के पश्चात् उसने नवाब सआदत अली को भी दोआब प्रदेश से पदच्युत करने का प्रयत्न किया और सर जान शोर ने ३ अक्टूबर, १७९८ को लखनऊ रेजिडेंट के पास इस आशय का पत्र लिखा। "यदि हम राजाओं और शासकों की तरह इसे नहीं ले सकते हैं तो इसे जैसे 'अल्मास-अलीखान' ने लिया है उसी प्रकार इसे पट्टे पर तो ले ही सकते हैं। और इसकी मृत्यु के पश्चात् हम पूरे पर अधिकार कर लेंगे।" साथ ही रेजिडेंट को आदेश दिया गया था कि

**इस प्रकार कुल धन जोड़ने का विवरण निम्नलिखित है :—**

**दूसरी शर्त से—बढ़ी हुई फौजी शक्ति, जो अंशतः उन्हीं के राज्यों की रक्षा के लिए थी, कम्पनी ने वार्षिक आर्थिक सहायता के अतिरिक्त**

| | |
|---|---|
| **पाया** | ५६,७७,६३८ रु० |
| **सिवाय इसके और संचय किया।** | १९,२२,३६२ रु० |
| **कुल** | ७६,००,००० रु० |

**चौथी शर्त से पिछला बाकी हिसाब चुकाया गया।**

**आठवीं शर्त—नवाब ने ईस्ट इंडिया कंपनी को इलाहाबाद का किला दिया और**

| | |
|---|---|
| **उसकी मरम्मत के लिए दिया** | ८,००,००० रु० |
| **फूटीगढ़ के किले के लिए** | ३,००,००० रु० |
| **नवीं शर्त—नवाब ने परिवर्तनशील फौजों के लिए दिया** | |
| **दसवीं शर्त—नवाब ने ईस्ट इंडिया कंपनी को पारिश्रमिक दिया** | १२,००,००० रु० |
| **ईस्ट इंडिया कंपनी को कुल रुपया दिया गया** | ९९,००,००० रु० |
| **इसके अतिरिक्त पाँचवीं शर्त के अनुसार अतिरिक्त रुपया दिया गया** | १५,००,००० |
| **कुल** | १,००,५०,००० रु० |

**या ईस्ट इंडिया कंपनी ने दस लाख रुपया पाया और इलाहाबाद का किला।**

वह नवाब को अपनी फौजें हटा कर उनके स्थान पर कंपनी की फौजें[1] रखने के लिए प्रेरित करे। कंपनी के कर्मचारियों को छोड़कर सभी यूरोपियन व्यक्तियों को बिना किसी भेद-भाव के हिज़ एक्सलेंसी के राज्य से निर्वासित किया जाना था। इस स्वेच्छाचारिता का एक स्पष्ट कारण यह भी हो सकता है कि स्थानीय सरकार तथा उसके अफसरों के बलात्कारों तथा अन्यायों की बात ब्रिटिश जनता में फैलने न पाये और वहाँ यही बात पहुँचे कि यह निर्दयता पार्लियामेंट की स्वीकृति से हेस्टिंग्ज़ ने की।

इन कठोर कार्रवाइयों के द्वारा हमें आगे १८०१ को संधि-पत्र के कठोर व्यवहार के लिए तैयार किया गया था जिसमें इसी समय से अनेक परिवर्तन हो गये थे और जो लार्ड डलहौज़ी के निष्ठुर घोषणा-पत्र का प्रकाशित आधार था। लेकिन हम उसकी शर्तों अथवा उसकी भूमिका का हवाला दें, इसके पूर्व हमें इस समय के अवध के अपने व्यवहार का व्योरा स्मरण करना चाहिए। उनका इतिहास पौराणिक हो सकता है, पर यह इतिहास भौतिक है और कहा जा सकता है कि इस दैव-निर्दिष्ट प्रदेश पर अधिकार कर लेने के हमारे नैतिक आधिकार के मूल में यही इतिहास है। ये संधियाँ तथा कृत्य जिन्हें हम स्मरण करते हैं, और निंदा करते हैं, उस प्रणाली की भूमिका थीं जिसके द्वारा कंपनी ने अवध के शासकों का धन, राज्य तथा पद छीना। उसका अभिप्राय खलबली मचाने का था। कंपनी तथा उसके कर्मचारियों ने इस समय तक इसके लिए अपनी ओर से हर संभव प्रयास किया। उसने अवध की राजधानी को रिक्त करके उसका जो भी रुपया वह ऐंठ सकी, ऐंठ लिया। यहाँ की मितव्ययी प्रजा तथा परिश्रमी काश्तकारों को उसने अत्यधिक दारुण तरीकों से बड़े लुटेरों की भाँति लूटा। उसने नवाब का राजस्व

१. कौंसिल में भारत के गवर्नर जनरल तथा कोर्ट आफ डाइरेक्टरी के बीच १७ अप्रैल, १७९८ से १५ मई, १७९९ तक जो लिखा-पढ़ी हुई उसके द्वारा बिल्कुल स्पष्ट है कि अवध सरकार को कोई बाहरी अथवा भीतरी भय न था। अतः उसे भारतीय सरकार से आक्रमणात्मक अथवा सुरक्षात्मक संधि की आवश्यकता न थी। परिस्थिति-तियाँ ऐसी होने के कारण उनके देश के अधिकारियों ने स्थानीय सरकार को अवध में नियुक्त की गयी नयी फौजों को तितर-बितर करने की आज्ञा दी क्योंकि उनका इस असवर पर कोई काम न था और उनके कारण उस प्रदेश की सरकार का बेकार खर्च बढ़ रहा था। कुछ भी हो, भारतीय अधिकारियों ने अपनी भारतीय फौजों की शक्ति नष्ट करना उचित नहीं समझा अपितु वे उन फौजों के खर्च से कंपनी को मुक्त करने के लिए अवश्य उत्सुक थे। उन्होंने यह खर्च भी नवाब पर लाद दिया।

लूटा ही, साथ ही साथ उन उच्च पदाधिकारी रईसों तथा प्रजा को रक्षा के बहाने लूटा, जो किसी भी विरोधी देशी शक्ति से अपनी रक्षा करने में स्वयं ही समर्थ थे। उन्होंने उनके सिपाही तथा फौजी साधन भी हड़प लिये और इस वियोगावस्था के लिए उनसे राज्यकर भी वसूल किये। उन्होंने राज्य भी ले लिये और राजस्व भी। आमदनी कम कर दी और खर्च बढ़ा दिये। २० मार्च, १७७२ के संधि-पत्र के अनुसार उन्होंने चुनार का किला ले लिया। १७ मई, १७७५ की संधि से बनारस, गाजीपुर, कानपुर आदि के जिले ले लिये। १७८७ में फूटीगढ़ का किला हड़प लिया। १७९८ में इलाहाबाद का किला ले लिया और अब वह यदि पट्टे पर भी ले सके तो, 'दोआब' को लेने की तैयारी कर रही थी, संक्षेप में वह वहाँ प्रवेश का अधिकार मात्र पाने के लिए प्रयत्नशील थी। इसी समय एक रेजिडेंट की सहायता से हर संभव प्रयास द्वारा अवध के नवाब को कठपुतली की तरह नचा रही थी, जब से उसे उसकी रियासत को कृषि क्षेत्र में परिवर्तित करने में सफलता मिली थी। इस अवस्था में कंपनी के कर्मचारियों ने प्रतिवाद करना और सुधार के लिए सिफारिश करना प्रारंभ किया और दयालु हितैषी दर्शक की भाँति नीतिपूर्ण बातें कहनी प्रारंभ की, मानों वे और केवल वे ही इस अनिष्ट के लिए पूर्णरूप से उत्तरदायी नहीं थे और उसके बाद वे इस दुष्टता पर डटे रहे।

अब हमारे सम्मुख उनके व्यवहार का वह रूप आता है जिसे हम देखेंगे कि आगे अनेक बार कहा गया है, विशेष रूप से, अवध की 'ब्लू बुक' में, जो इस प्रकार की आडंबरपूर्ण निंदाओं से भरी पड़ी हैं। लार्ड मार्निंग टाम (जो मार्क्विस वैलिस्ले के नाम से प्रसिद्ध हैं), मई १७९८ को कलकत्ता पहुँचा। उसी वर्ष के अक्तूबर में उसने अवध से नियमित रूप से आर्थिक सहायता के रूप में दिये जाने वाले धन के भुगतान तथा नवाब की फौजों[1] के सुधार के विषय पर विचार किया। हेल ने अवध के प्रश्न पर कहा—"इस सुधार का वास्तविक अर्थ यह था कि केवल वह सेना, जो राज्य के काम में, और राजस्व की वसूली के लिए आवश्यक थी और जिसे नवाब के खर्चे पर कंपनी की बढ़ायी हुई पैदल और अश्वारोही सेना में मिला दिया गया था, को छोड़ कर नवाब की अतिरिक्त फौज को तितर-बितर कर दिया जाय। इस प्रस्ताव से सजग होकर नवाब वज़ीर स्वेच्छा से पद-त्याग करने को कहने लगा। इस पर लार्ड ने अपना अंतिम अभिप्राय, जिसके विषय में उसका विचार था कि कंपनी सोच-विचार चुकी है, प्रकट किया। वह अभिप्राय इस आशय का था कि अवध के राज्य पर कंपनी का अधिकार हो जाय। अंततोगत्वा इस विचार का एक

1. Papers relating to the East Indies, printed by order of the House of Commons in 1806. V. 3.

संधि-पत्र तैयार किया गया जिसकी पहली शर्त के अंतर्गत नवाब के पद-त्याग का आभास था। पर जब वह संधि-पत्र नवाब के सम्मुख हस्ताक्षर के लिए लाया गया, नवाब ने ऐसे राजीनामे पर हस्ताक्षर करने से दृढ़तापूर्वक इनकार कर दिया। कई महीने तक जारी रहने वाली इस संधि-वार्ता में गवर्नर जनरल भी सम्मिलित हुए। इसके बीच उन्होंने स्वीकार किया कि उनका मौलिक उद्देश्य केवल पूरक धनराशि उपलब्ध करना ही नहीं, वरन् नवाब की फौजी शक्तियों का नाश करना भी था।

इन संधि-वार्ताओं के कुछ विस्तृत विवरणों से हमारी कहानी की गति में बाधा पड़ सकती है, लेकिन ये विवरण कंपनी के नवाब के प्रति बर्ताव को इतनी भली-भाँति प्रदर्शित कर सकने में समर्थ हैं कि यहाँ उनकी उपेक्षा करना न तो ठीक ही है और न उचित ही। नवाब को उपर्युक्त प्रतिवाद का उचित समय दिये बिना अवध में अतिरिक्त सेना के प्रवेश का आज्ञापत्र जारी किया गया क्योंकि लार्ड Teignmouth की संधि के अनुसार कंपनी नवाब के अधिकृत प्रदेशों की रक्षा के लिए वचनबद्ध थी। उस संधि-पत्र का सांकेतिक अर्थ यह समझा जाना चाहिए कि अवध में स्वेच्छानुसार छावनी डालने वाली ब्रिटिश फौजों को नवाब की अनुमति के बावजूद भी साम्राज्य के रक्षा-सम्बन्धी कार्य में अपनी संख्या बढ़ाने का विशेष अधिकार होगा। आगे भी यह दृढ़ता से कहा गया था कि नवाब को उन सभी फौजी टुकड़ियों का पोषण करना पड़ेगा जो कंपनी द्वारा उसके राज्य में पड़ाव डालने के लिए भेजी जायेंगी क्योंकि संधि-पत्र की एक शर्त में यह तय हो चुका था कि जब भी आवश्यक समझा जायेगा ब्रिटिश सहायक फौज में वृद्धि की जायेगी। जैसे ही ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा उपर्युक्त ढंग पर एक सैनिक टुकड़ी अवध के किसी भाग पर नियंत्रण करने के लिए भेजी गयी और नवाब को उसकी तनख्वाहें देने के लिए बाध्य किया गया और इसके पूर्व कि इस प्रकार की दूसरी टुकड़ी को उसके बाद आने का आदेश दिया जाय, नवाब सआदत अली ने लखनऊ के रेजिडेंट की मार्फत गवर्नर जनरल को निम्नलिखित स्मरण-पत्र भेजा :—

लखनऊ के रेजिडेंट लेफ्टिनेंट वालोनेल विलियम स्कॉट को गवर्नर जनरल के लिए हिज़ एक्सलेंसी नवाब के द्वारा ११ जनवरी, १८०० को भेजे गये स्मृति-पत्र का अनुवाद।

वास्तविक वस्तुस्थिति इस प्रकार है :—

प्राय: ८० वर्ष से ये प्रदेश हमारे पूर्वजों के पूर्ण तथा स्वतंत्र आधिपत्य में रहे और हमारे स्वर्गवासी पिता के समय आदरणीय कंपनी तथा इस सरकार के बीच सौहार्द्रपूर्ण संधि का अस्तित्व हुआ, जिससे यह सरकार अधिक शक्तिशाली हो गयी।

मेरे स्वर्गवासी भाई के जीवनकाल में दोनों रियासतों के बीच सामान्य व्यवहार रहा; उसे अनेक शत्रुओं का विरोध करना था और बार-बार सैन्य समूहों में विद्रोह अथवा

गदर हो जाते थे, फिर भी, वे इस हद तक कभी न बढ़े थे कि गत रोहिलों की लड़ाई में, जैसा कि आपने सुना होगा, शत्रु के दमन के लिए पूरी दो फौजों को एकमत होना पड़ा था, पर ऐसा कभी उन शासकों की कल्पना में भी नहीं था कि वह पुराने सम्बन्धों की उपेक्षा करके इस प्रकार दुर्व्यवहार करें और नवीन प्रबन्धों को, जो अब आपके द्वारा थोपे गये हैं, मानने के लिए बाध्य करें।

कंपनी की सम्मति से, कंपनी की शक्ति की सहायता से मैंने अपनी वंशानुक्रमागत गद्दी प्राप्त की। यह तो सभी युगों तथा सभी देशों में होता है कि सर्वोच्च शक्तिशाली ने जिसे भी एक बार अपनी शरण में ले लिया, उसका न तो खर्च ही होने पाया और न उसके लिए कोई संकट ही रह गये। मैंने पूर्ण रूप से सम्माननीय कंपनी पर निर्भर होने के कारण तथा उसकी विशालहृदयता तथा दयालुता पर पूरी तरह भरोसा रखते हुए, पूरी आशा की थी कि मेरे शासनकाल में मेरे पूर्वजों की अपेक्षा मेरा राज्य आपकी आभा से चमक उठेगा।

सृष्टि के अंतिम दिन तक कंपनी की ख्याति बनी रहेगी। (इससे हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि सआदत अली एक चारण था।)

ईश्वर न करे कि मेरे समय में बिना किसी कारण कोई नयी अपमानजनक पद्धति चालू हो, या परिवार के प्राचीन सेवक कुछ निकम्मों दुरात्माओं के दुष्कर्मों के लिए अपने जीवन-निर्वाह के खर्च से वंचित रह जायँ और स्थान-भ्रष्ट होकर विदेशों में जाकर मेरी अपकीर्ति फैलाएँ और वे लोग जो मेरे देश में रह जायेंगे वे मेरे उन सेवकों में (जो रह जायेंगे) शत्रुता तथा अविश्वास पैदा करेंगे। वे आपस में बातचीत करेंगे कि ये लोग कल सेवा-मुक्त किये गये थे और कल तुम्हारी बारी आयेगी। यहाँ तक कि मेरे सभी सेवक मेरे कट्टर दुश्मन हो जायेंगे। इस प्रकार की दुःखद परिस्थिति से ईश्वर मुझे बचाए।

इन सब बातों से अधिक मुझे चिंता यह है कि ऐसा करने से कंपनी की प्रतिष्ठा तथा सम्मान को क्षति पहुँचेगी और मेरे देश में तथा कहीं बाहर मेरा कोई सम्मान नहीं रह जायेगा। हर व्यक्ति पर यह प्रकट हो जायेगा कि कंपनी को मेरी मित्रता की सच्चाई में विश्वास नहीं रह गया है और मेरे राज्यों पर मेरी सेनाओं के स्थान पर अपनी सेनाएँ नियुक्त करके मुझे अपनी सैन्य शक्ति से वंचित कर दिया है।

परिणाम यह होगा कि इन प्रदेशों में मेरा प्रभुत्व नष्ट हो जायेगा और मेरी छोटी से छोटी आज्ञाओं का भी पालन न होगा तथा कंपनी को नियमित रूप से दी जाने वाली किसी भी धनराशि के देने के लिए की गयी विशेष चेष्टाएँ व्यर्थ का परिश्रम सिद्ध होंगी।

मैं पूरा विश्वास करता हूँ कि आपका यह उद्देश्य नहीं हो सकता या यह आपकी इच्छा के अनुरूप भी न होगा कि आप मुझ पर अविश्वास करें, मेरा पद घटाएँ या इन

राज्यों में मेरा प्रभुत्व कम करें। म बिना किसी दिखावे के अपनी हार्दिक भावनाएँ तथा इच्छाएँ आपके सम्मुख खोल कर रखूंगा। कंपनी के सहकारित्व से म प्रत्येक संस्कार की किसी भी कार्यवाही के लिए अपने को समर्थ समझता हूँ और उनकी दया मुझ पर बनी रहे तो मुझे न तो कोई डर है न कोई आशंका। उन्हें संतुष्ट करना तथा उनकी आज्ञा का पालन करना अपना अति आवश्यक कर्त्तव्य समझ कर मेरे गद्दी पर बैठने के समय जो संधि-पत्र लिखा गया था, उससे मैं बालभर भी न हटूँगा, जब कि संधि-पत्रों के प्रति उनके विदित श्रद्धा तथा लगाव के कारण मुझे भी ऐसा विश्वास है कि इस संधि-पत्र की शर्तों में उनकी ओर से कोई व्यवधान अभिप्रेत न होगा।

"यह भूमिका बाँध कर मैं आपसे उपर्युक्त संधि-पत्र के संवंध में कुछ विचार प्रकट करके आपको कुछ कष्ट दे रहा हूँ।

"पूर्वोक्त संधि-पत्र की दूसरी शर्त के अनुसार वर्तमान संधियों के द्वारा सम्माननीय कंपनी नवाब के राज्यों की सभी शत्रुओं से रक्षा करने के लिए बद्ध है। इस वादे को पूरा करने के लिए कंपनी ने नये आरोपित सैन्य दलों द्वारा अपनी अश्वारोही तथा पैदल सेनाएँ काफी बढ़ा लीं हैं, जिसके लिए नवाब वार्षिक आर्थिक साहाय्य (५,६७७,६३८ सिक्का रुपया) के अतिरिक्त १,९२२,३६२ रुपया, जो कुल छिहत्तर लाख रुपया होता है, देने के लिए राजी है।

इस शर्त के संदर्भ म आप को यह स्पष्ट ही होगा कि मेरे राजतिलक के अवसर पर इन राज्यों की सुरक्षा के लिए जितनी फौज बढ़ायी गयीं उतनी पहले किसी समय नहीं बढ़ायी गयी। जहाँ तक मेरा प्रश्न है मैं यह बढ़ायी हुई रकम चुकाने के लिए तैयार हूँ। लेकिन उस शर्त में कहीं भी यह नहीं लिखा या कहीं भी इसका संकेत नहीं किया गया है कि कालांतर में एक और भी स्थायी वृद्धि की जायेगी और उस संधि-पत्र का किसी भी रूप में उल्लंघन मुझे अनावश्यक जान पड़ता है।

उसी संधि-पत्र की सातवीं शर्त में कहा गया है कि गवर्नर जनरल सर जान शोर बर्ट कंपनी की ओर से राजी हैं कि अवध की सुरक्षा के लिए जो अंगरेजी फौज रखी जायेगी उसमें १०,००० से कम आदमी नहीं होने चाहिए। इनमें यूरोपीय तथा देशी अश्वारोही, पैदल तथा तोप चलाने वाले सैन्यदल सम्मिलित होंगे और यदि सेना में यूरोपीय, देशी अश्वारोही आदि की संख्या १३,००० से ऊपर करने की आवश्यकता हुई तो जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, जो अतिरिक्त खर्च होगा वह नवाब देने के लिए राजी है। इसी प्रकार यदि अवध में कंपनी की फौजें किसी कारण ८,००० से भी कम हो जायेंगी (तोप चलाने वाले सैन्यदल के सहित) तो छिहत्तर लाख की वार्षिक निर्धारित वृत्ति में से आदमियों की वास्तविक कमी के अनुसार कटौती कर दी जायेगी। इस संधि-पत्र की शर्तों

की जाँच के पश्चात् मने देखा कि इस संधि के बाद आवश्यकता के समय के अतिरिक्त किसी भी प्रकार की वृद्धि नहीं की जायेगी और उस वृद्धि का संकट-काल से अनुपात रहेगा। वह वृद्धि तभी तक रहेगी जब तक संकट-काल के लिए आवश्यकता रहेगी। बिना किसी आवश्यकता के सैन्य दलों में वृद्धि करना, और उस खर्च के लिए मुझे उत्तरदायी ठहराना, संधि-पत्र से असंगत है और अनुचित जान पड़ता है।

उसी शर्त के अनुसार स्पष्ट है कि जब संकट-काल होगा तब फौजी शक्ति में वृद्धि की जायेगी और जब फौज घटायी जायेगी तब वार्षिक निर्धारित वृत्ति में भी कटौती की जायेगी।

सत्रहवीं शर्त के अंत में यह तय हुआ था कि दोनों रियासतों के बीच निष्कपटता, एकता तथा सौहार्द्रपूर्ण लेन-देन रहेगा और नवाब का अपने घरेलू मामलों, अपने पूर्वजों से प्राप्त राज्यों, फौजों तथा प्रजा पर पूर्ण अधिकार रहेगा। मैं पूछता हूँ कि यदि फौजी प्रबंध मेरे अधिकार में न रह जायेगा, तो घरेलू मामलों, राज्यों, फौजों तथा प्रजा पर मेरा क्या अधिकार होगा ?

उपर्युक्त विवेचन से तथा अँग्रेज कंपनी की सरकार की महानुभावता से तथा आपकी दयालुता से मुझे पूर्ण विश्वास है कि प्रत्येक अवसर पर मेरी मित्रता तथा लगाव पर पूरा भरोसा रखते हुए आप संधि-पत्र के अनुसार मेरे राज्य, फौज तथा प्रजा पर मेरा पूर्ण अधिकार बना रहने देंगे और आगे आप से मेरी प्रार्थना है कि आप लेफ्टिनेंट कर्नल स्कॉट को मुझे सलाह देने तथा मुझ से विचार-विमर्श करने के लिए आदेश दें, जब (उस भद्र पुरुष की सहायता से) ईश्वर ने चाहा तो अवश्य फौजी प्रबंध शीघ्रता से होंगे। इसके बाद से मेरी समस्त फौजें आज्ञाकारी तथा कर्मशील हो जायेंगी, जबकि आपकी दयालुता का ऋणी होकर मैं स्वयं आपका आज्ञाकारी होकर आपकी इच्छा का ध्यान प्रत्येक विषय में रखूँगा।

इस कार्य के संपादन से समस्त संसार में कंपनी की कीर्ति प्रसारित हो जायेगी और मेरी ख्याति बढ़ जाने से मैं भी कंपनी के अभ्युदय के लिए शुभकामनाएँ करने लगूँगा।

मैंने एक मित्र के नाते अपने हार्दिक भाव तथा इच्छाएँ आपके सम्मुख खोल कर रख दीं। मैं अपनी समस्त आकांक्षाएँ आपके सामने विस्तार से रखना चाहता था। इसी कारण आपके पत्र का उत्तर देने में देरी हुई। इसमें शंका नहीं कि आपका मैत्रीपूर्ण व्यवहार आपके आदेशों का पालन करा सकेगा।

(हस्ताक्षर, डब्ल्यू० एम० यूले)
सहायक
लखनऊ, १२ जनवरी १८००
(प्रामाणिक अनुवाद)

इस निवेदन के उत्तर में गवर्नर जनरल ने तुरंत लखनऊ स्थित रेजिडेंट लेफ्टिनेंट कर्नल स्कॉट को यह अहंकारपूर्ण पत्र भेजा :—

महोदय,

परिच्छेद १, इसी महीने की १२ तारीख का भेजा हुआ पत्र, कुछ संलग्न पत्रों के साथ सम्मान्य गवर्नर जनरल महोदय को प्राप्त हुआ।

परिच्छेद २, ५ नवम्बर को नवाब को लिखे गये अपने पत्र के उत्तर में नवाब का उत्तर श्रीमन्त ठीक नहीं समझते। चालू महीने की ११ तारीख को जो लिखित संपर्क, आपके साथ श्रीमन्त के उत्तर के रूप में स्थापित किया, उसे ही आपने गवर्नर जनरल से संबंधित देखकर तुरंत भेज दिया है।

परिच्छेद ३. वर्तमान अवस्था में गवर्नर जनरल द्वारा भेजे हुए और आपकी मुहर तथा हस्ताक्षर द्वारा प्रमाणित किये हुए, नवाब तथा कंपनी दोनों के परस्पर हितकारी महत्त्वपूर्ण पत्र का उत्तर देने का जो ढंग नवाब ने अपनाया, यद्यपि उसमें अनुपयुक्त दीनता का प्रदर्शन हुआ है तथापि भारत में प्रथम ब्रिटिश अधिकारी को नवाब से जिस सम्मान की अपेक्षा थी उसके विचार से वह बहुत ही अपर्याप्त है।

परिच्छेद ४, अतः आपके द्वारा जो कागजात संप्रेषित हुए, गवर्नर जनरल साहब उन पर कोई भी मत प्रकट करने से इनकार करते हैं। और चाहते हैं कि नवाब को उनके ५ नवम्बर के पत्र का निर्दिष्ट ढंग पर उत्तर देने को कहा जाय। यदि गवर्नर साहब के पत्र के औपचारिक उत्तर में नवाब, ब्रिटिश सरकार के सम्मान तथा न्याय पर, उन्हीं शब्दों में जो उन्होंने ११ तारीख के आपके पत्र में प्रयोग किये हैं, आक्षेप करना उचित समझेंगे तो गवर्नर जनरल सोचेंगे कि इस प्रकार के निराधार आक्षेपों तथा प्रचुर मिथ्या-वादों के तथ्यों तथा प्रमाणों पर ध्यान देने की कितनी आवश्यकता है।

इस पत्र-व्यवहार के विषय में जो आलोचना श्री मिल ने अपनी "ब्रिटिश भारत का इतिहास" नामक पुस्तक के छठें भाग में पृष्ठ १९१ पर की है उसका यहाँ उल्लेख कर देना उचित होगा :—"संधि-पत्र से संबंधित एक पक्ष उसकी समस्त शर्तों का पालन करता है; यह उस पक्ष की महानता को प्रदर्शित करता है और विपक्ष की ओर से उस संधि का प्रचुर मात्रा में उल्लंघन होता है या कम से कम उसे जान पड़ता है कि विपक्ष की ओर से उस संधि-पत्र की शर्तों का उल्लंघन हो रहा है, अतः वह बहुत ही नम्र भाषा में, अनादर की अपेक्षा उनकी नीचता की तारीफ करते हुए स्पष्ट संकेत करता है कि संधि की शर्तों तथा उनके व्यवहार में असामंजस्य है (विरोध है)। इसे विपक्ष ने ऐसे दिखाया मानों उनके सम्मान तथा न्याय पर झूठे आक्षेप लगाये गये। और यदि अभी तक उनके

पास आज्ञा न मानने वाले पक्ष को दंड देने के लिए कोई आधार न था, अब उनका यह दोष इतना बड़ा हो गया कि किसी भी दंड द्वारा परिमार्जन कठिन ही था। स्पष्ट है कि यह वह प्रणाली है जिसके द्वारा किसी संधि-पत्र का उल्लंघन करना भी न्यायसंगत हो सकता है। यदि क्षतिग्रस्त पक्ष बिना कुछ बोले आत्मसमर्पण कर देता है तो उसका मौन ही उसकी सम्मति मान ली जाती है। यदि वह फरियाद करता है तो उस पर अपने से श्रेष्ठ के सम्मान तथा न्याय पर आक्षेप करने का दोष मढ़ा जाता है। यह आक्षेप और अन्याय इतने बड़े पैमाने पर हो जाता है कि शक्तिशाली पक्ष दूसरे पक्ष के सभी एहसानों को एक ओर रख कर उसे बेकार समझने लगता है।

इसके पश्चात् २२ जनवरी, १८०१ को लार्ड वैलेस्ली ने नवाब को एक पत्र लिखा, जिसमें उसने इच्छा प्रकट की थी कि या तो नवाब सआदत अली अपने समस्त अधिकार त्याग दें और एक वार्षिक वृत्ति लेना स्वीकार कर लें, या दो सैन्यदलों के खर्च (जिसके विषय में पहले ही कहा जा चुका है) जिसे नवाब ने अपने ऊपर ले रखा है, के बदले अपने अधिकार के प्रदेशों का आधा भाग कंपनी को समर्पित कर दें। इस प्रकार के संधि-पत्र की रूपरेखा आवश्यक आदेशों के साथ रेजिडेंट को भी भेज दी जायेगी।

अब घटना का स्वरूप यह था। १७९८ की संधि के अनुसार अन्य मदों के उल्लेख के साथ ७६ लाख रुपये की जो रकम नवाब द्वारा देनी तय हुई थी, उतने से अब कंपनी संतुष्ट न थी। उसकी माँग थी, और जैसा कि जल्दी ही प्रकट भी हो गया, १८०१ की संधि की पहली शर्त से उन्होंने १,३५,००,००० रुपया राजस्व वाला अथवा ५९ लाख वार्षिक आमदनी वाला एक जिला हस्तगत कर लिया। यह जिला नियत की हुई 'आर्थिक सहायता' के बदले में लिया गया था जब कि इसकी आमदनी उसकी अपेक्षाकृत अधिक थी। पहले तो नवाब ने इस माँग का विरोध किया और चालू संधि-पत्र का उल्लंघन न करने के लिए बहुत अधिक आग्रह किया, पर गवर्नर जनरल ने उसे उत्तर देने की भी कृपा न की और २८ अप्रैल, १८०१ को रेजिडेंट को एक पत्र डाला जिसमें उसे अधिकार दिया गया कि यदि नवाब वह जिला देने को राजी न हो तो उससे वह बलपूर्वक छीन सकता है। साथ ही उसे आदेश दिया कि वह इस विषय में आगे के आदेशों की प्रतीक्षा न करके, गवर्नर जनरल की वर्तमान आज्ञाओं का तुरंत पालन करे। संक्षेप में कहना चाहिए कि उसे डाका डालने के लिए उकसाया गया।

लार्ड वैलेस्ली के पत्र की कुछ शब्दावली उल्लिखित हो ही चुकी है और यहाँ वह उस अभियोग के प्रसंग में प्रस्तुत की गयी हैं जिसके अनुसार इसके बाद से अवध का अपहरण होना था और जिसके बारे में उक्त बात समाप्त होने के पूर्व अभी बहुत कुछ कहा जायेगा। लार्ड वैलेस्ली ने कहा—"मैं बहुत संतुष्ट हूँ कि अवध की बरबादी के विरुद्ध

कोई प्रबल प्रमाण तब तक नहीं प्रस्तुत किया जा सकता जब तक कि उस नगर की असैनिक तथा सैनिक सरकार, नवाब तथा उसके परिवार के पोषण के लिए सुविधाजनक शर्तों के साथ समग्र रूप से कंपनी की हो जायेगी। किसी भी अन्य उपाय द्वारा राज्य की दशा में उचित सुधार या उसकी आंतरिक तथा बाह्य सुरक्षा नहीं की जा सकती।" यह पूछा जा सकता है कि यदि अवध की बरबादी टालने के लिए अन्य कोई उपाय न था तो नगर के भाग्य-विधाता लार्ड वैलेस्ली ने इसी उपाय पर बल क्यों नहीं दिया। क्या वह अंग्रेजों की राय की निंदा से डरता था? क्या वह हेस्टिंग्ज के दुर्भाग्य की जानकारी के कारण हिचकता था? या क्या वह उस कार्य को करने में इस लिए झिझकता था कि वह स्वयं ऐसा करना अनुचित समझता था और इसलिए उसने घायल शिकार को, भविष्य के अत्याचारियों के लिए छोड़ दिया हो? इन प्रश्नों का संतोषजनक उत्तर पा सकना और कारण निश्चित कर लेना असंभव है, जब कि प्रत्यक्ष यह है पाखंड तथा घटनाग्रस्त व्यक्ति को आधी शताब्दी[1] तक और ढील देने की अनुमति प्रदान की गयी।

सभी अवसरों पर लार्ड वैलेस्ली ने पूरा प्रदेश हस्तगत नहीं किया, पर जब नवाब के राज्य का आधा भाग लेने का उसका इरादा घोषित किया गया तो नवाब को आशंका हो गयी कि अंत आ पहुँचा है और उसने फरियाद की "यदि घटना वास्तव में इस प्रकार है तो जल्दी ही देश के अन्य भाग भी हमसे बलपूर्वक छीन लिये जायेंगे।" जितनी उसने आशा की थी उससे अधिक समय इस कार्य में लगा क्योंकि जैसा कि अंत में ज्ञात होगा वे भाग भी कंपनी के खज़ाने की पेटी में गये यद्यपि आगे-आगे उन्हें अर्थसाहाय्य से मुक्ति मिल जानी थी। उसी समय रेजिडेंट तथा गवर्नर के निजी सचिव आदरणीय वैलेस्ली द्वारा उसे पूर्ण आश्वासन मिले कि वह शान्त तथा व्यवस्थित क्षेत्रों पर पूर्णतया शासन कर सकेगा। इस आश्वासन को कोई भी महत्ता नहीं दी गयी।

वास्तव में उसने पहली बार देश छोड़कर तीर्थ-यात्राओं पर जाने के विषय में (स्वेच्छा-कृत निर्वासन) गंभीरतापूर्वक विचार किया और सोच लिया कि ये नृशंस अत्याचारी

**१. नवाब से जो इतनी बड़ी कुर्बानी की आकांक्षा की गयी, आश्चर्य की बात है कि वह कुर्बानी इतनी अधिक नहीं थी, यदि वह निम्नलिखित उद्देश्य को सामने रख कर विचार किया जाय। लार्ड वैलिस्ली के कर्नल ली मैन को लिखे गये पत्र के अनुसार "उद्देश्य तो केवल यही था कि कंपनी का अवध साम्राज्य पर नागरिक, सैनिक तथा अन्य विषयों में पूर्णरूपेण स्वतंत्र शासन हो" इस महान् उद्देश्य की पूर्ति की सभी बाधाओं को नष्ट करना ही उचित होगा ताकि अवध साम्राज्य के सभी प्रदेशों में समस्त राजस्व, सैनिक, सामरिक तथा नागरिक प्रभुत्व स्थापित रहे।"**

मेरी अनुपस्थिति में जो कुछ ठीक समझें करें। उन्होंने कहा कि "मुझे शीघ्र ही यात्राओं तथा तीर्थयात्राओं पर जाने की अनुमति प्रदान की जाय, क्योंकि मुझे अब यहाँ लोगों को अपना मुख दिखाते हुए अपमान महसूस होता है।" लेकिन स्वीकृति के लिए यह रुख दिखाना बिल्कुल बेकार और निराशामय था। बहुत विवाद-प्रतिवाद के बाद अंत में नवाब अपने सामने रखे गये संधि-पत्र पर हस्ताक्षर करने को राज़ी हो गया। इस प्रकार नृशंसतापूर्वक एक कार्य पूरा हुआ और जिस पर अवैध रूप से इतना जोर डाला गया वह संधि-पत्र प्राप्त कर लिया गया। इस प्रकार इन प्रारंभिक व्यवस्थाओं द्वारा यह ( संधि-पत्र) हमारे अनिच्छुक मित्र पर लाद दिया गया। कंपनी ने नवाब के ऊपर पहले तो अनेक फौजें लाद दीं कि उनकी माँग पर माँग निरंतर बढ़ती रही यहाँ तक कि वह उसके खर्चे चुकाने में असमर्थ हो गया और जब वह अपनी असमर्थता घोषित करने को बाध्य हो गया तो उस घोषणा को उन्होंने राज्य के शेष भाग के निरंतर स्वत्वत्याग का आधार बना लिया। संक्षेप में वास्तविकता यह है कि उन्होंने उसके आधे प्रदेशों को इसलिए ले लिया कि वे उसे धन से रिक्त कर चुके थे और अपनी 'मित्रता तथा संगठन' के प्रतीक 'कंठपाश' से उसे बाँध लिया था।

संधि-पत्र पर, जिसके इतने घृणित-परिणाम निष्पादित हुए, १४ नवम्बर, १८०१ को हस्ताक्षर हुए। अब उसकी कुछ प्रमुख शर्तों का विवरण दिया जायेगा। इसकी पहली शर्त के अनुसार गिरवी भूमि के मूल्य रूप में उससे बहुत अधिक मूल्य का प्रदेश ले लिया गया। जिन जिलों को उनके राजस्व (जो कि प्रायः एक करोड़ पैंतीस लाख रुपया था) सहित, निश्चित राज्यसाहाय्य धन के बदले में समर्पण कर देना था, वे पूरी तरह से सुनियोजित हैं और यदि पाठक मिस्टर वाइल्ड द्वारा प्रकाशित भारत के नक्शे को देखें तो उन्हें ज्ञात होगा कि ये 'दोआब' के वही जिले हैं जिनके लिए १७९८ में सर जान शोर को अत्यधिक उत्सुकता थी। जिन प्रदेशों को उस समय स्थायी अधिकारी के रूप में न पाकर पट्टे पर लेने की योजना की गयी थी अब उन्हें बिना किसी औपचारिक भूमिका के लिया जा रहा था। इस प्रदेश के साथ ही इलाहाबाद, कोड़ा तथा कड़ा के अभिन्न जिले भी प्राप्त हो जायेंगे, जिन्हें कंपनी ने १७७३ में पाँच लाख स्टर्लिंग पर शुजाउद्दौला के हाथ सदैव के लिए बेंच दिया था। इस प्रकार नवाब से उसके अधिकृत अधिकतर बहुमूल्य प्रदेश बलपूर्वक ले लिये गये, जब कि शेष को हड़पने के लिए उसकी सरकार तथा जायदाद के मामलों में जो हस्तक्षेप किये गये उनकी जानकारी आगे करायी जायगी। शेष शर्तों का सार एक टिप्पणी में दिया गया है[१]। इससे ज्ञात होगा कि चौथी शर्त के

१. दूसरी शर्त के अनुसार : (१७९८ में प्रतिभूत) राजानुदान समाप्त होना चाहिए

अनुसार एक ब्रिटिश सैन्यदल उसके साथ व्यक्तिगत रूप से जोड़ दिया गया, और छठीं, शर्त के अनुसार उससे आशा की गयी थी कि "वह कम्पनी के अफसरों की समिति की इच्छा एवं सलाह के अनुसार ही कार्य करेगा।" इस शर्त के वादे विशेष रूप से महत्त्व-पूर्ण हैं, क्योंकि ये उन दलीलों पर भी प्रकाश डालते हैं जिनके द्वारा कानून के नाम पर लार्ड डलहौजी को पिछली सभी संधियों की उपेक्षा करने और लूट-खसोट मचा देने की खुली छूट मिल गयी।

और नवाब की राजधानी की रक्षा के लिए कोई अतिरिक्त फौज नहीं बुलायी जायेगी।

तीसरी शर्त के अनुसार : वहाँ रुकने वाली इच्छित फौजों के अधिकार से कंपनी नवाब के राज्यों की रक्षा करती थी। नवाब को अपनी तनख्वाह में चार पैदल फौजों, एक फौज nujeebs तथा mulvatees, २००० घुड़सवार तथा ३०० गोलन्दाज रखने थे। कुछ हथियारबंद हरकारों तथा कुछ घुड़सवारों, जिनको रखना जरूरी हो उनके अतिरिक्त नवाब को अपनी समस्त फौजें समाप्त कर देनी थी।

चौथी शर्त : नवाब के साथ व्यक्तिगत रूप से एक ब्रिटिश सैन्य दल सदैव संबद्ध रहना चाहिये।

पाँचवीं शर्त : नवाब के खजाने से किसी भी कारण से आगे कोई माँग न की जायेगी।

छठीं शर्त : आधीनता स्वीकार किये हुए राज्यों पर कंपनी तथा उसके अफसरों का एकमात्र अधिकार होगा, कंपनी नवाब तथा उसके उत्तराधिकारियों को विश्वास दिलाती है कि शेष भागों पर उन्हींका अधिकार रहेगा।

सातवीं शर्त : राजा के द्वारा दी जानेवाली आर्थिक सहायता केवल इस उद्देश्य से दी जा रही है कि कंपनी अपने आधीन जिलों पर पूर्ण आधिपत्य स्थापित किये रह सके।

आठवीं शर्त : यह इन सबसे भिन्न व्यापारिक संधि-पत्र के निर्माण से और गंगा में नौका परिवहन की सुविधा से संबंधित है।

नौवीं शर्त : पिछली सभी संधियों की वे शर्तें जो एकता एवं मित्रता की भावना से रखी गयी थीं, इस संधिपत्र से प्रभावित नहीं हुई थीं और पहले की तरह ही पूर्ण रूप से लागू रहनी थीं।

दसवीं शर्त : यह संधि-पत्र १० नवम्बर, १८०८ से लागू हुआ था।

फिर भी, इस संधि-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये गये। यह संधि-पत्र किस प्रकार का था, इसका विवरण नवाब वज़ीर के एक दस्तावेज़ (पार्लियामेण्ट्री रिटर्न आफ ट्रीटीज़) में मिलता है। इसमें उसके तथा गवर्नर जनरल के बीच हुई वार्ताओं का उल्लेख किया गया है। सन् १८०१ की इस संधि के संबंध में नवाब वज़ीर का कथन है—"मुझे अपने शासक स्वामी को प्रसन्न करने के लिए जिलों को सैनिक स्वामियों के हाथों सौंप देने को प्रेरित किया जा रहा था और इसे आवश्यक समझ कर अपने स्वामी की आज्ञा का पालन करवाने के लिए वेलेज़ली स्वयं भी आये।"

इस दस्तावेज़ में नवाब वज़ीर के एक पत्र का भी उल्लेख है, जिसमें उसने कुछ प्रस्तावित योजनाओं की स्वीकृति प्राप्त करने के लिए गवर्नर जनरल के पास भेजा था। गवर्नर जनरल ने उन योजनाओं को स्वीकार भी कर लिया था। इनका मुख्य उद्देश्य वज़ीर के अधिकारों को और अधिक शक्तिशाली एवं स्थायी बनाने के साथ ही साथ सामान्य जनों के अनुचित हस्तक्षेपों से उत्पन्न होने वाली बाधाओं का निराकरण करना भी था। इस दिशा में लार्ड वैलेज़ली ने वज़ीर को एक सीमा तक संतुष्ट भी कर दिया था और एक आचरण-संहिता भी निर्धारित कर दी गयी जो उसके उत्तराधिकारियों और सहकारियों के हाथों में पड़कर लुप्त हो गयी।

इस प्रकार लार्ड वेलेज़ली को कुछ सामान्य सिद्धांतों के आधार पर वज़ीर और कंपनी के संबंधों को नियंत्रित करने का सुअवसर प्राप्त हो गया। ये सिद्धांत भ्रमास्पद एवं थोथे सिद्ध हुए।

हिज़ एक्सलेंसी (राजा) के प्रति प्रजा के कर्त्तव्यों का वर्णन गवर्नर जनरल के शब्दों में इस प्रकार है :—

"प्रजा के प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि वह नवाब को 'हिज़ एक्सलेंसी', के अनुकूल बनाये रखने की कोशिश करे और उसे 'हिज़ एक्सलेंसी' के द्वारा नियुक्त किये हुए अधिकारियों के कामों में रुकावट न डाल कर उनके साथ सहयोग करने की सलाह देनी चाहिए। ब्रिटिश सरकार का सहयोग और सैनिक शक्ति का उपयोग प्राप्त करने की आवश्यकता पड़ने पर समयानुसार उपयुक्त सहायता दी जायेगी।

"प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि नवाब के प्रति हर अवसर पर अत्यधिक सम्मानजनक मैत्रीपूर्ण एवं विनम्र आचरण प्रदर्शित करे, प्रत्येक कार्य में उनके साथ हार्दिक सहयोग करे और 'हिज़ एक्सलेंसी' के शासन को और अधिक शक्तिशाली एवं स्थिर बनाये।"

"किसी भी व्यक्ति को सुरक्षित राज्याधिकारों के सम्बन्ध में 'हिज़ एक्सलेंसी' या उनके मंत्रियों की पूर्व अनुमति लिये बिना, कुछ नहीं करना चाहिए। जिस विषय पर सलाह ली जा रही हो, अन्तिम निर्णय न मिलने तक गुप्त रखी जाय।"

इन सिद्धांतों की, कर्नल स्लीमैन एवं अन्य लोगों के व्यावहारिक आचरण से तुलना कीजिए। अवध की सरकार में उनका सीधा और स्वतंत्र रूप से हस्तक्षेप करना, परामर्श करने में वज़ीर के सहयोग का पूर्ण निषेध और साथ ही साथ उनका बंधनमुक्त जीवन शासन को सहयोग एवं स्थायित्व देने के स्थान पर उनकी विध्वंसात्मक प्रवृत्ति इत्यादि, इन सिद्धान्तों का उपहास करती-सी प्रतीत होती हैं।

मिल ने, इन सिद्धान्तों की व्याख्या करने वालों के विचारों में ही इनके थोथेपन का आभास पा लिया। इनके व्यावहारिक परिणाम के सम्बन्ध में उसका कथन है[1]—"वज़ीर की सैनिक शक्ति को निस्तेज कर देने के लिए उतावलेपन से प्रदर्शित हो जाता है कि ब्रिटिश सरकार अपने मित्र राज्यों से किस प्रकार के सम्बन्ध रखना चाहती है। इससे पाखंड का वह आधार भी प्रदर्शित होता है जिसमें यह सरकार अपना अस्तित्व बनाने का जी-तोड़ प्रयास कर रही है। नवाब से उसके सभी अधिकार छिन गये हैं फिर भी, नाटक इस प्रकार का खेला जा रहा है कि मानो वे सारे के सारे उन्हीं के हाथों में हैं।

दूसरी ओर ध्यान देने की बात यह है कि लार्ड वेलेज़ली ने इन विचारों में यद्यपि कुछ भाग अवश्य लिया था फिर भी वह स्वयं इस पक्ष में न था कि अवध के वज़ीरों को इतनी स्वतंत्रता दी जाये। यही कारण है कि इस वक्तव्य से वह ज़रा भी प्रभावित नहीं हुआ था। कंपनी के बहुत-से नौकरों ने जो भारतीय मामलों से भली-भाँति परिचित थे, सन् १८०६ में 'कामन सभा' (हॉउस ऑफ कॉमन) में परीक्षण के अवसर पर स्पष्ट एवं कड़े शब्दों में यह घोषित कर दिया कि भारत की अन्य सरकारों की अपेक्षा अवध में कर वसूली एवं सैनिक न्यायालयों की दशा बहुत ही गंभीर रूप से उनके विरुद्ध है। इससे बहुत अच्छी स्थिति बंगाल सरकार की है जिस पर कंपनी का अधिकार है, पर कंपनी के हाथों में पड़कर अवनति की ओर बढ़ता जा रहा है।

"अतः हम यह कह सकते हैं कि इसके मार्ग में कोई बाधा नहीं आयी और १८०१ वाली संधि होने तक स्थिति वैसी ही बनी रही। वास्तव में, देखा जाय तो इस तारीख के बाद इतिहास इस संबंध में मौन हो जाता है। हाँ, तब से लेकर ११ जुलाई, १८१४ तक नवाब वज़ीर की ओर से लोलुप राज्यों की मैत्रीपूर्ण सेवाओं[2] का उल्लेख अवश्य

१. "हिस्ट्री ऑफ़ ब्रिटिश इंडिया" खण्ड ६, पृष्ठ २१४।

२. स्वर्गवासी गवर्नर जनरल, मार्क्विस आफ वेलेज़ली के एक पत्र का जो कि २० अगस्त, १८०३ में नवाब सआदत अली खाँ के नाम लिखा गया था, अनुवाद।

"मुझे कर्नल स्काट के द्वारा यह जान कर बड़ी प्रसन्नता हुई कि श्रीमन् (योर

मिलता है। अंत में सआदत अली ने स्वयं ही ऐसे जीवन से निवृत्ति पा ली और कंपनी के चतुर सेवक उसे इन सेवाओं से वंचित करने का अवसर न पा सके।

सआदत अली के साथ ही, राज्य को मिलने वाली वह आर्थिक सहायता भी मिलनी बंद हो गयी जो तीन एकतंत्री शासकों के अधिकार छीनने का साधन बन गयी थी। 'मार्क्विस आफ हेस्टिंग्ज़' के अनुसार लार्ड वेलेज़ली को ३ फरवरी, १८१६ को ही भविष्य में आने वाली कठिनाइयों का पूर्वाभास हो गया था। एक कुशल राजनीतिज्ञ की देशवासी राजाओं को बिना महत्त्व वाले बेकार के कार्यों में उलझाये रखने वाली नीति पूर्ण रूप से निरापद न थी। इसमें दोष भी थे। परिणामस्वरूप अवध के लिए यह नीति काम में नहीं लायी गयी। इस नीति का स्थान और अधिक विश्वासघाती तत्त्वों ने ले लिया जो धीरे-धीरे सरकार को विध्वंस करने में संलग्न हो गये। बाद में इसके कारण बड़ी कठिनाइयाँ उत्पन्न हो गयीं। इलाहाबाद में सन् १७६५ में हुई संधि के अनुसार नवाब उन सभी सैनिक शक्तियों के असाधारण व्यय का भार स्वयं उठाने के लिए बाध्य था जिनका उपयोग उसे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए करना होता था। सन् १७६८ में नवाब के अपने सैनिकों की संख्या में कटौती करके इस 'आवश्यकता के अनुसार मिलने वाली सैनिक सहायता' को स्थायी रूप दे दिया गया। सन् १७७३ में उसके यहाँ ऐसी सेना पर २,१०,००० रुपये प्रतिमास व्यय होने लगे। कंपनी की शर्त के अनुसार किसी भी दशा में इस व्यय के लिए कंपनी से किसी प्रकार की सहायता की माँग नहीं की जा

**एक्सलेंसी) कंपनी के सैनिकों के लिए अपने अस्तबल से कुछ घोड़े भेजने की कृपा कर रहे हैं। यह मैत्रीपूर्ण सहायता जो आपने इतनी उदारतापूर्वक ऐसे जरूरी मौके पर दी है इस बात का सबसे ताजा प्रमाण है कि ब्रिटिश सरकार के प्रति आपकी भावनाएँ विश्वसनीय एवं मैत्रीपूर्ण हैं। सरकार की ओर से कर्नल स्कॉट की प्रार्थना थी कि उनके आभार प्रदर्शित करनेवाले भावोद्गार आप तक पहुँचा दिये जायँ। इसके पूर्व ही कि मैं आपके प्रति आभार प्रदर्शित कर सकूँ उन्होंने आभार प्रदर्शित किया है। आपने तुरंत ही सहायता भेज कर जो तत्परता दिखायी उससे आपकी सहृदयता एवं कंपनी के प्रति निष्ठा का स्पष्ट रूप से ज्ञान हो जाता है। इसके द्वारा आपने कृतज्ञता का जो बोझ मेरे कंधों पर लाद दिया है उसके लिए मेरे पास उपयुक्त शब्द नहीं हैं। जो कुछ भी यहाँ लिखा है वह तो उसका हजारवाँ अंश भी नहीं प्रदर्शित कर पा रहा है। आपके स्वस्थ होने का शुभ संवाद सुनने की आकांक्षा है। आशा है इस संबंध में शुभ समाचार भेज कर आप इसी प्रकार से कृपा भाव बनाये रखेंगे।"**

सकती थी। सन् १७७५ म इस पर २६,२५० स्टर्लिंग से ३२,५०३ स्टर्लिंग या ५०,००० रुपये प्रतिमास और अधिक व्यय बढ़ा दिया गया। इसके बाद सन् १७७७ में कुछ 'अतिरिक्त सैनिक', जिन्हें अस्थायी बताया गया था, भी भर्ती करा दिये गये। बाद में उन्हें स्थायी स्थान दे दिया गया। इन्हें शीघ्र हटाने के लिए नवाब के द्वारा बार-बार विरोध प्रकट किये जाने पर भी वारेन हेस्टिंग्ज़ ने ज़रा भी ध्यान न दिया। इस अतिरिक्त सेना की वृद्धि के साथ ही साथ और चीज़ों में भी वृद्धि की गयी। यह वृद्धि १७८६ तक इसी तरह से जारी रही। निरंतर दबाव डालकर ३४ लाख रुपया प्रतिवर्ष वाला राजकीय अनुदान अब बढ़ाकर ८४ लाख रुपया प्रतिवर्ष कर लिया गया था। यह राजकीय आर्थिक सहायता सन् १७८७ में लार्ड कार्नवालिस ने घटा करे ५० लाख रुपये कर दी। सन् १७९७ में सर जान शोर ने पुनः इसमें ५५,००० स्टर्लिंग प्रतिवर्ष या साढ़े पाँच लाख रुपया प्रतिवर्ष की वृद्धि करके और नवाब वज़ीर पर दो सैनिक पल्टनों के व्यय का भार और बढ़ा दिया। सन् १७९८ में सर जान शोर ने सआदत अली से मिल जाने का लाभ उठाकर इस धनराशि को ५,५५,००० स्टर्लिंग प्रतिवर्ष से बढ़ाकर ७,६०,००० स्टर्लिंग प्रतिवर्ष कर दिया। स्वाभाविक ही था कि इतने बढ़े हुए कर के कारण नवाब कर्ज़दार हो गया। लार्ड वेलेज़ली ने दोआब वाला भाग इस कर्ज़ की धनराशि के बदले में हड़प लिया जहाँ से १३,५२,३४७ स्टर्लिंग का लाभ भी होना था। इसी प्रकार सारे अवध पर अधिकार होता चला गया। इस इतिहास का सारांश पाठकों को यहीं पर मिल जायेगा।

अध्याय ४

## दूसरे सभी साधनों के असफल हो जाने पर कंपनी ने ग़ाज़ीउद्दीन को "उदारता की खान" कैसे बना दिया ?

ग़ाज़ीउद्दीन अपने पिता सआदत अली का उत्तराधिकारी था। उसके पिता को मजबूर करके इतना चूसा गया था कि उसे ऐसी सौदेबाज़ी को भविष्य में करते रहने में सफलता की ज़रा भी आशा न थी। वास्तव में देखा जाय तो वह इस उपजाऊ प्रदेश को, ढेरों रुपये गँवाते रहकर, बलि का बकरा बना देने से बच गया। उसने विना किसी धूम-धाम या परेशानी के ही ईस्ट इंडिया कंपनी से समझौता कर लिया। यह ठीक है कि उसके पिता ने इस प्रदेश को कंपनी के हाथों समर्पित कर इसकी कीमत पहले ही चुका दी थी। जो संधि उसे स्वीकार करनी पड़ी थी, वह उसे काफी महँगी पड़ी थी। पर इस संधि के अनुसार प्रदेश पर उसका अधिकार तो स्वीकार ही किया गया था। इसके आंतरिक मामलों में आत्मनिर्णय की स्वतंत्रता भी उसे प्राप्त थी, भले ही बाद में उसके अर्थों में परिवर्तन आ गया हो। इस स्वतंत्रता का उसने पूर्ण उपयोग किया और राज्य के कोष में, जहाँ पहले घाटा ही घाटा होता था, अब आशातीत लाभ होने लगा। फिर भी, यह वृद्धि सारी की सारी कंपनी की जेब में जाती थी। रुपये हड़पने का यह ढंग बाद में भी जारी रहा। हाँ, और तरीकों से होने वाली लूट अवश्य रुक गयी। इस नये शासक के आते ही पुरानी संधियों को दोनों ही पक्षों की ओर से एक बार फिर दोहराया गया और निश्चय किया गया कि वे 'अंतिम समय तक मानी जाती रहेंगी'।

नवाब वज़ीर को इससे कहीं अधिक सफलता प्राप्त हुई थी क्योंकि उसने इन संधियों की व्याख्या करने की प्रणाली के संबंध में पहले से ही स्पष्टीकरण करवा लिया था। सन् १८०१ की संधि में निवासियों के अधिकार संबंधी कई बातें अस्पष्ट थीं जिनका बाद में लार्ड डलहौज़ी ने स्पष्टीकरण भी किया। पर इनसे किसी को किसी तरह की असुविधा न हुई। लार्ड डलहौज़ी के आते ही आते ये सभी अधिकार छीन लिये गये; इस पर नवाब वज़ीर ने १२ नवम्बर, १८१४ को गवर्नर जनरल के पास कुछ प्रस्ताव भेजे

जिनका उत्तर भी उसे मिला। इन सात प्रस्तावों में से पहले और पाँचवें को उत्तर-सहित दिया जा रहा है। ये दोनों विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

प्रस्ताव १—प्रदेश के जो भी भाग मेरे स्वर्गीय पिता के अधिकार में उनके जीवन-पर्यंत रहे और जिन्हें श्रीमान् ने उनके उत्तराधिकारी के रूप में मुझे प्रदान किया था उन पर शासन करने का अधिकार भी मुझे दिया जाय जैसा कि मेरे पिता के जीवनकाल में भी होता रहा है। मेरे शासनाधिकार से कोई भी परगना या गाँव मुझसे छीना न जाय वरन् ऐसी व्यवस्था कर दी जाय कि मेरे बाद उस पर मेरी संतान का अधिकार रहे।

इस पर गवर्नर जॅनरल का उत्तर इस प्रकार मिला :—

"मैं नवाब वज़ीर को ऐसी विषम परिस्थिति में देख कर दुखी हूँ। इन्हें न्याय मिलना चाहिए जैसा कि सारा राष्ट्र चाहता है। मैं 'हिज़ एक्सलेंसी' से आपके चरित्र और योग्यता का दृष्टांत देकर उन्हें पूर्ण संतुष्ट करने का प्रयास करूँगा।"

प्रस्ताव ५—यदि मेरा कोई संबंधी, आश्रित, नौकर या मातहत आप तक कोई शिकायत लेकर जाय और आप उस शिकायत पर थोड़ा-सा भी ध्यान अथवा महत्त्व दे बैठेंगे तो यह बात मेरे लिए अपमानजनक होगी। इससे और लोग भी ऐसा ही करने के लिए प्रेरित होंगे और आपको बिना वजह परेशान करेंगे। मैं आशा करता हूँ कि आप उन्हें उत्तर देंगे कि शिकायत लेकर वे अपने राजा के पास जायँ। यदि इस पर भी वे न मानें तो उन्हें डाँट-फटकार कर भगा दिया जाय। अगर मैं उनके साथ उचित न्याय नहीं कर पाया तो उसके आगे तीन-तीन अदालतों के द्वार तो खुले ही हैं। इस पर भी कोई यहाँ से आपके पास इस तरह जाता है तो साफ ज़ाहिर है कि वह झूठ बोलता है और गलत रास्ते पर है।"

उत्तर—"मुझे इसे पूरी तरह से मान लेने में ज़रा भी हिचक नहीं है। सिर्फ इसे ही नहीं, ब्रिटिश सरकार के द्वारा दिये गये प्रत्येक आश्वासन की पूर्त्ति के लिए मैं हमेशा तैयार हूँ।"

इसी पत्र के अंतिम खंड में गवर्नर जॅनरल ने यह आश्वासन भी दिया :—

"ब्रिटिश सरकार ने नवाब वज़ीर के परिवार वालों को अवध पर शासन करने का पूरा अधिकार दे रखा है। इसे न मानने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। यदि अधिकार की सीमा देश और कानून की दृष्टि में ठीक है तो गवर्नर जॅनरल से इसका प्रमाण-पत्र प्राप्त कर लें। ब्रिटिश सरकार को अपने आश्वासन की पूर्त्ति में तब भी कोई हिचक न होगी।"

इससे अधिक स्पष्ट रूप में सरकार के सचिव जे० एडम ने लखनऊ निवासी श्री बेली के नाम एक पत्र में लिखा है। यह पत्र १२ नवम्बर, १८१४ को लिखा गया है :—

"संधि में नवाब के इस सुरक्षित अधिकार से कि उसके अधीन राज्यों के मामलों में बिना नवाब का परामर्श लिये ब्रिटिश सरकार कोई हस्तक्षप न करेगी, स्पष्ट विदित होता है कि, वह हर प्रकार से स्वतंत्र रहेगा। परंतु उसे यह अधिकार सिर्फ इसलिए दिया गया था कि अच्छे राज्य को हड़पने के लिए हमारी ओर से अब तक जो कदम उठाये गये थे उन्हें हम न्यायोचित ठहरा सकें। जनता के सामने हमें उन्हें एक स्वतंत्र राजकुमार के रूप में ही सम्मानित करना है। वास्तव में वह ब्रिटिश सरकार के अधीन हैं। लेकिन जहाँ तक ऊपर वाली बात का प्रश्न है, नवाब पर व्यक्तिगत रूप से कुछ ध्यान दे देने में न तो हमें कोई असुविधा है और न कोई हानि ही। हाँ, थोड़ा लाभ अवश्य है।"

इस पत्र से स्पष्ट हो जाता है कि नवाब की स्थिति ब्रिटिश सरकार के एक अधीन से अधिक न थी। लेकिन सार्वजनिक रूप से नवाब का सम्मान राजकुमारों-जैसा किया जाता था। साथ ही साथ कहने के लिए सरकार का उसके कामों में हस्तक्षेप नहीं होना था। इस संधि की रही-सही कमी गवर्नर जॅनरल ने दो साल बाद पूरी कर दी। निम्नलिखित कथन से यह समझने में जरा भी देर न लगेगी कि भारत सरकार का वास्तविक रूप कितना घृणित था :—

"बड़ी कठिनाइयों के बाद जब नवाब सआदत अली ने, अतिरिक्त सेना पर होने वाले व्यय के बदले अपने राज्य के एक बड़े भाग को हमें सौंप देने की सहमति दे दी तभी हमने संधि-पत्र में उसे राज्याधिकारों के सुरक्षित रख सकने का आश्वासन दिया। संधि का सबसे महत्त्वपूर्ण आश्वासन यही है। × × × × इस संधि का पूर्ण पालन करके ही सम्मानप्रिय, न्यायप्रिय एवं हितैषी होने का आडम्बर डाले रह सकते थे।

[ ३ फरवरी, १८१६, मिनिट आफ दि गवर्नर जनरल, धारा ८६ ( Minute of the Governor General, 3 Feb., 1816, Sec. 83.) ] × × ×

"मेरे विचार में यह नीति किसी सद्भावना की दृष्टि से नहीं, वरन् हमारी सुविधा के अनुसार ही अनुमोदित की गयी थी। इसका उद्देश्य अवध के शासक के सामने अपनी ईमानदारी का प्रमाण रखना ही था। इसमें उसे अपने राज्य पर शासन करने का अधिकार दिया गया था और सरकार का हस्तक्षेप तभी संभव था जब नवाब को इसकी आवश्यकता हो और ऐसा करना दोनों के ही हित में हो।" देखिए धारा ८६।

इन उद्धरणों से लार्ड वेलेज़ली की घृणित नीति की वास्तविकता स्पष्ट लक्षित की जा सकती है। इस नीति का उद्देश्य था कि नवाब वज़ीर अपने राज्याधिकार स्वयं ही छोड़ दें।

फिर भी, अवध ज़रा-ज़रा से लाभ के लिए बलपूर्वक राज्य छीन लिये जाने से मुक्ति

पा गया। लेकिन दूसरे कई साधनों से अवध की अपार धनराशि बटोरी जा रही थी। अब हम इन साधनों के संबंध में कुछ उल्लेख करेंगे। बाबू बेगम (जिस महिला के साथ वारेन हेस्टिंग्ज़ ने दुर्व्यवहार किया था) की मृत्यु हो जाने से गाज़ीउद्दीन उसकी चल और अचल सम्पत्ति का एकमात्र उत्तराधिकारी हो गया था। पर कंपनी ने लगभग १ करोड़ रुपयों की यह सारी संपत्ति हड़प ली। बाद में बड़ा हिसाब लगा कर कुछ हज़ार रुपये वज़ीर को इस आधार पर दिये गये कि साम्राज्ञी के प्रबंधक होने के कारण साम्राज्ञी की अंतिम इच्छा के अनुसार दिये जा रहे हैं। जो रुपये वज़ीर को कानूनी तौर से मिलने चाहिए थे वे सब कंपनी के ख़ज़ाने में चले गये। कंपनी के अधिकारियों ने आज तक उन रुपयों का कोई हिसाब-किताब नहीं दिया है। यद्यपि कई व्यक्ति (जो कंपनी के कथनानुसार इस संपत्ति के अधिकारी थे) अब इस संसार में नहीं रहे। सारा रुपया कंपनी खुद ही हड़प गयी। राज्य निवासियों की ओर से सैकड़ों प्रार्थना-पत्र इस संबंध में कंपनी के पास बार-बार भेजे गये जिनमें उसके अधिकारियों को धन दिये जाने की माँग थी। लेकिन इस लुटेरी कंपनी ने पत्रों के जवाब भेजने का भी कष्ट नहीं किया। कंपनी के लोगों को चोर-डाकुओं के अलावा कहा भी क्या जाय? लूट का यह हाल था कि जब किसी को उत्तराधिकार सौंपे जाते तो उसे आर्थिक सहायता देना बंद कर दिया जाता। कभी अकारण ही किसी पर जुर्माना कर दिया जाता और यदि कोई अच्छी ख़ासी रकम बदले में दे देता तो वह हर परेशानी से बच जाता।

जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है कि मरते समय सआदत अली ख़ज़ाने में काफी धन छोड़ गये थे। कंपनी ने यहाँ भी अपनी पहले वाली दुष्टता न छोड़ी और वह धन ऋण के नाम पर ले लिया। 'ब्लू बुक' में इस सौदे का उल्लेख इस प्रकार किया गया है—"अर्ल आफ़ मायरा (जो उस समय गवर्नर जनरल थे) और वज़ीर के बीच, १४वीं अक्तूबर, १८१४ को एक विशेष सम्मेलन समारोह हुआ। इसमें नवाब ने कंपनी को एक करोड़ रुपये उपहार स्वरूप भेंट किये थे। कंपनी ने इसे उपहार रूप में न लेकर ऋण के रूप में स्वीकार कर लिया। नेपाल-युद्ध के लम्बे समय तक चलते रहने के कारण उत्पन्न हुए अर्थ-संकट के लिए गवर्नर जनरल ने वज़ीर से १ करोड़ रुपये का और ऋण माँगा जो उन्हें मिल भी गया।......" सरकारी कार्यालयों से प्राप्त सामग्री से पता चलता है कि इसके लिए नवाब पर किसी प्रकार का दबाव नहीं डाला गया था और इसे स्वीकार करना या न करना उनकी स्वेच्छा पर निर्भर करता था। १० दिसम्बर, १८१४ को सरकार के सचिव सी० एम० रिकेट का एक पत्र लखनऊ निवासी लेफ्टिनेंट कर्नल बेली के नाम लिखा गया था। इस पत्र में रिकेट ने बेली के उस कौशल की प्रशंसा की है, जो उन्होंने इस संधि के द्वारा प्रदर्शित किया। आगे चल कर बेली को इसी कौशल

के द्वारा १ करोड़ रुपये की और माँग करने की सलाह भी दी गयी है। इस पत्र में यह आशा भी प्रकट की गयी है कि नवाब बड़ी आसानी से यह माँग पूरी करने के लिए तैयार हो जायेगा क्योंकि उसका खज़ाना रुपयों से भरा पड़ा है। २ जनवरी, १८१५ को उसने बेली के नाम एक पत्र और भेजा जिसमें संधि के अनुसार नवाब से रुपये वसूल करने में ज़रा-सा भी समय नष्ट न करने के लिए लिखा है। लेकिन कर्नल बेली के १० जनवरी, १८१५ को दिये गये उत्तर से इस संधि का एक बिल्कुल भिन्न प्रकार का स्वरूप हमारे सम्मुख आता है :—

"नवाब से दूसरी बार एक करोड़ रुपये की माँग करने के समय किस प्रकार की परिस्थितियाँ थीं मुझे पता नहीं है क्योंकि मैं वहाँ पर उपस्थित न था। नवाब ने बड़ी ही लच्छेदार भाषा में कहा था कि उसका सर्वस्व धन एवं प्राण तक अपने स्वामी के एक इशारे पर न्योछावर है। आपने भी जैसा लिखा था और मुझे भी ऐसा ही याद पड़ता है कि गवर्नर जनरल और नवाब के उस सम्मेलन-समारोह में (जिसमें मैं उपस्थित न था), नवाब के द्वारा दिये गये एक करोड़ रुपये के उपहार को ऋण के रूप में स्वीकार किया गया था। साथ ही आवश्यकता पड़ने पर और भी अधिक ऋण दिये जा सकने की बात थी। लेकिन ऋण की शर्तें इतनी उदार न थीं। उस पत्र का जो इस समय भी मेरे पास है, अनुवाद करके भेज रहा हूँ :—

"आपने कल ही इस बात का उल्लेख किया था कि कंपनी को रुपयों की असाधारण आवश्यकता होने से मुझसे ऋण माँगना पड़ रहा है। जहाँ तक १ करोड़ रुपये का संबंध है, मैं ऋण के रूप में अवश्य दूँगा, लेकिन इससे अधिक दे पाना मेरे लिए असंभव हो गया है। इतने रुपयों का प्रमाणपत्र भी आपको देना होगा।......।"

१८ फरवरी वाले पत्र में भी रिकेट कर्नल बेली पर सरकार की इस माँग को पूरा करवाने के लिए दबाव डालते दिखाई पड़ते हैं। उनके पत्र के अनुसार यदि ये रुपये न मिले तो सरकार को अति गंभीर परिस्थितियों का सामना करना पड़ सकता है। २३ फरवरी वाले रिकेट के पत्र से पता चलता है कि वज़ीर १ करोड़ की जगह सिर्फ ५० लाख रुपये ही और दे रहा है। वज़ीर ने एक पत्र भी हमें भेजा है जिसमें उसने हमें एक ही साँस में जितनी खरी-खोटी संभव थी लिख भेजी है। उसने लिखा है कि जब उसे सैनिकों को आवश्यकता होती है तो हम उसकी माँग को महत्त्वहीन समझ कर ठुकरा देते हैं, लेकिन सैनिकों की संख्या में वृद्धि करने के लिए उससे सहायता की प्रार्थना की जाती है। वास्तव में वज़ीर की कठिनाई हम समझ सकते हैं क्योंकि हमारी चालें कुछ-कुछ उसकी समझ में आ गयी हैं। लेकिन अंततः यह धनराशि किसी-न-किसी प्रकार मिल ही गयी। वज़ीर ने इसे स्वेच्छा से दिया या किसी और साधन से ली गयी इस संबंध

में कुछ भी जानने का प्रयास करना व्यर्थ है। इसके लिए गवर्नर जनरल ने गवर्नर बेली के सफल प्रयासों और उसकी योग्यता की जी भर कर सराहना की है। साथ ही, नवाब को, इस 'उदार सहायता' और सरकार के प्रति मैत्री एवं निष्ठापूर्ण व्यवहार के लिए अनेक धन्यवाद भी दिये गये। इस १ करोड़ रुपये का भुगतान करने के स्थान पर ब्रिटिश सरकार ने बैरीगढ़ नामक एक ज़िला नवाब को सौंप दिया। यह जिला नवाब के किसी काम का न था।

विशप हेबर ने अपने जर्नल के खण्ड २, पृष्ठ ८१ पर इस सम्बन्ध में लिखा है :—

"राजा ने ब्रिटिश सरकार को एक करोड़ रुपया ऋण के रूप में दिये जिससे लोगों को कुछ राहत मिले। अपने पिता के द्वारा छोड़ी हुई संपत्ति का आधा भाग (१० लाख रुपये) उसने नेपाल-युद्ध के लिए लार्ड हेस्टिंग्ज़ को दे डाले। इन रुपयों पर उसे सूद भी मिलना था। लेकिन दुर्भाग्यवश उसे इन रुपयों के बदले हिमालय की पहाड़ियों के पास का कुछ अनुपयोगी भाग दे दिया गया। इस एकदम उजाड़ वन्य प्रदेश की भूमि भी उपजाऊ नहीं। इस पर एक ऐसी पर्वतीय जाति के लोगों का अधिकार है जो बड़ी कठिनाई से कर चुकाते हैं। नवाब के पास जबर्दस्ती वसूल करने के साधनों का भी अभाव है और अंत में यह ज़िला भी उसके उत्तराधिकारी से छीन लिया गया। यद्यपि सन् १८१६ वाली संधि में नवाब वज़ीर को यह ज़िला उनके अधिकार स्वरूप ही दिया गया था, लेकिन उसे छीनते समय सन् १८०१ वाली संधि का हवाला दिया गया। यह अन्यायपूर्ण कार्य लार्ड डलहौज़ी के द्वारा किया गया। इस प्रकार अच्छी खासी लूट मची हुई थी। लूट राज्य का अपहरण कर लेने के उद्देश्य से ही हो रही थी। यद्यपि इस ज़िले की अच्छी खासी कीमत राजा के पूर्वजों ने पहले ही चुका दी थी फिर भी उसका अधिकार छीन लिया गया। इस प्रकार की लूट से बचने का दूसरा कोई उपाय भी तो न था। जिस राज्य में इस प्रकार के अन्याय होते हों और सामान्य व्यक्ति के कानों में इसकी भनक भी न पड़ती हो वहाँ जो न हो जाय वही थोड़ा है।

इस घटना को यहीं पर छोड़कर अब हम आगे बढ़ते हैं। कंपनी के लिए इसी प्रकार से जब-तब ऋण की माँग कर बैठना बड़ी आसान बात हो गयी थी। गाज़ीउद्दीन के शासनकाल में इस प्रकार से लाखों करोड़ों रुपये कंपनी को ऋण दिये जाने का कई बार उल्लेख मिलता है। हर बार कंपनी की ओर से ऐसे ही धन्यवाद प्रकट किया जाता रहा और राज्य की ओर से बड़ी ही प्रसन्नता एवं उत्साह से कंपनी पर रुपयों की वर्षा की जाती रही। यहाँ पर लार्ड एमहर्स्ट के कुछ पत्रों के उद्धरण दे देना उचित होगा जिनसे इस भावना के अस्तित्व की पुष्टि होती है। ये पत्र सन् १८१९ में "अवध के राजा" के नाम लिख गये थे। उस समय ऋण लेने का दौर बड़ी तेज़ी से चल रहा था। गाज़ीउद्दीन ने

"अवध के बादशाह" की उपाधि स्वीकार कर लेने में बड़ा गौरव समझा। इसी गौरव के नाम पर वह कंपनी की माँगें पूरी करता रहा। इसके बदले में उसे क्या मिलता था, यह उस पत्र से पता चल जाता है जो कि भारत के गवर्नर जनरल लार्ड एमहर्स्ट ने "अवध के बादशाह" गाज़ीउद्दीन के नाम १४ अक्तूबर, १८२५ को लिखा था।—पत्र के आरंभ में हमेशा की तरह अभिवादन आदि प्रकट किया गया था। इसके बाद :—

"कुछ समय पहले मैंने आप की सेवा में श्री मारडांट रिकेट के द्वारा अपना हार्दिक आभार अर्पित किया था। वास्तव में ऐसी विषम स्थिति में जब बर्मा के युद्ध के कारण भीषण अर्थसंकट उत्पन्न हो गया था और रुपयों की हमें बहुत ही आवश्यकता थी, आपने हमारी बहुत बड़ी सहायता की। ऐसे समय में १ करोड़ रुपये (१,०००,००० स्टर्लिंग) का ऋण देकर आपने अपनी मित्रता का परिचय दिया है। आपकी इस उदारता ने हमारी बहुत बड़ी सेवा की है। इससे ब्रिटिश सरकार के प्रति आपके लगाव एवं शुभाकांक्षी होने का भी स्पष्ट रूप से पता चलता है। अतः आपको अन्य सभी राजाओं में सर्वोच्च एवं सर्वोत्कृष्ट स्थान दिया गया है।

"हमारी पारस्परिक मित्रता की यह फलती-फूलती हुई सदाबहार बाटिका हरी-भरी होकर लहलहा उठी है। मित्रता की इस बाटिका से प्राप्त होने वाले फलों (सुपरिणामों) से यहाँ और यूरोप का हर अंग्रेज़ हार्दिक रूप से प्रभावित हुआ है। ब्रिटिश राष्ट्र आपके इस उदारतापूर्ण व्यवहार को सदैव स्मरण रखेगा। इसे भूल पाना उनके लिए असंभव है।

"मुझे भी अपनी हार्दिक सहमति प्रकट करनी है। आपके प्रधान मंत्री, यशस्वी पुत्र एवं सच्चे मित्र, नवाब महमूद्दौला मुख्तियारूल मुल्क से भी मैं बहुत संतुष्ट हूँ। वे युद्धक्षेत्र में सिंह-जैसे वीर सेनापति होने के साथ ही आप-जैसे अवध के ही नहीं, वरन् विश्व के महानतम शासक और राज्य के आधारस्तंभ भी हैं। आपने इस संबंध में जो कुछ करने की कृपा की उसकी प्रशंसा करने के उपयुक्त शब्दों का मेरे पास अभाव है।

"बंधुत्वपूर्ण संबंधों में जब किसी मित्र को सफलता, ऐश्वर्य या सम्मान मिलता है तो प्रत्येक बंधु को ही उसकी प्रसन्नता होती है। इसीलिए मैं भी आपका सच्चा एवं अभिन्न मित्र होने के नाते एक शुभ संवाद भेज रहा हूँ जिसे सुनकर आप भी प्रसन्न होंगे। अभी मेरे पास बर्मा से एक संदेश आया है कि वहाँ के निवासियों को अपने कृत्यों के लिए दुःख एवं पश्चात्ताप है। वे हमारी सेनाओं से संघर्ष कर पाने में अब असमर्थ हैं और किन्हीं भी शर्तों पर शांति स्थापित करने के लिए तैयार हैं।

ऐसा करने के लिए वे विवश हो गये हैं। वे मूर्ख इस बात को अच्छी तरह से समझ गये हैं कि हमारी शक्तिशाली सेना से सामना कर पाना उनके लिए असंभव है। हमारी

सेनाएँ शत्रु का उसी प्रकार पीछा करती हैं, जैसे वन में सिंह अपने शत्रु का पीछा करता है। उनसे बचकर निकल पाना किसी के लिए भी संभव नहीं है।

उन्हें अब भली-भाँति समझ में आ गया है कि हमसे संघर्ष करने का अर्थ अपने लिए दुर्भाग्य और तबाही को निमंत्रण देना है।

शांति स्थापित किये जाने के अंतिम निर्णय से संतुष्ट होकर इस महान् घटना की सूचना भजते हुए मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है।

मेरी आपसे विनम्र प्रार्थना है कि अपने स्वास्थ्य एवं कुशलक्षेम के विषय में समय-समय पर आप मुझे लिखते रहेंगे। मैं सदैव इस संबंध में जानने के लिए बड़ा उत्सुक रहूँगा।

अंत में आपके सुख, ऐश्वर्य एवं सम्मान के लिए प्रार्थना करते हुए, पत्र को समाप्त करता हूँ।"

—(हस्ताक्षर) एमहर्स्ट

गाज़ीउद्दीन हैदर को २२ जून, १८२६ को लार्ड एमहर्स्ट की ओर से लिखा गया एक और पत्र :—

"यह जान कर कि आपने कंपनी के लिए ५० लाख रुपये ऋण स्वरूप भिजवाये हैं, मुझे बेहद खुशी हुई जिसे प्रकट कर पाने की सामर्थ्य शब्दों में नहीं है। इसके लिए मेरी ओर से हार्दिक धन्यवाद स्वीकार कीजिए। मैं आपका सदा आभारी रहूँगा। ईश्वर आपका (जो कि "उदारता की खान" हैं) सदैव कल्याण करे। कंपनी पर आपके अनेक उपकार हैं। ब्रिटिश सरकार आपके मैत्रीपूर्ण एवं उदार व्यवहार को कई बार देख चुकी है। ऐसी सहायता करके आपने अपनी सच्ची सद्भावना प्रदर्शित की है। और हमारी मित्रता के उद्यान को आपने एक बार फिर से हरा-भरा कर दिया है। इस प्रकार ब्रिटिश सरकार को एक बार फिर से कृतज्ञता प्रकट करने के लिए मजबूर हो जाना पड़ा। वैसे इस कृतज्ञता को शब्दों के द्वारा प्रकट कर पाना असंभव है।

मैंने अपने महत्त्वपूर्ण एवं उच्च अधिकारी एम० रिकेट को भी इस उदार सहायता के लिए मेरी ओर से धन्यवाद प्रकट करने के लिए कह दिया है।

मुझे आशा है कि आप इसका ध्यान सदैव रखेंगे कि मैं आपके स्वास्थ्य एवं कल्याण के संबंध में जानने के लिए बहुत उत्सुक हूँ। अतः विश्वास है कि इस संबंध में पत्र के द्वारा सूचित करके मुझे प्रसन्न होने का अवसर देंगे। मुझ सम्मान देने के लिए इतना ही पर्याप्त है।"

२३ जून, १८२६ को लार्ड एमहर्स्ट का "अवध के बादशाह" गाज़ीउद्दीन हैदर के नाम लिखा गया पत्र :—

आरंभ में सदा की भाँति औपचारिक रूप से अभिवादन आदि ।

"मैं आपका सच्चा हितैषी हूँ । आप राजगद्दी के आभूषण हैं और बड़े ही सम्मान-जनक रूप से उसे सुशोभित कर रहे हैं । मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता है कि आपने ईस्ट इंडिया कंपनी को ५० लाख रुपये (यानी ५००,००० स्टर्लिंग) का ऋण देने की कृपा की । आपकी यह कृपा कंपनी के प्रति आपके लगाव एवं मैत्री की सूचक है । मैंने आपके सेवक की भाँति यह धनराशि सुरक्षित रूप से कंपनी के खजाने में जमा करा दी है । मैं अपनी कृतंज्ञता का विश्वास दिलाने का आकांक्षी हूँ । आपने अहसानों का जो ऋण हम पर लाद दिया है उसके लिए मैं आपका अत्यंत आभारी हूँ और हार्दिक धन्यवाद भेज रहा हूँ ।

"आपके इस शुभाकांक्षी ने अपने विश्वसनीय एवं उच्च अधिकारी एम० रिकेट से भी यह कह दिया है कि मेरी ओर से आपके प्रति हार्दिक धन्यवाद आप तक पहुँचा दें । आपको बहुत-बहुत धन्यवाद । धन्यवाद भी कहाँ तक दूं जब कि हृदय आपके प्रति कृतज्ञता से लबालब भरा हुआ है । आपसे विनम्र प्रार्थना है कि कभी-कभी पत्र-व्यवहार करके मुझे प्रसन्न होने का अवसर देने की कृपा करते रहें । मेरी यही हार्दिक प्रार्थना है कि आप हज़ारों वर्ष तक इसी प्रकार सुखी एवं समृद्ध रहें ।[१]—मैं हूँ

—(हस्ताक्षर) एमहर्स्ट

इस प्रकार की शैली में लिखे गये पत्रों के द्वारा ही कंपनी सरकार अवध को अपना शिकार बना रही थी । यह नीति थी चापलूसी वाली नीति । इसी प्रकार शिकार को "उदारता की खान" बना कर बार-बार रुपयों का शोषण किया जाता रहा । जब शिकार कंगाल हो जाता तब यह कार्यप्रणाली बिल्कुल दूसरी ही हो जाती । लार्ड डलहौज़ी की राज्य घोषणा तो हम देख ही चुके हैं । इस प्रकार धन-शोषण तो हो ही रहा था, चाहे बड़ी आसानी से धन मिल जाता हो या ज़बरदस्ती छीना जाता हो । ऋण के इस धन को, जिसमें मूलधन और ब्याज दोनों ही शामिल हैं, बाद में जाँच का विषय बना लिया जाता था । यह जाँच ऐसी होती थी कि खत्म ही न होने को आती । यह सब करने वाले वे अर्थशास्त्री थे जिनकी ऐसे धन की वृद्धि करने पर ही जीविका आधारित थी । इस धन में कमी या वृद्धि के अनुपात से ही उनकी आय में भी कमी और वृद्धि हो जाया करती थी । इसी कारण लेफ्टिनेंट कर्नल बेली (जिनका परिचय हम ऊपर ही

**१. नोट :—यह पत्र और इसके पहले वाला पत्र—दोनों दो भिन्न-भिन्न ऋण दिये जाने का संकेत करते हैं । ये दोनों ऋण गाज़ीउद्दीन की ओर से ईस्ट इंडिया कंपनी को**

प्राप्त कर चुके हैं) को अपनी आजीविका से हाथ धोना पड़ा। नवाब के प्रति विशेष रुचि रखने के कारण सरकार के आंतरिक कामों में हस्तक्षेप करने का आरोप लगा कर उन्हें हटा दिया गया। उन्हें सन् १८१५ में लार्ड मायर ने हटाया था।[१] भारतीय सरकार की यह नीति अगले कई वर्षों तक इसी प्रकार से चलती रही। इस बीच सारे प्रांत में शांति स्थापित रही और यहाँ की उपजाऊ भूमि एवं अन्य कई साधनों के द्वारा सरकार बराबर फलती-फूलती रही। सरकार को किसी-न-किसी रूप में हर प्रकार से लाभ हो रहा था। सरकार अवध के साथ जिस प्रकार से उदार व्यवहार कर रही थी, उससे दोनों को ही कुछ-न-कुछ लाभ भी हुआ।

यहाँ पर संदेह होने लगता है कि क्या कंपनी की सरकार सम्पूर्ण अवध को अपने अनुकूल बना लेने के उद्देश्य को भूल गयी थी जिसकी लार्ड वेलेज़ली ने स्वीकृति दी थी? संदेह का कारण यह है कि जिस दिन से इस उद्देश्य को स्वीकार करके इस दिशा में कदम उठाये गये थे, तरह-तरह के समाचार सुनने में आने लगे। अवध के कुशासन एवं अत्याचारों के विरुद्ध तरह-तरह के प्रदर्शन किये जाने लगे थे। ऐसे प्रदर्शन गाज़ीउद्दीन के शासनकाल में ही शुरू हो गये थे, लेकिन सन् १८१८ तक उनका विशेष प्रचलन नहीं हुआ था। इसका पता हमें लॉर्ड मॉयरा (जो उस समय मार्क्विस ऑफ हेस्टिंग्ज़ थे) के एक पत्र के निम्नलिखित उद्धरण से चल सकता है। यह पत्र नवाब को लिखा गया था। १ अप्रैल को लिखे गये इस पत्र में अभिवादन के पश्चात् लिखा गया कि नवाब के द्वारा भेजी हुई सहायता के विषय में उन्हें जब समाचार मिला तब वे लखनऊ और गोरखपुर के बीच यात्रा कर रहे थे। इस सहायता के लिए नवाब को हार्दिक धन्यवाद दिया गया था। इसके अतिरिक्त नवाब को इस बात का विश्वास भी दिलाया गया था कि नवाब के शासनकाल में देश भर में जो उन्नति हो रही है उससे वे बहुत संतुष्ट हैं और आशा प्रकट की गयी थी कि इसी प्रकार सुख-समृद्धि बढ़ती रहेगी।

लेकिन इसके एक दम विपरीत स्थिति को प्रदर्शित करने वाले विरोधपूर्ण समाचार भी बराबर आते रहे। लार्ड हेस्टिंग्ज़ की व्यक्तिगत जाँच-पड़ताल और कंपनी को ऋण के रूप में दी गयी नगद धनराशि के उदाहरण के द्वारा भी इन विरोधी स्वरों को रोका न जा सका। अवध की बरबादी के समाचार दूर-दूर तक पहुँचने लगे। कंपनी जिन साधनों के द्वारा अवध में लूट-खसोट मचा रही थी उनके विषय में लोगों में थोड़ी जागरूकता की भावना आने लगी थी। गाज़ीउद्दीन के शासनकाल में हो रहे इस विरोध के

१. गवर्नर जॅनरल के मिनिट्स (Minutes) में ३१ अक्टूबर, सन् १८१५, अवध पेपर्स, पृष्ठ ९६३।

सबसे निष्पक्ष गवाह विशप हेबर थे जो सन् १८२४ में संपूर्ण भारत का दौरा करते हुए उसकी राज्य सीमा में भी गये थे। वे जिस निर्णय पर पहुँचे थे वह इस प्रकार है :— बहुत-से लोगों एवं व्यवहार वालों के सम्पर्क में आने पर उन्होंने पाया कि देश की शासन-व्यवस्था के कुप्रबंध के विषय में उन्होंने जो कुछ सुन रखा था वह उनके व्यक्तिगत अनुभव से मेल नहीं खाता। अवध के विषय में वह लिखते हैं :—

"अवध के शासन के कुप्रबंध के विषय में मैंने बहुत कुछ सुन रखा था। यहाँ के किसानों के पास हथियार तो हैं, लेकिन वे बड़े ही दयालु और शांतिप्रेमी हैं। गाँवों की दूकानें बड़ी साफ-सुथरी हैं और लोग बड़े आराम में हैं। राजा के हाथियों का पालन-पोषण अवश्य बड़ी कंजूसी के साथ किया जा रहा था। लेकिन फिर भी मुझे यह देख कर प्रसन्नता हुई और आश्चर्य भी कि अवध के लिए मेरी पूर्व धारणा गलत सिद्ध हो गयी। लखनऊ देख कर ड्रेसडेन की याद आ जाती थी और उसकी एक सड़क देखकर तो आक्सफोर्ड की हाईस्ट्रीट की याद ताज़ी हो जाती थी। मैंने सुना था कि लोग हथियार आदि लेकर चलते हैं जिनके कारण स्वच्छंदतापूर्वक घूमना-फिरना कठिन है। मगर मैंने देखा कि वहाँ के लोग बड़े ही भले एवं सभ्य थे। हमारे लिए लोग अपने हाथी और गाड़ियाँ आदि एक ओर हटाकर हमें जाने के लिए रास्ता देते थे। उन लोगों में सहृदयता की भावना उन दो विदेशियों की अपेक्षा कहीं अधिक थी जो हमें लंदन में मिले थे।" राजा ने भी उन्हें काफी प्रभावित किया था। उसने उनकी तुलना जेम्स प्रथम से की थी। "मैंने देखा कि राजा अध्ययन-प्रेमी भी है और विद्वान् भी मालूम पड़ता था। यांत्रिक विज्ञान, रसायनशास्त्र के अतिरिक्त दर्शनशास्त्र और भाषा-विज्ञान में भी उसकी रुचि है।"

हेबर ने लिखा है—"इन सब बातों में कहीं भी किसी प्रकार की हिंसात्मक या अनुचित क्रिया मेरे सामने नहीं आयी।"......वह इस बात पर जोर देते हैं कि "कंपनी से मित्रता में पूर्ण विश्वास रखने से ही उसकी सारी मुसीबतों का जन्म हुआ। इसी विश्वास के कारण उसके और उसके पूर्वजों की बड़ी शक्तिशाली सेना छिन्न-भिन्न कर दी गयी और वे पहले से चले आ रहे असाधारण व्यय की रकमें चुकाने के लिए मजबूर कर दिये गये। इसी विश्वास के कारण ही ब्रिटिश सरकार को ऋण भी दिया गया। इस रुपये का इससे कहीं अच्छा उपयोग अपने राज्यवासियों की सहायता के लिए किया जाने वाला था। उसने किसी को भी सहायता देने से कभी इनकार नहीं किया और शायद कभी करेगा भी नहीं। बड़े ही मैत्रीपूण ढंग से हर एक की दशा में सुधार करने के लिए सदैव तत्पर रहा। इस पर भी उसके कथनानुसार कुछ लोग उसकी बड़ी आलोचना करते फिरते हैं जो कि अनुचित है।......मैं स्वयं इसकी साक्षी देने के लिए तैयार हूँ कि राजा का वक्तव्य पूर्ण रूप से सत्य है। उसका राज्य वास्तव में इतनी उन्नति कर

रहा है जो मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था। लखनऊ से सांडी के बीच यात्रा के समय मैं यह पत्र लिख रहा हूँ। यहाँ की जनसंख्या और पैदावार कंपनी द्वारा अधिकृत प्रदेशों की अपेक्षा कहीं अधिक है। सच तो यह है कि साल भर से जब से उसे सैनिक सहायता देनी बंद कर दी गयी है तब से यहाँ कुछ प्रगति ही हुई है।......अतः मैं यह संदेह किये बिना नहीं रह पाता कि अवध के विषय में जो कुछ बुरे समाचार सुनने में आ रहे हैं वे अतिशयोक्तिपूर्ण हैं।......" मैंने कुछ शासन से पीड़ित लोगों से पूछा कि क्या वे ब्रिटिश सरकार के अधीन रहना चाहते हैं? वे अवश्य इसके लिए तैयार थे। कैप्टन लेकिट ने भी इस प्रकार के कुछ पीड़ित लोगों का वर्णन किया है जिन्होंने अपने शासक की कमज़ोरियों और सरकार की दुष्टता के संबंध में उन्हें बताया और कहा कि उन्हें किसी प्रकार से इस विषम परिस्थिति से छुटकारा दिलाया जाय।"

इस प्रकार रुपयों के वसूल किये जाने में जिस प्रकार की गड़बड़ियाँ की जा रही थीं और वहाँ के निवासियों के हस्तक्षेप के कारण क्या-क्या मुसीबतें उठ खड़ी हुई थीं—इसके संबंध में हेबर के द्वारा प्रकट किये गये विचारों से बड़ी सहायता मिलती है। सन् १८२४-२५ में हेबर ने गाज़ीउद्दीन के शासन के विषय में उपर्युक्त विवरण लिखा था। ठीक दो वर्ष बाद अर्थात् सन् १८२७ में गाज़ीउद्दीन की मृत्यु हो गयी। मर करके उसने अन्य कई ऋणों की भाँति प्रकृति के ऋण को भी चुका दिया क्योंकि कंपनी के शब्दों में वह "उदारता की खान" जो था।

## अध्याय ५

**अन्य सुविधाओं के अतिरिक्त कंपनी ने नसीरुद्दीन को ऋण देने के लिए और हमारे लाभों के लिए किस प्रकार राजी किया। और किस प्रकार तथा किस उद्देश्य से सन् १८३७ वाली संधि करने पर विवश किया गया।**

गाज़ीउद्दीन की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र नसीरुद्दीन हैदर गद्दी पर बैठा। उसकी उदार प्रकृति का लाभ उठा कर उसे भी इसी प्रकार से 'उदारता की खान' बना कर उससे कई तरह की सुविधाएँ माँग ली गयीं। "पार्लियामेंटरी रिटर्न आफ ट्रीटीज़" से ज्ञात होता है कि उसे राज्य करते हुए दो ही वर्ष हुए थे (अर्थात् सन् १८२९ में ही) सरकार ने उससे ६२,४०,००० रुपयों के एक विशेष ऋण की माँग की। इस ऋण की माँग किये जाने का उल्लेख पार्लियामेंट और जनता दोनों के ही सम्मुख किया गया। लेकिन इसे चुकाये जाने के विषय में किसी को भी कुछ पता नहीं। संधि की पाँचवीं शर्त[1] के अनुसार इसके बदले में उसे जो पेंशन मिलने वाली थी वह भी हड़प ली गयी। इसके

१. १ मार्च, १८२९ की इस संधि के प्रभाव के संबंध में कुछ संदेह न रह जाय, इसलिए इसकी मुख्य धाराओं का सारांश दिया जा रहा है—

पहली धारा :—सम्माननीय राजा साहब अवध ने यह धनराशि गवर्नर जनरल को ईस्ट इंडिया कंपनी के लिए ऋण के रूप में दी है। लखनऊ के सिक्कों में यह कुल धनराशि ६२ लाख ४० हजार रुपये हैं।

दूसरी धारा :—इस मूलधन पर ५% वार्षिक की दर से ब्याज भी दिया जायेगा। खजाने की तरफ से अंग्रेजी के हर तीन महीनों में इसका भुगतान किया जाया करेगा।

तीसरी धारा :—वर्ष भर में ब्याज की सही रक़म का जोड़ ३१२००० रुपये होता है। इसका भुगतान पेंशन के रूप में चार बराबर-बराबर की किश्तों में किया जायगा। यह रक़म निम्नलिखित अनुपात में निम्नलिखित व्यक्तियों को आजीवन दी जाती रहेगी। (यहाँ पर उन व्यक्तियों के नाम और उन्हें कितने-कितने रुपये मिलने हैं—का उल्लेख मिलता है।)

चौथी धारा :—यदि पेंशन पाने वाले की मृत्यु हो जाती है और उसका कोई उत्तराधिकारी (या कोई उत्तराधिकारी) हो तो अंग्रेज सरकार इसे मृत व्यक्ति के उत्तराधिकारी को देती रहेगी। अथवा पेंशन के अनुपात से मूल धन का भुगतान

लिए सैकड़ों दरख्वास्तें भेजी गयीं। लेकिन सरकारी खजाने ने एक पर भी ध्यान न दिया। इनमें से सिर्फ एक का उत्तर सर चार्ल्स मेटकाफ ने १० अप्रैल, १८३४ को दिया था जिसमें लिखा था कि मेज़र जान लो को इस संबंध में सारी आवश्यक सूचनाएँ भेज दी गयी हैं। लेकिन मेज़र लो ने इस संबंध में न तो कोई सूचना ही दी और न कंपनी ने रुपये ही लौटाये। इसमें संदेह नहीं कि इस प्रकार के व्यवहार के बाद अधिक समय तक ऋण नहीं लिया जा सकता था। लेकिन नसीरुद्दीन ने ऋण देना बंद नहीं किया, और यह सिलसिला बराबर चलता रहा।

नसीरुद्दीन एक बड़ा ही दयालु शासक था। १२ दिसम्बर, १८३३ तक उसने इस ऋण के संबंध में रत्ती भर भी परवाह नहीं की। ऋण उस समय भी नहीं चुकाया गया था। नसीरुद्दीन इस समय भी संधि की भूमिका में उल्लिखित उन शब्दों के जाल में उलझा हुआ था :—"ईश्वर का यह आदेश मनुष्य जाति को दिया गया था कि प्रत्येक मनुष्य एक दूसरे की सेवा के लिए सदैव तत्पर रहे और पारस्परिक सहानुभूति एवं दया की भावना बनाये रखे। राजाओं और गवर्नरों के लिए तो इन आदेशों का पालन करना और भी आवश्यक हो जाता है। ईश्वर ने इसी उद्देश्य से उन्हें धन-धान्य से परिपूरित किया है।......अवध के सम्माननीय बादशाह ने ईश्वर के इन आदेशों को ध्यान में रखते हुए भूखों को भोजन, वस्त्रहीनों को वस्त्र और पीड़ितों को सुख पहुँचाने के लिए अपने खज़ाने से बड़ी उदारता से रुपये दिये हैं।"

इसी उद्देश्य से उसने ऋण के रूप में तीन लाख रुपये ब्रिटिश सरकार के खज़ाने में रख छोड़े थे कि चार प्रतिशत की दर से १२,००० रुपये वार्षिक या १,००० रु० मासिक मिलने वाले ब्याज की वह सारी रकम, लंगड़ों, अपाहिज़ों, अंधों, असहाय वृद्धों एवं कुष्ठ पीड़ितों इत्यादि को दे दी जाया करे। आगे चल कर उसने यह भी अंगीकार किया था कि "अवध के भावी शासकों को इस बात का पूरा अधिकार होगा कि इस धन को किसी दूसरे उद्देश्य पूर्ति के लिए खर्च कर सकें। सरकार से इस आश्वासन की भी माँग की गयी थी कि यह सहायता उसके (नसीरुद्दीन) के) नाम से सदैव दी जाती रहे। नसीरुद्दीन हैदर सिर्फ इतने से ही संतुष्ट नहीं हो गया था। लखनऊ कालेज के छात्रों के लिए ३,०००

**करेगी। कई उत्तराधिकारियों की दशा में पेंशन की रक़म बराबर भागों में विभाजित कर दी जायगी। भुगतान में ब्याज की दर वही रहेगी जो पहले थी।**

**पाँचवीं धारा :—यदि किसी पेंशन पाने वाले या किसी उत्तराधिकारी का देहान्त हिज़मेजेस्टी के जीवन काल में हो जाय अथवा कोई उत्तराधिकारी न हुआ तो यह रक़म राजा नसीरुद्दीन की ही उत्तर भोग्य होगी।**

रुपये मासिक भत्ते के दिये जाने की व्यवस्था भी उसने कर दी थी। अपने संक्षिप्त-से शासनकाल में उनसे निर्धन बीमारों के लिए भोजन एवं औषधियों का प्रबंध भी करवाया और कई अस्पताल भी खुलवा दिये। मानव के क्रय-विक्रय की कुप्रथा को उसने बड़ी कठोरतापूर्वक बंद करवा दिया। वैसे यह कुप्रथा अवध में बहुत पहले से ही खत्म हो चुकी थी, लेकिन भारत के कई भागों में उस समय भी प्रचलित थी। नसीरुद्दीन के हस्त-क्षेप से वह कुप्रथा वहाँ भी बंद करवा दी गयी। ठगों और डाकुओं का दमन करने एवं राज्य की सुरक्षा के लिए उसने जो कदम उठाये थे, उनकी सारे देश में सराहना की जाती रही। इस पर भी लंदन में छपी पुस्तक "दि प्राइवेट लाइफ ऑफ ऐन ईस्टर्न किंग", जो कि आंशिक रूप में ही सच तथ्य रखती हैं, इसके संबंध में केवल उसके शत्रुओं के विचारों पर ही प्रकाश डालती है। इसमें उसकी कटु आलोचना की गयी है जो बिल्कुल गलत है।

ऐसे उदार एवं सच्चरित्र शासक की सन् १८३७ में दुःखद मृत्यु हो गयी। ईस्ट इंडिया कंपनी ने उसी प्रकार की दुष्टता नसीरुद्दीन के उस संधिपत्र के साथ भी दिखलायी जैसा वह हर ऐसे मौके पर दिखलाती आयी थी। सन् १८३७ में एक नयी संधि की गयी। इस संधि में भूमिका (जो नीचे पूरी दी हुई है[1]) के कुछ ही बाद लिखा गया है कि "अवध

१. "अवध राज्य और ईस्ट इंडिया कंपनी के बीच हुए इस समझौते के द्वारा ब्रिटिश सरकार को विदेशी एवं घरेलू दोनों ही शत्रुओं से अवध की रक्षा करनी होगी। इसके अनुसार अवध के शासक को एक निश्चित संख्या से अधिक सैनिक नियुक्त करने का अधिकार नहीं है। ब्रिटिश सरकार अपने कर्त्तव्यों का बराबर उचित ढंग से पालन करती रही जब कि अवध के शासक हमेशा से ही इसका उल्लंघन करते रहने के आदी रहे हैं। अवध के आप-जैसे सम्माननीय शासक के पास एक बहुत ही विशाल सेना है और जिस पर खूब रुपया खर्च किया जा रहा है। अनुभव से यह प्रमाणित हो गया है कि सन् १८०१ की संधि का पालन करने में कई गंभीर अड़चनें हैं। अतः यह आवश्यक है कि कोई ऐसी नयी व्यवस्था ढूंढ़ निकाली जाय जिससे सन् १८०१ वाली संधि के प्रस्तावों पर भी चला जा सके और जो हम दोनों के ही हित में हो। जहाँ तक सैनिक संख्या में कमी करने का प्रश्न है, आपके वे अतिरिक्त सैनिक ब्रिटिश सरकार के अनुशासन और नियंत्रण में आ जायेंगे। इससे संपूर्ण भारत को ही लाभ होगा। आप अर्थात् अवध के बादशाह का सम्मान एवं गौरव भी इससे सुरक्षित रह सकेगा। सेना में कमी करने पर आप अधिक कुशलता एवं थोड़े खर्च से ही अपनी सेना की व्यवस्था कर सकेंगे। सन् १८०१ की संधि की छठी शर्त के अनुसार अवध के शासक कंपनी के अधिकारियों से सलाह लिए बिना और उनके विरुद्ध कोई कार्य

के शासकगण सन् १८०१ वाली संधि की छठीं शर्त का बराबर उल्लंघन करते रहे हैं। साथ ही एक राज्य के सर्वप्रथम कर्त्तव्य की भी बराबर उपेक्षा करते रहे हैं। ब्रिटिश सरकार से यह कुकृत्य छिपे नहीं हैं। अवध की जनता के प्रति अपने कर्त्तव्य को ये शासक पूरा नहीं कर सके। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि उपर्युक्त शर्त वाली व्यवस्था अव छीन ली जाय। यह एक समझौते के द्वारा छीनी जायगी। इस समझौते का उद्देश्य "भावी पीढ़ियों के हित का ध्यान रखना है।" लेकिन इससे पहले कि हम इस संधि की शर्तों का अथवा ब्रिटिश सरकार द्वारा उनके उल्लंघन किये जाने का विवरण दें हम उन परिस्थितियों के संबंध में कुछ बतला देना उचित समझते हैं जिनके कारण उपर्युक्त संधि का समावेश किया गया है। इस संधि की भूमिका में तो ब्रिटिश सरकार ने 'बड़ी ईमानदारी से' 'कर्त्तव्य पालन के आश्वासन' दिये थे और ऐसा प्रतीत होता था कि इसके द्वारा अवध के शासकों के साथ समझौता करने का प्रयास किया गया है। लेकिन सरकार का चरित्र छिपा सकने में यह संधिपत्र असमर्थ है।

ऐसा प्रतीत होता है कि नसीरुद्दीन की मृत्यु आकस्मिक रूप से ही हो गयी थी। इस वर्तमान घटना को देखने से पता चलता है कि नसीरुद्दीन ने इस संबंध में कोई तैयारी नहीं की थी। उसने सबसे बड़ी भूल यह की थी कि अपने दो पुत्रों को पहले से ही परित्यक्त घोषित कर दिया था। रानी माता ने उनमें से एक को नसीरुद्दीन का उत्तराधिकारी माने जाने के लिए पक्ष लिया था। लेकिन ब्रिटिश सरकार को यह क्यों मंजूर होने लगा। सरकार को भला क्या पड़ी थी जो वह नसीरुद्दीन या मोहम्मद अली शाह (स्वर्गवासी बादशाह के चाचा) का समर्थन न करती। अतः इस परिस्थिति से संघर्ष नहीं किया जा

**नहीं करेंगे। शासकगणों को अपने अधिकारियों द्वारा अपने राज्य में हर प्रकार की शासन-व्यवस्था करनी होगी, जिससे कि वहाँ के निवासियों के धन और प्राणों की सुरक्षा रहे और वे सुखी व समृद्ध हो सकें। इस कर्तव्य की उपेक्षा करने का उन्हें कोई अधिकार नहीं। लेकिन अवध के शासकों में से किसी ने भी न तो इस शर्त की कोई परवाह की और न अपने प्रथम कर्त्तव्य के पालन की ही चेष्टा की। इसके कारण बड़ी बदनामी भी उठानी पड़ी। अतः ब्रिटिश सरकार यह उचित समझती है कि इस शर्त में कुछ संशोधन कर दिया जाये। संशोधन इस प्रकार किया गया है। इसे लखनऊ के संभ्रांत नागरिक लेफ्टिनेंट कर्नल जॉन लो ने भारत के गवर्नर जॅनरल लार्ड आक्लैंड की ओर से तथा अबुल फ़तेह, मोइनुद्दीन, नौशेरवाने आदिल और अवध के बादशाह मोहम्मद अली शाह ने स्वयं अपने और अपने उत्तराधिकारियों के लिए तैयार किया जो सदैव इसी प्रकार भावी पीढ़ियों के लिए चलता रहेगा।**

सका क्योंकि इसके लिए पहले से कोई भी तैयार न था। इसी के कारण वह दु:खद घटना भी घटित हुई जिसका विवरण उसी वर्ष १ जुलाई, १८३७ में प्रकाशित 'एशियाटिक जर्नल' में इस प्रकार से मिलता है :—

"बादशाह की मृत्यु हो जाने के कारण आज सुबह एक बड़ा ही कारुणिक दृश्य देखने में आया। बादशाह के पुत्रों ने राज्यसत्ता पर जबरदस्ती अधिकार कर लिया। ब्रिटिश सरकार इसके विरुद्ध थी और इस पद के लिए स्वर्गवासी बादशाह के चाचा को अधिक उपयुक्त समझती थी और मनोनीत भी कर चुकी थी। बादशाह के चाचा को अधिकार दिलाने के लिए ब्रिटिश सेनाओं को राज्यभवन पर आक्रमण करने का आदेश दे दिया गया। रानी और उसके पुत्रों को पाँच मिनट का समय दिया गया कि वे सिंहासन छोड़ दें, पर उन्होंने एक न सुनी। अत: कर्नल लो को महल में आग लगा देने का आदेश देना पड़ा। इससे दो सिपाही मारे गये और आठ घायल हो गये। कंपनी के साथ हुए इस संघर्ष के अंत में रानी एवं राजकुमार हिरासत में ले लिये गये और बादशाह के चाचा को सिंहासन पर आरूढ़ कर दिया गया। मैं वहाँ पर बराबर उपस्थित रहा। कंपनी के सिपाहियों ने बड़ी लूटपाट भी की। सिंहासन में जड़े हुए सारे कीमती हीरे-जवाहरात उखाड़ लिये गये।" कंपनी की सेनाओं से हुए इस संघर्ष में अपार जनहानि हुई। सरकार की ओर से मृतकों की संख्या ३० और ४० के बीच बतायी गयी थी। लेकिन एम० एम० मसीउद्दीन के अनुसार अगर सरकार सही ढंग से जाँच करे तो यह संख्या ५०० से कम न होगी। यहाँ पर प्रश्न किया जा सकता है कि इस संघर्ष के लिए उत्तरदायी कौन था ? लेकिन यदि हम इसका अध्ययन करें कि सन् १८३७ वाली यह संधि किन साधनों के द्वारा समाविष्ट की गयी जिसके कारण इतना बड़ा संघर्ष और रक्तपात हुआ तो पता चलेगा कि यह संघर्ष और रक्तपात ब्रिटिश सेनाओं की तरफ से किया गया, विपक्षियों की ओर से नहीं।

सन् १८३८ में प्रकाशित 'अवध पेपर्स' में जिन्हें 'हाउस ऑफ़ कामंस' की ओर से प्रकाशित किया गया था, ७ जुलाई की रात्रि एवं ८ जुलाई की सुबह हुई इस घटना पर प्रकाश डाला गया है। यह १० जुलाई को प्रकाशित हुआ था जिस पर जान लो के हस्ताक्षर भी थे।

नसीरुद्दीन की मृत्यु का विवरण देने के पश्चात् ७ जुलाई की रात में घटित उस घटना के संबंध में इस प्रकार लिखा गया है :—

"गवर्नर जनरल के प्रतिनिधि रेजिडेंट ने डॉक्टर स्टीवेंसन के साथ स्वयं जाकर स्वर्गवासी बादशाह के शव का निरीक्षण किया था। आवश्यक निर्देश देकर वे अपने आवास म लौट आये थे। चलते समय कैप्टेन पैटेन को आदेश देते आये थे कि नसीरुद्दीन के खजाने की सम्पत्ति को सुरक्षित रखने के लिए बंद रखा जाय।......

"रेजिडेंट के हाथों में फारसी में लिखा हुआ एक कागज़ था। नसीरुद्दौला को महल में आने का निमंत्रण देने के पूर्व उस कागज़ पर उनकी सलाह और हस्ताक्षर ले लेना उन्होंने आवश्यक समझा।

"इस सब में कुछ समय लग ही गया। उस समय ८ जुलाई की रात के १ बजे होंगे जब रेजिडेंट ने अपने सहकारी लेफ्टिनेंट शेक्सपियर को मीर मुंशी इत्तिफात हुसेन खाँ बहादुर और मौलवी गुलाम माहेर खाँ (जो दरबार के वकील भी थे) के साथ नवाब नसीरुद्दौला के घर पर भेजा। वे फ़ारसी वाले उपर्युक्त संधिपत्र को अपने साथ ले गये थे। इन्होंने जानबूझ कर थोड़ी देर और लगा दी। नवाब उन लोगों के इस अप्रत्याशित आगमन से हतप्रभ-सा रह गया। लेफ्टिनेंट शेक्सपियर ने वह संधिपत्र पढ़कर सुनाया जिस पर नवाब के हस्ताक्षर माँगे गये थे। नवाब बड़ी प्रसन्नता से **बिना किसी प्रकार की हिचक के**[1] इस पर हस्ताक्षर करने के लिए तैयार हो गया। इसकी हर शर्त के साथ उसने अपनी पूर्ण सहमति प्रदर्शित की।"

यह संधिपत्र निम्नलिखित था :—

उस शर्तनामें का अनुवाद जो ७ जुलाई, १८३७ की रात्रि में नसीरुद्दौला की ओर से स्वीकार किया गया था :—

"रेज़ीडेंट लेफ्टिनेंट कर्नल जॉन लो ने अपने दूसरे सहकारी लेफ्टिनेंट शेक्सपियर के

**१. 'हाउ टु मेक एण्ड हाउ टु ब्रेक ए ट्रीटी" के लेखक ने इस दावे का खंडन किया है। उसके कथन के अनुसार "जब इस संधि को रेजिडेंट (कर्नल लो) ने बादशाह के पास हस्ताक्षर करने के लिए भेजा तो उसने उत्तर में यह लिखा कि यद्यपि 'ईस्ट इंडिया कंपनी' के लिए हर तरह से त्याग करने के लिए वह बड़ा ही इच्छुक है और हमेशा इसके लिए तैयार है, लेकिन इस संधि पर हस्ताक्षर कर सकने में वह असमर्थ है क्योंकि उसे ऐसा लगता है कि हस्ताक्षर करके वह अपनी संतानों से उनका राज्याधिकार छीन रहा है। 'अनवरत अत्याचार' 'विद्रोह', 'शासन में कुप्रबंध' आदि शब्द इतने सामान्य हो गये थे कि उनकी निश्चित परिभाषा बता सकना कठिन हो गया था। कर्नल लो ने इसके संबंध में उत्तर लिखा था कि बादशाह के शासन में ये बातें नहीं होनी चाहिए। इस बातके कई प्रमाण हैं कि बादशाह और रेजिडेंट के भाव एक दूसरे से विपरीत थे। बेचारा बादशाह तो यही जानता था कि सन् १८०१ वाली संधि के अनुसार उसके आंतरिक मामलों में ईस्ट इंडिया कंपनी के रेजिडेंट को हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार न था। उस संधि में हस्तक्षेप के परिणामस्वरूप सन् १८३७ वाली नयी संधि लागू करने का प्रश्न ही नहीं उठता था।"**

द्वारा अवध के बादशाह नसीरुद्दीन हैदर की मृत्यु की सूचना मेरे पास भिजवायी। इसके साथ ही भारत की सरकार के उन आदेशों का भी संक्षिप्त विवरण ज्ञात हुआ जिसमें अवध राज्य के साथ सरकार ने नयी संधि की जरूरत पर जोर दिया है। मैं यह घोषित कर रहा हूँ कि सिंहासन पर बैठने के बाद गवर्नर जनरल के द्वारा लायी गयी प्रत्येक नयी संधि पर हस्ताक्षर करना मुझे स्वीकार होगा। (पूर्ण अनुवाद)

(हस्ताक्षर) **"जे० लो० रेजिडेंट"**

**टिप्पणी** :—फारसी में लिखे गये कागज़ में सबसे नीचे वर्तमान बादशाह के निम्नलिखित शब्द लिखे थे—"कबूल वो मंजूर अस्त" (मुझे यह स्वीकार है और मैं इससे सहमत हूँ।) इसके नीचे उसकी मुहर का निशान है।

इस शर्तनामे को, और जिन परिस्थितियों में यह प्राप्त हुआ था, हम सन् १८३७ की संधि की भूमिका का उत्तर मान सकते हैं। इससे अवध के राजकुमारों के राज्य संचालन की कुव्यवस्थाओं और कठिनाइयों का पता चलता है।

यह भी जान लेना आवश्यक है कि गवर्नर जनरल लार्ड आकलैंड, इस बलपूर्वक लादे जाने वाले प्रतिबंध को लागू करने में हिचक का अनुभव करता था। उसने रेजिडेंट के इस प्रकार हस्तक्षेप किये जाने वाले कार्य के औचित्य के संबंध में प्रश्न करना आरंभ कर दिया। जिस प्रकार इस संबंध में रेजिडेंट निर्णय लिया करता था, वह ढंग लार्ड आकलैंड को तनिक भी न रुचा। ११ जुलाई, १८३७ में उसके द्वारा लिख गए एक पत्र का निम्नलिखित उद्धरण देखिए :—

"लखनऊ में इधर जो महत्त्वपूर्ण घटनाओं के घटित होने के समाचार हमें अभी तक मिले हैं, उनके संबंध में बिना सोचे-समझे मैं कुछ नहीं करना चाहता हूँ। मैं उस नीति का पूर्णरूप से अनुमोदन करता हूँ जो कर्नल लो ने अवध के शासक नसीरुद्दौला के राज्याधिकारों के संबंध में अपनायी थी।......

में इस संबंध में कर्नर लो के द्वारा उठाये गये पगों के संबंध में अभी कुछ नहीं कह रहा हूँ क्योंकि इसके परिणामों की अभी हमें प्रतीक्षा ही है। लेकिन मैं यह अवश्य कहना चाहता हूँ कि नये शासक से इस प्रकार के संधिपत्र पर हस्ताक्षर यदि न लिये जाते तो मुझे अधिक प्रसन्नता होती। बिना किसी शर्त के संधिपत्र पर हस्ताक्षर करके नवाब के आत्मसमर्पण कर देने वाली बात से मुझे विशेष प्रसन्नता न हो सकी। इस तथ्य को बाद में तोड़ा-मरोड़ा भी जा सकता है। कर्नल लो को ऐसा करने के लिए कोई ऐसा आदेश भी नहीं दिया गया था। नये बादशाह के विचार वैसे ही बड़े स्पष्ट रूप से उदार हैं और उसके चरित्र और स्थिति को देख कर कहा जा सकता है कि वह अपने उदार विचारों के अनकूल आचरण में भी उदारता अवश्य दिखलायेगा।"

इतना होने पर भी सन् १८३७ वाली संधि पर हस्ताक्षर करके उसे स्वीकार कर लिया गया। १८०१ वाली संधि वापस ले ली गयी। लेकिन यह नयी संधि बड़ी ही भ्रमपूर्ण थी।

इसकी पहली धारा में १८०१ वाली संधि की तीसरी धारा अवैध घोषित कर दी गयी है। इसके अनुसार अवध के शासक को अपने आवश्यकतानुसार सेना रखने का अधिकार है। देश की आर्थिक स्थिति का अन्य कारणों से वह सेना में कमी भी कर सकता था।

सन् १८०१ वाली संधि की दूसरी, तीसरी, चौथी, पाँचवीं और छठीं धाराओं से ऊपर दी गयी छूट की सीमा निर्धारित की गयी है। जिस समय यह छूट दी जायगी तो अवध राज्य की घरेलू एवं विदेशी शत्रुओं से रक्षा करने के लिए आवश्यक सेना के व्यय का भार शासक को ही उठाना होगा।[1] दूसरी शर्त के अनुसार बादशाह को सेना के स्तर को उठाना था। तीसरी धारा में उच्चस्तर सेना के अर्थ की व्याख्या की गयी थी। चौथी शर्त में सेना पर होने वाले व्यय का निर्धारण किया गया था। इसके लिए केवल १६ लाख रुपये प्रतिवर्ष ही निश्चित किये गये थे। यहाँ पर कंपनी की कुटिलता छिपी

१. "हाउ टु मेक एण्ड हाउ टु ब्रेक" के लेखक ने इस शर्त के तर्क की कसौटी पर कसते हुए इस प्रकार लिखा है :—

"संधि की दूसरी, तीसरी, चौथी, पाँचवीं और छठी धाराओं के अनुसार शासक को अपनी सेनाओं में कमी-बेशी करने पर सेना के व्यय को १६ लाख रुपये वार्षिक से अधिक नहीं बढ़ने देना होगा। ईस्ट इंडिया सरकार के अधिकारियों की बुद्धि में यह बात जरा देर के लिए भी न आयी कि अवध के बादशाह को इसके लिए ७६ लाख रुपये वार्षिक व्यय की स्वीकृति तो कंपनी ने पहले से ही दे रखी थी। 'कोड़ा' और 'इलाहाबाद' से होने वाले १ करोड़ ३५ लाख रुपयों के लाभ की रकम भी १०००० सैनिकों को दिये जाने की बात भी कंपनी को स्वीकार थी क्योंकि अवध की सीमाओं की रक्षा के लिए यह व्यय आवश्यक था। इस सेना का क्या किया जाना था ? इसकी संख्या में कमी करने पर सातवीं धारा के अनुसार राज्य की ओर से मिलने वाली आर्थिक सहायता में भी कमी होने की बात कही गयी थी। जिस समय सन् १८०१ में इलाहाबाद और कोड़ा ईस्ट इंडिया कंपनी को समर्पित किये गये थे, उस समय भी कहीं भी नहीं बतलाया या था कि सैनिक शक्ति कम करनी पड़ेगी। उस समय भी ७६ लाख रुपये का राज्यानुदान दिया जाता रहा था। सन् १८०१ वाली संधि की नौवीं शर्त में तो पिछली संधि की सभी शर्तों के माने जाने का पुष्टीकरण भी किया गया था। इसमें साफ तौर से यह कहा गया था कि पिछली संधि की सभी शर्तें

नहीं रह पाती। इसकी पाँचवीं शर्त के द्वारा इस सेना के संचालन के लिए कुछ ब्रिटिश अधिकारियों को भी नियुक्त किया जाना अनिवार्य किया गया था। छठीं शर्त के अनुसार दोनों सरकारों को ही इस सेना का उपयोग करने की स्वतंत्रता थी। लेकिन छोटे-छोटे मामलों, जैसे मालगुज़ारी आदि वसूल करने के लिए इस सेना का उपयोग वर्जित था। इसका तो साफ मतलब यही था कि इस सेना का उपयोग केवल कंपनी ही कर सकती थी, अवध का बादशाह नहीं। वास्तव में यह ब्रिटिश सेना ही थी जो अवध के शासक के व्यय पर रह रही थी। संधि के आधे भाग में इसी प्रकार की कुटिलतापूर्ण नीति का ही परिचय मिलता है। इसी नीति के लिए आवरण यह लिया गया था कि "अवध की सेना पर कम व्यय करके उसे और अधिक सामर्थ्यवान और शक्तिशाली बनाया जा रहा है। संधि का यही भाग विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। सेना पर कुल १६ लाख रुपयों के व्यय की बात इसके सम्मुख गौण है क्योंकि बाद में यह अमान्य घोषित कर दी गयी। इसके अमान्य घोषित कर दिये जाने के संबंध में "पार्लियामेंटरी रिटर्न आफ ट्रीटीज़" में बिल्कुल ठीक ही उल्लेख किया गया है। संधि के दूसरे ही भाग में सन् १८०१ वाली संधि की निरर्थकता प्रदर्शित की गयी है। अतः यह इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकार सन् १८०१ वाली संधि में यह तो कहा गया था कि अवध के शासन को कंपनी के अधिकारियों की सलाह के अनुकूल ही कार्य करना था, लेकिन इसके प्रति उपेक्षा प्रदर्शित करने की दशा में कुछ भी करने का उल्लेख नहीं था। इस प्रकार अवध के शासन में अस्थायी रूप से तो हस्तक्षेप कर ही दिया गया था और अधिकारियों का यह अपहरण उस समय तक न रोका जा सकता था जब तक कि रुपयों का स्रोत पहले वाली दिशा में ही न बहने लगे।

पूर्ववत् मान्य रहेंगी। सन् १८३७ वाली इस संधि की नौवीं सन् १७९८ वाली संधि से जरा भी भिन्न न थी। फिर, यह किस प्रकार से संभव हो सकता है कि इस समय तक १०००० लोगों की सेना भी अवध में न रखी गयी होती? लार्ड डलहौज़ी किस तरह से यह दावा कर सकते हैं कि ईस्ट इंडिया कंपनी ने सन् १८०१ वाली संधि की सभी शर्तें सदैव बड़ी ही 'सच्चाई', पूर्णरूप से पूरी करती रही है? किस प्रकार से पूर्णरूप से पूरी की जाती रही? सन् १७९८ की सातवीं शर्त के अनुसार, जिनके लिए कंपनी बराबर दावा करती रही कि इसकी प्रत्येक शर्त का पालन करती रही है, यदि उसे सेना घटानी ही थी तो नवाब के उस व्यय में भी कमी होनी चाहिए थी, जिसका भुगतान अवध राज्य की ओर से किया जाता था। इसके अतिरिक्त कुछ जिले और भी अवध सरकार को वापस मिल जाने चाहिए थ। लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं किया गया। अतः कंपनी ने संधि की कोई भी शर्त पूरी नहीं की थी।"

लेकिन लार्ड डलहौज़ी केवल इतने से ही संतुष्ट न था। वह कुछ और अधिक शक्ति-शाली कदम उठाना चाहता था। अतः ये सारी शर्तें रद्द कर दी गयीं और नये रूप में प्रस्तुत की गयीं एवं व्यवहार में लायी गयीं। इनका बाद में भी कई बार उल्लेख होता रहा है। इनसे केवल इसी घटना का प्रमाण नहीं मिलता, वरन् इनके गुणों का भी प्रदर्शन होता है। इन नयी शर्तों का उल्लेख निम्नलिखित प्रकार से मिलता है :—

"सातवीं शर्त :—उपर्युक्त संधि की छठीं शर्त के अनुसार अवध के शासन को अपने प्रशासन के अंतर्गत पुलिस, अदालतों एवं मालगुज़ारी वसूल करने में जो खराबियाँ आ गयी हैं, दूर करने का पूरा प्रयत्न करना होगा। इसके अतिरिक्त ब्रिटिश अधिकारियों या उनके प्रतिनिधियों से सलाह लिए बिना यदि वे कोई कार्य करेंगे या जनता में, विद्रोह आदि को रोक पाने में समर्थ न होंगे अथवा (ईश्वर न करे) अत्याचार आदि करेंगे तो ब्रिटिश सरकार को इस बात का पूरा अधिकार होगा कि उनके स्थान पर अपने किसी अधिकारी को नियुक्त कर दे। इस काल में कंपनी को जितना भी मुनाफा होगा, अवध के शासक के खज़ाने में जमा कर दिया जायेगा। हर खर्च का ठीक-ठीक हिसाब-किताब रखा जायेगा और उसकी बाक़ायदा रसीद भी दी जायेगी। ये अधिकारी जितने समय तक या राज्य जितने भी भाग के लिए आवश्यक समझ जायँगे, शासन व्यवस्था राज्य सँभालते रहेंगे।"

आठवीं धारा :—यह भी स्वीकार किया गया है कि यदि सातवीं शर्त के अनुसार गवर्नर जनरल को इस बात के लिए विवश होना पड़ा कि उनका कोई अधिकारी अवध की शासन व्यवस्था सँभाले तो वह अधिकारी जहाँ तक संभव होगा, शासन व्यवस्था के रूप और सिद्धान्तों को उसी प्रकार संचालित करता रहेगा जैसा पहले से होता आया है। जिन प्रदेशों की शासन-व्यवस्था उसके हाथों में होगी वहाँ की प्रगति में किसी प्रकार की रुकावट न आने पायेगी।

नवीं धारा :—अवध राज्य और ब्रिटिश सरकार के बीच हुई सभी संधियाँ पूर्ववत् मान्य रहेंगी।

"नौ शर्तों वाली यह संधि लखनऊ में ११ सितम्बर, १८३७ को स्वीकृत की गयी।"

(हस्ताक्षर) **आकलैंड**
**ए० रास**
**मारिसन**
**ए० शेक्सपियर**

| गवर्नर जनरल की फारसी मोहर |
|---|

"१८ सितम्बर, १८३७ को बंगाल के गवर्नर जनरल द्वारा अनुमोदित की गयी।"

(हस्ताक्षर) **डब्ल्यू० एच० मैक्नेग्टर**
(भारत सरकार के सचिव)

अब तो यह स्पष्ट ही है कि लार्ड डलहौज़ी और गवर्नर जनरल सातवीं और आठवीं धाराओं के हटाने को क्यों इतने उत्सुक थे। अतिरिक्त आय और बची रकमों के प्रति कंपनी ने अपने उद्देश्यों को स्पष्ट करके तत्संबंधी अधिकार शासक को मिल जाने चाहिए थे। उनके उद्देश्यों का सूक्ष्म अध्ययन करने पर हम समझ सकते हैं कि कंपनी के लोग सब कुछ हड़प जाने के लिए कितने प्रबल इच्छुक थे। राज्य से होने वाले धन-लाभ आदि को वे पूरा का पूरा वसूल कर लेना चाहते थे। लेकिन सरकार ने इस योजना का समर्थन नहीं किया कि अतिरिक्त सेना पर होने वाला व्यय-भार अवध के शासक के ही जिम्मे हो। ८ जुलाई, १८३९ को बादशाह के पास यह सूचना भेजी गयी कि सेना का व्यय-भार सरकार स्वयं उठायेगी। यह सूचना लार्ड आकलैंड ने भिजवायी थी। इसी पत्र में बादशाह के शासन काल में होने वाली प्रगति की जी भर कर प्रशंसा भी की गयी है। इस पत्र का अनुवाद निम्नलिखित है :—

गवर्नर जनरल लार्ड आकलैंड का अवध के सम्माननीय शासक मोहम्मद अली शाह के नाम लिखे गये पत्र का अनुवाद जो ८ जुलाई, १८३९ को लिखा गया।

आरंभ में औपचारिक विधि से अभिवादन। तत्पश्चात् "ईश्वर इसी प्रकार आप पर कृपा एवं दया भाव बनाये रखे जिससे आपके पास धन एवं ऐश्वर्य की वृद्धि होती रहे और आपको इसी प्रकार यश एवं सम्मान प्राप्त होता रहे। यह बात आप-जैसे विद्वानों से छिपी नहीं रहनी चाहिए कि काफी समय से मेरे एवं सरकारी परामर्शदाताओं के बीच ११ सितम्बर, १८३७ वाली संधि पर विवाद होता रहा है। यह अनुभव किया जा रहा है कि १६ लाख रुपये वार्षिक (अर्थात् १६०,००० स्टर्लिंग) के भार को आप पर छोड़ देने के कारण आपके राज्य की शासन-व्यवस्था में अनुचित हस्तक्षेप हो रहा है। आपने जब से राज्य की शासन-व्यवस्था करनी आरंभ की है, राज्य की बहुत उन्नति हो रही है। इतनी अधिक उन्नति पहले कभी नहीं हुई। मुझे सरकार की ओर से अधिकार दिया गया है कि **"यदि मैं उचित समझूं तो मैं आपको इसके भार से मुक्त कर दूं। मैं आपको इसकी सूचना भेज रहा हूँ।"**

आशा है आप इसी भाँति निष्पक्ष रूप से न्यायपूर्वक शासन करते रहेंगे और राज्य के हित के लिए सदैव ऐसे ही तत्पर रहेंगे।

मैं हूँ—

(हस्ताक्षर) **"आकलैंड"**

इस पत्र से संम्बंधित एक मनोरंजक घटना भी है। रेखांकित वाक्य जो कि अंग्रज़ी में लिखे गये पत्र की फारसी प्रतिलिपि में दिया गया था, अंग्रेज़ी की मूल प्रतिलिपि वाले

वाक्य से कुछ भिन्न था। यह अनुवाद की भूल थी। मूल प्रतिलिपि के अनुसार यह वाक्य इस प्रकार से था—"मुझे ऐसा आदेश मिला है कि मैं आपको इससे मुक्त कर दूँ।" इसका अर्थ पहले वाले पत्र के वाक्य के अर्थ से कुछ भिन्न है। इसके अनुसार व्यय भार से मुक्त करने वाली क्रिया अपूर्ण थी। इससे 'आज्ञा' के संबंध में स्पष्ट ज्ञान नहीं होता था। इस अशुद्ध अनुवाद का पता चलने पर अवध के बादशाह ने उस पत्र को वापस कर दिया, लेकिन गवर्नर जनरल इस प्रकार की भूलें बार-बार दोहराते रहे। जिसके लिए जो मन में आता लिख देते थे। मूल प्रतिलिपि और उसके फारसी अनुवाद वाली प्रतिलिपि साथ-साथ भेजे जाने की प्रथा लार्ड बेंटिंक के समय से चली आ रही थी, इसी प्रकार से आगे भी चलती रही। अंग्रेज़ी भाषा के व्याकरण के साथ होने वाला यह खिलवाड़ बंद नहीं हुआ।

लेकिन फिर भी किसी प्रकार से बादशाह को संधि की उस जानलेवा शर्त से तो छुटकारा मिल ही गया। लेकिन और शर्तें वैसी की वैसी ही रहीं। उसने अपने राज्य की उन्नति के लिए बड़े-बड़े काम किये। खेती करने एवं किसानों की दशा सुधारने में भी काफी सुधार हुआ। आर्थिक, व्यापारिक, मालगुज़ारी एवं राज्यकरों और अदालतों के सुप्रबंध आदि की दृष्टि से भी काफी सुधार हुए। कई स्कूल, कालेज आदि खोले गये। यात्रियों के लिए विश्राम-गृह बनाये गये और कुछ तालाब, कुएँ आदि भी खुदवाये गये। ख़ज़ाने में धन का अभाव न था। कर्नल लो (जो उस समय लखनऊ में रेजिडेंट थे) को बादशाह की बुद्धिमत्ता के संबंध में पूर्ण विश्वास था। उन्होंने कई बार बादशाह से कहा भी कि हर मामले में उनसे परामर्श लेने की कोई आवश्यकता नहीं है। एकबार उनकी ईमानदारी एवं ब्रिटिश सरकार के प्रति उनकी निष्ठा की परीक्षा भी ले ली गयी। लार्ड एलेनबरो ने १० अप्रैल, १८५६ को अपने निम्नलिखित वक्तव्य में इसके संबंध में कहा था :—

"लार्ड आक्लैंड और उनके राज्य प्रबन्धकों से संबंध स्थापित करने पर और कमांडर इन-चीफ़ ने भी जो समाचार भेजा है उसके अनुसार जब लार्ड आक्लैंड गवर्नर जॅनरल थे, उस समय अवध के बादशाह के साथ उनकी एक वार्ता जो कि निम्नलिखित है, पूर्ण रूप से सत्य है :—

आरगाइल के ड्यूक से लार्ड एलेनबरो के अर्ल ने भी प्रार्थना की कि वह उनसे (लार्ड एलिनबरो से) संबंधित, अवध के बादशाह के हिसाब-किताब की जाँच करलें। उस समय जब उन्हें अफगानिस्तान से वापस बुलवाने के लिए धन की नितांत आवश्यकता थी, उन्होंने इसके लिए बादशाह से याचना की। बादशाह ने १००,००० स्टर्लिंग का ऋण बिना किसी आनाकानी के तुरंत दे दिया।

सन् १८३८ में बादशाह की ओर से कंपनी को १००,००० रुपये का ऋण और दिया गया जिस पर उसे ४ प्रतिशत वार्षिक ब्याज दिये जाने का आश्वासन दिया गया था। सन् १८४२ की ७ मई को उनका देहांत हो गया और उनके स्थान पर उनका बड़ा पुत्र सरयेजाह अमज़द अली शाह गद्दी पर बैठा।

एम० एम० मसीहुद्दीन के कथनानुसार यह भी बड़ा ही योग्य, प्रतिभाशाली शासक था। उसने भी अपने पूर्वजों के पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए अपनी सारी शक्ति ब्रिटिश सरकार से सहयोग एवं मित्रता बनाये रखने में लगा दी। **इसीलिए पंजाब युद्ध में ब्रिटिश सरकार की सहायता के लिए उसने पैदल एवं घुड़सवार सैनिकों की एक भारी संख्या भेजी। ये सैनिक अस्त्र-शस्त्र से भली-भाँति सुसज्जित एवं पूर्ण अनुशासन-बद्ध थे।**[1]

१. "हाउ टु मेक एण्ड हाउ टु ब्रेक ए ट्रीटी" ने इसका विवरण इस प्रकार से लिखा है :—
"उस समय आई० आर० डेबिडसन रेजिडेण्ट थे। पंजाब में युद्ध की संभावनाएँ तभी से भड़कनी शुरू हो गयी थीं। इस भीषण और अनिश्चित मुक़ाबले की तरफ सारा भारतवर्ष बड़ी भयभीत दृष्टि से देख रहा था। ईस्ट इंडिया कंपनी के शत्रु सरकार का तख्ता उलट देने के लिए कुछ भी कर सकने के लिए तैयार बैठे थे। दीनापुर और बनारस उनके षड्यंत्र के प्रबल अड्डे थे। नेपाल तक जाने वाले गुप्त संदेशों के कारण ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थिति दिनों दिन अनिश्चित-सी होती जा रही थी। जनता की भावनाओं में बराबर उफान-सा आता जा रहा था। कंपनी इस दशा से चिंतित थी। अतः अवध की सरकार को देश की स्वतंत्रता की रक्षा करने के लिए कंपनी को सहयोग देने के लिए भी निरंतर भड़काया जा रहा था। यदि अवध ने कंपनी को सहयोग देने के बजाय, उसे उखाड़ फेंकने का थोड़ा-सा भी प्रयास इस समय किया होता तो सैकड़ों वर्ष पूर्व ही ब्रिटिश सरकार का यहाँ से नामोनिशान तक मिट चुका होता। लेकिन अवध ने ऐसा नहीं किया। अवध की ओर से कंपनी को बड़ी खुशी से सैनिक सहायता दी गयी। घुड़सवार एवं पैदल सैनिकों की सारी सेवाएँ कंपनी को अर्पित कर दी गयीं। ये कोरी गप्पें नहीं, वरन् सर्वविदित यथार्थ घटनाएँ हैं। यदि लॉर्ड हेस्टिग्ज में, उस महानता का, जिसका कि हम वर्णन करते अघाते नहीं हैं, थोड़ा-सा भी अंश होगा तो वह अवध के इस समय के आचरण से अभिभूत हुए बिना नहीं रहेगा।" लेखक यह भली-भाँति जानता था कि इस अपील का उत्तर दिया जाना असंभव है। इस अवसर पर मंत्री नवाब अमीनुद्दौला को धन्यवाद का एक पत्र प्राप्त हुआ।

लखनऊ के यूरोपीय निवासियों के अनुरोध पर उन्हें गिरजाघर बनवाने के लिए आवश्यक भूमि एवं आवश्यक सामग्री भी सहायतारूप में प्रदान की गयी। इसी बीच ब्रिटिश सरकार ने एक अवध फ्रंटियर पुलिस दल की माँग की। इस पुलिस दल को रेजिडेंट के निर्देशानुसार एवं ठगी-डकैती कार्यालय के एक अधिकारी के अधीन रहना था। इस दल में पैदल पुलिस की चार कंपनियाँ थीं और दो जत्थे घुड़सवार पुलिस के थे। हर जत्थे में ५० घुड़सवार थे। उस समय से इतने बड़े पुलिस दल का खर्च अवध सरकार ही उठाती रही। इस दल का संगठन करते समय अवध सरकार ने ब्रिटिश अधिकारियों की नियुक्ति किये जाने का जरा भी विरोध नहीं किया। अवध सरकार ने इतना भी न कहा कि ऐसा करना सन् १८०१ की संधि के अनुसार अवैधानिक है। इस संधि के उल्लंघन का विरोध न किये जाने से लार्ड डलहौज़ी-जैसे लोगों को अन्य संधियों का उल्लंघन करने का प्रोत्साहन मिला। अवध सरकार, विरोध करना तो दूर रहा, उल्टे मुँह-माँगी सहायता करती रही। १३ फरवरी, १८४७ को इस सच्चरित्र एवं उदार शासक की मृत्यु हो गयी। इसकी प्रशंसा भारतवासी ही नहीं, वरन् अंग्रेज़ भी करते थे। अब इस रिक्त स्थान की पूर्ति सम्माननीय मोहम्मद वाजिद अली शाह ने की और शासन-व्यवस्था सँभाल ली। मोहम्मद वाजिद अली शाह के द्वारा ही हम वर्तमान समय की पृष्ठभूमि का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। इस इतिहास के अंतिम कुछ दृश्यों का परिचय भी हम प्राप्त कर लेंगे।

## अध्याय ६

## कंपनी के अनुशासनों का अर्थ, उनका विप्लवीकरण क्यों तथा किसने किया—इन विषयों पर यथासंभव प्रकाश।

अवध के वर्तमान बादशाह के शासन काल में पूरी डकैती हुई थी। इस कुकृत्य की प्रारंभिक घटनाओं पर अब तक हमने प्रकाश डाला है। डकैती किस प्रकार से डाली गयी और उसका परिणाम क्या निकला यह तो हम बाद में देखेंगे, लेकिन इसको उचित ठहराने के लिए जो उपाय गढ़े गये—कुछ अधिकारियों की शिकायत पर आधारित, वही अवध राज्य की शासन-व्यवस्था के कुप्रबंध की शिकायतों का घिसा-पिटा बहाना—उसे हम आगे बताना उचित समझते हैं। इन शिकायतों का उल्लेख लार्ड डलहौज़ी के १८ जून, १८५५ वाले 'मिनिट' में मिलता है। लेकिन वे विस्तार से नहीं लिखी गयी हैं और न यही उल्लेख मिलता है कि वे किस ऐतिहासिक संदर्भ के अंतर्गत लिखी गयी हैं। पिछले ऐतिहासिक विवरणों से वे ज़रा भी मेल नहीं खातीं, वरन् बाद में अलग से सम्मिलित की गयी मालूम देती हैं। उदाहरण के लिए, कैप्टेन शेक्सपियर के मतानुसार अवध राज्य में अपराध और हिंसा का उतना ज़ोर न था जितना उन भागों में था जो ईस्ट इंडिया कंपनी के आधीन थे। कैप्टेन शेक्सपियर ने ही डेविड्सन को रेजिडेंट पद के लिए चुना था। वे सरकारी सेवा में बराबर पदोन्नति भी पाते रहे थे, अतः उनका दृष्टिकोण कंपनी के अन्य अधिकारियों की अपेक्षा अधिक व्यापक था। इसलिए इनके मत को प्रामाणिक माना जायगा। २९ मई, १८४६ के एक प्रमाण के अनुसार श्री डेविड्सन बड़े ही भले एवं सम्मानित व्यक्ति थे। उन्होंने बड़ी कुशलता से अपना शासन भार सँभाला। यह प्रमाण उनके उत्तराधिकारी की ओर से दिया गया था जो आजतक प्रकाशित नहीं किया गया। डेविड्सन का स्थान कर्नल रिचमंड की रेजीडेंसी के समय में अवध के वर्त्तमान शासक केवल २५ वर्ष की आयु में ही राजगद्दी पर आसीन हुए। कर्नल रिचमंड नवाब के बड़े ही विश्वासपात्र अधिकारियों में से थे, यद्यपि शासन-प्रबंध के विषय में उन्हें ज़रा भी अनुभव न था। कई समस्याओं पर नवाब और इस अधिकारी के बीच मतैक्य नहीं हो सका। फिर भी, दोनों के बीच के संबंधों में किसी तरह का मनोमालिन्य न आने पाया। लार्ड हार्डिंग ने सन् १८४७ में एक बार यहाँ आने पर उनके काम पर बड़ा ही संतोष प्रकट किया था। इस प्रमाण से यह स्पष्ट निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि लार्ड डलहौज़ी के निराधार आरोपों में ज़रा भी दम नहीं है। रेजिडेंट और गवर्नर जनरल के द्वारा

इसी प्रकार के झूठे आरोपों के उद्धरणों की लम्बी शृंखला से ही इसका खंडन किया जा सकता है। यह खंडन दो तरह से हो सकता है। एक तो यह कि इन आरोपों को हम उनके स्पष्टीकरण के साथ-साथ देखें और दूसरा यह कि अधिक प्रामाणिक सूत्रों के द्वारा उनका सीधा खंडन किया गया हो। वास्तव में अवध के शासन-कुप्रबंध की बात सर्वथा अप्रामाणिक थी। तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत कर सकने की इतनी सामर्थ्य डलहौज़ी के माक्विस-जैसे कूटनीतिज्ञों में ही हो सकती हैं।

उदाहरण के लिए निम्नलिखित पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं। जिनमें उन्होंने जो निष्कर्ष निकाला है, सारांश रूप में मिल जाता है :—

"सन् १८३९ से सन् १८४७ तक एक के बाद एक तीन शासक अवध के सत्ताधिकारी रूप में आये। उन्हें बराबर सच्ची सलाहें तथा चेतावनियाँ दी गयीं, केंद्रीय सरकार द्वारा बारबार कहा गया। फिर भी, इस वर्ष की दशा पहले से किसी प्रकार अच्छी नहीं थी।"

यह हम पहले ही बता चुके हैं कि लार्ड आकलैंड ने अवध के बादशाह की बड़ी प्रशंसा करके उन्हें सम्मानित किया था। क्योंकि "उनके शासन-काल में अवध की दशा में पहले की अपेक्षा पर्याप्त उन्नति" हो रही थी। इन सब प्रमाणों को ध्यान में रख कर लार्ड डलहौज़ी के अनर्गल प्रलाप पर कौन विश्वास करेगा? यदि यह भी मान लिया जाय कि समय-समय पर भर्त्सना भी की जाती रही तो भी इनका विशेष महत्त्व नहीं क्योंकि इनमें गाली-गलौज अधिक है, मतलब की बात कम! इस तरह की झूठी निंदा किये जाने का सबसे सीधा-सादा उत्तर तो यह है कि थोड़ी देर के लिए यदि मान भी लिया जाय कि अवध का राज्यप्रबंध बड़ा ही असंतोषजनक था जिसके कारण सन् १८३७ वाले संधिपत्र को तैयार करने के लिए सरकार को बिवश होना पड़ा, तो भी कोई यह तो बताये कि अवध के किसी भी शासक ने जब-जब भी अपने को सरकार की मर्जी के मुताबिक बनाने की कोशिश की तो सरकार ने उसके साथ कितना सहयोग किया? सरकार ने कभी इस दिशा में रत्ती भर भी सहयोग नहीं दिया। सरकार तो सहायता करने से इस तरह कतराती रही जैसे कोई पागल कुत्ता पानी देख कर। क्या सरकार का यह व्यवहार किसी भी प्रकार उचित कहा जा सकता है। लॉर्ड वेलेज़ली और दूसरे गवर्नर जनरलों के इक-रारनामों को एक किनारे रख दिया गया। अवध के लोगों के सरकार पर कई एहसान थे। मगर सरकार ने वे सबके सब भुला दिये। स्वार्थसिद्धि के लिए अपनी विश्वबंधुत्व की योजना भी सरकार भुला बैठी। उसे तो केवल रुपये बटोरने से काम था। इससे साफ पता चलता है कि सरकार का उद्देश्य केवल लूट मचाना था। अवध के लोगों में उसकी कोई भी दिलचस्पी न थी। क्या लार्ड डलहौजी का यह आचरण मानवता की दृष्टि से गिरा हुआ नहीं कहा जायगा?

सन् १८३१ में इसी प्रकार एक बार फिर लॉर्ड विलियम बेंटिंक ने अवध के नवाब के पास उनकी भर्त्सना से परिपूर्ण एक पत्र भेजा था। लार्ड डलहौज़ी ने इसका उल्लेख 'अवध ब्लू बुक १८५६ पृष्ठ १५५' पर किया है। लेकिन वह पक्षपात करने से नहीं चूका। हमें यह तो पता चलता है कि लार्ड बेंटिक ने सुधारों की माँग की थी, लेकिन यह कहीं नहीं लिखा कि जब नवाब के मंत्री हकीम मेंहदी ने सुधारों के कार्यान्वित किये जाने का प्रयास करना चाहा और रेजिडेंट से इसके लिए सहयोग की माँग की तो अपने सुधार किये जाने वाले उपदेशों का थोड़ा ध्यान भी न रखते हुए रेजिडेंट ने साफ इनकार कर दिया। गवर्नर जनरल[1] ने भी उसी की हामी भर दी। इसी प्रकार जब वर्तमान नवाब ने राज्यभार सँभाला तो अपने राज्य की उन्नति के लिए सेना को नये ढँग से व्यवस्थित करने की आवश्यकता अनुभव की। इसके लिए कुछ पुराने अनुभवी और कुछ नये सैनिकों की भर्ती होनी आवश्यक थी। उनको अनुशासन में रखने एवं देख-रेख व्यक्तिगत रूप से करने का आश्वासन भी दिया गया था, लेकिन पता लगा कि भारत सरकार को यह बिल्कुल पसंद नहीं। अतः इस योजना को यहीं स्थगित कर देना पड़ा। इससे भी अधिक प्रभावशाली उदाहरण, जो कुछ इसी प्रकार का ही है, हम विस्तार से दे रहे हैं। इसका संबंध लार्ड हार्डिग के द्वारा दी गयी चेतावनी से है।

लार्ड डलहौज़ी ने अपने 'मिनिट' में (अवध ब्लू बुक, १८५७, पष्ठ १५६ में) उपर्युक्त निंदा का बड़े ही अस्पष्ट रूप से उल्लेख किया है। यदि उसे पूर्ण विश्वास होता तो वह साफ-साफ लिखता कि हार्डिग द्वारा की गयी भर्त्सना सन् १८३७ की संधि के अनुसार ही थी। जब लार्ड हार्डिज पंजाब से सन् १८४७ में लौटा तो लखनऊ भी गया। और इन सब घटनाओं का उल्लेख करते हुए अवध सरकार की फिर से भर्त्सना की। नवाब पर आरोप लगाया गया कि कई बार चेतावनी देते रहने पर भी राज्य की व्यवस्था में कोई सुधार नहीं किया गया। इस सुधार के लिए नवाब के पास सरकार ने न तो कोई सुझाव ही भेजे थे और न कोई योजना ही निर्धारित की थी। अतः यदि उनकी निंदा और चेतावनियों के अनुसार काम नहीं किया गया तो उसका उत्तरदायित्व सरकार पर ही है। यदि सरकार ने कोई सलाह दी होती और नवाब उसकी उपेक्षा कर देता तब तो उसे दोषी समझा भी जाता। इसके विपरीत नवाब की ओर से भारत सरकार से सहयोग करने के अनेक सुझाव समय-समय पर रखे जाते रहे। इन सुझावों को रेजिडेंट और लेफ्टिनेंट गवर्नर का अनुमोदन भी प्राप्त हो गया, लेकिन अंत में गवर्नर जनरल ने अस्वीकार कर दिया। अब बताइए लॉर्ड डलहौज़ी के आरोपों का सिर-पैर हम कहाँ ढूंढ़ेंगे?

१. देखिए, मिल, ९, पृष्ठ ३७३।

लार्ड हार्डिंग के २३ नवम्बर, १८४७ वाले पत्र में, जिसका हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं, अवध के नवाब को चेतावनी दी गयी थी। सन् १८४८ में नवाब ने अपने मंत्री अली नक़ी खाँ के द्वारा एक नयी योजना का सुझाव ब्रिटिश रेजिडेंट के पास भिजवाया। इस योजना के अनुसार नवाब ने राज्य-संचालन की ब्रिटिश प्रणाली को अपनाने का निश्चय किया था। प्रयोग के रूप में इसे उन भागों पर लागू करने का विचार किया गया था जो ब्रिटिश सीमा से मिले हुए हैं। इस सुझाव को रेजिडेंट कर्नल ने मान लिया। स्वीकृति के लिए इसे कर्नल रिचमंड ने अपने सहकारी मेजर (उस समय कैप्टेन) बर्ड को नवाब के हस्ताक्षर लेने के लिए आगरा भेजा। इसका उद्देश्य यह भी था कि उत्तर-पश्चिमी प्रांतों के लेफ्टिनेंट गवर्नर थामसन से व्यक्तिगत रूप से संपर्क स्थापित किया जा सके और नवाब की इस योजना के संबंध में उनसे सलाह ली जा सके। कैप्टेन बर्ड ने नवाब की इच्छा के अनुसार कुछ प्रस्ताव तैयार करके थामसन के पास भेज दिये। थामसन ने इस पर खूब सोच-विचार किया, इसकी प्रशंसा की और इसे व्यावहारिक रूप देने का प्रयत्न किया और इसके कार्यान्वियन प्रणाली इत्यादि के लिए कुछ आवश्यक मापदंड निर्धारित किये। कैप्टेन बर्ड इसे लेकर लखनऊ लौटे और नवाब के मंत्री को सौंप दिया। नवाब ने इस योजना को पसंद करके इस पर अपनी स्वीकृति दे दी। लेकिन रेजिडेंट कर्नल रिचमंड ने इसे सरकारी रूप से नवाब को देने से पहले गवर्नर जनरल की अनमति ले लेने की सोची। अतः यह प्रस्तावित योजना सरकार के विदेश-विभाग के सचिव सर हेनरी इलियट, सी० बी० के पास कलकत्ता भेजी गयी। जानते हैं इसका क्या हाल हुआ? वहाँ इसे अस्वीकृत कर दिया गया। उत्तर में कहा गया कि "यदि नवाब अपना संपूर्ण राज्य ब्रिटिश सरकार को सौंप देते तब इस पर कुछ विचार भी किया जा सकता था, लेकिन राज्य के थोड़े-से भाग के लिए इतनी परेशानी मोल लेना बेकार है।" नवाब मंत्री, मेजर बर्ड, कर्नल रिचमंड और थामसन सभी लोगों को इस प्रकार अँगूठा दिखा दिया गया। इतने लोगों से स्वीकृत हो जाने के बाद भी नवाब की योजना को अंत में ठुकरा दिया गया। स्वीकृत न होने पर भी मेजर बर्ड ने इसे अपने पास दबाये रखा। बाद में सन् १८४९ में इसकी सूचना जनरल (उस समय कर्नल) स्लीमैन को दी तो गयी लेकिन तब तक लार्ड डलहौज़ी के आरोपों का उत्तर देने का समय कब का निकल चुका था।

अब पाठकों के मन में ज़रा भी संदेह नहीं रह गया होगा कि नवाब वास्तव में अपने ब्रिटिश कंपनी के मित्रों की इच्छानुसार चलने के लिए कितना अधिक इच्छुक था। इस योजना का विस्तार से वर्णन किया जा रहा है जिसमें थामसन की टिप्पणी एवं अवध राज्य की सीमाओं से संबंधित प्रश्न और उनके उत्तरों का भी उल्लेख मिल जाता है। इस विस्तृत

वर्णन को साधारणतः ग्रहण नहीं किया जायगा, लेकिन इससे यह तो पता चल ही जायेगा कि नवाब का यह सुझाव कितना तर्क-संगत था कि यह प्रयोग केवल अपने अधीन थोड़े-से भागों पर ही करके देखेगा और सफलता मिलने पर सारे राज्य में लागू कर देगा। नवाब के लाख सिर मारने पर भी सर्वोच्च अधिकारी के कानों पर जूं तक न रेंगी। यह प्रयोग सदैव के लिए रोक दिया गया। अतः इस प्रयोग का उपसंहार इन्हीं प्रस्तावों में समझ लेना चाहिए :—

## प्रस्ताव

सन् १८४८ में असिस्टेंट रेज़िडेंट कैप्टेन आर० डब्ल्यू० बर्ड ने रेज़िडेंट कर्नल रिचमंड के निर्देशानुसार इनकी रचना की और सम्माननीय वाजिद अली शाह ने स्वीकार किया। अवध के कुछ भागों पर ब्रिटिश शासन-प्रणाली लागू करने के लिए नवाब की ओर से भारत के उत्तर-पश्चिमी प्रान्तों के गवर्नर श्री थामसन से सलाह लेने के लिए ये प्रस्ताव उनके पास भेजे गये। थामसन की टिप्पणियों एवं उत्तर आदि का विवरण निम्नांकित है :—

| थामसन की टिप्पणियाँ | प्रस्ताव |
|---|---|
| दो प्रांतों के क्या मानें? अधिक से अधिक २० या ३० लाख रुपये की आमदनी वाली ज़मीन। मेरी समझ में यह स्थानान्तरण अस्थायी होगा। | ब्रिटिश सीमाओं से मिले हुए दो प्रान्तों को बादशाह की अनुमति से रेजिडेंट के संरक्षण में रखा जाय। |
| | करों की वसूली एवं राज्य-संचालन के लिए निम्नलिखित पदाधिकारियों को इन जिलों के लिए नियुक्त करने दिया जाय—सुपरिंटेंडेंट पद के लिए ७०० रुपये पर एक यूरोपियन अधिकारी। कार्यालय की स्थापना के लिए १०० रुपये। |
| अच्छा हो यदि उसे एक सहकारी माना जाय। प्रत्येक विभाग में उसे हस्तक्षेप कर सकने का अधिकार हो। | प्रत्येक चार या पाँच लाख रुपयों के करों की वसूली के लिए ३०० रुपये पर एक डिप्टी कलेक्टर और दफ्तर खर्च के लिए १०० रुपये। |
| | करों को न्यायोचित रूप से निर्धारित करने के लिए ये डिप्टी-कलेक्टर अपने अधिकृत प्रत्येक गाँव में जायँ और वहाँ |

| थामसन की टिप्पणियाँ | प्रस्ताव |
| --- | --- |
| | कानूनगो को बुलवाकर पता लगायें कि पिछले सात वर्षों से कौन व्यक्ति कितना कर देता आ रहा है और वह उस संबंध में संतुष्ट है या नहीं ? |
| कर के निर्धारण का मामला इतना नाज़ुक है कि उसे पंचायत पर नहीं छोड़ा जा सकता । | यदि कर के कुल रुपयों के विषय में कोई संदेह उठ खड़ा हो तो उसके निर्णय के लिए गाँव के पाँच सर्वाधिक सम्मानित व्यक्तियों की पंचायत बना कर लिया जाय । यह पंचायत तुरंत ही बना ली जाया करे और दूसरे ही दिन भंग कर दी जाया करे । |
| | पंचायत के सदस्यों के नाम डिप्टी कलेक्टर पंजीबद्ध करें । |
| सहकारियों के द्वारा पट्टे दिये जा सकते हैं। वे रजिस्टर सुपरिंटेंडेंट के पास भेजे जा सकते हैं और उनकी अनुमति ली जा सकती है । | सुपरिंटेंडेंट की अनुमति के बिना विवादग्रस्त क़बूलियत न मानी जाय । |
| यह अधिकार प्राप्त करना बहुत आवश्यक है, लेकिन मैं यह अपेक्षा नहीं करता हूँ कि जमीन और गाँव के अधिकारों या हिस्सेदारों की जाँच करने के लिए सामान्य रूप से कोई कदम उठाया जाय । | डिप्टी कलेक्टरों को ज़मीनों की नाप रखने का पूरा अधिकार हो । उन्हें यह भी अधिकार हो कि वे उस गाँव या जमीन की हिस्सेदारी, मिल्कियत अथवा चुकाये जाने-वाले करों के विषय में कोई भी सूचना प्राप्त कर सकें । |
| ये भी बेकार है । यह तो उन्हीं जगहों के लिए लाभकारी हो सकती है जहाँ पर अधिकारों की उचित एवं स्पष्ट रूप से व्याख्या की गयी हो और लोग उन्हें भली भाँति समझते हों । | कबूलियत यदि समाप्त न हुई हो तो भंग न की जाय । लेकिन यदि कोई जमींदार, डिप्टी कलेक्टर या सुपरिंटेंडेंट के द्वारा न्यायोचित ठहरायी गयी रकम देने से इनकार करे तो उसका गाँव या हिस्से के गाँव नीलाम कर दिये जायँ । |

| थामसन की टिप्पणियाँ | प्रस्ताव |
| --- | --- |
| | इस नीलाम में सबसे ऊँची बोली की रकम यदि उससे कम हो जो डिप्टी-कलेक्टर या सुपरिंटेंडेंट के द्वारा निर्धारित की गयी हो तो भी सबसे ऊँची बोली लगाने वाले को उसे लेने का अधिकार हो या फिर जमींदारी या हिस्सेदारी के दस प्रतिशत भाग का अधिकार जो उसके नानकार होने के कारण उसे मिलना चाहिए दे दिया जाय। |
| इस दशा में वर्तमान कानून को मानना ही ठीक रहेगा, चाहे अच्छा हो या बुरा। | गाँव के मालिक या हिस्सेदार को अपनी नानकार वाली ज़मीन भी रखने का अधिकार दिया जाय। इस ज़मीन पर गाँव या हिस्से के पट्टे के अतिरिक्त कोई कर अलग से न लिया जाय। बदले में दी गयी ज़मीन का निर्धारण डिप्टी कलेक्टर सुपरिंटेंडेंट की अनुमति से करे। |
| इतना तो लोग स्वयं ही समझते हैं। इसका प्रबंध वे आपस में अपने आप कर सकते हैं। | अगर किसी गाँव में कई हिस्सेदार हैं तो वे किसी एक व्यक्ति को कर की कुल रकम चुकाने के लिए नियुक्त कर सकते हैं। लेकिन इन हिस्सों की डिप्टी-कलेक्टर ने स्पष्ट व्याख्या की हो और सुपरिंटेंडेंट को स्वीकार्य हो। |
| सब जगहों के कर-निर्धारण का लेखा-जोखा रखने के लिए एक रजिस्टर ही रहेगा। कानूनगो अपना अलग रजिस्टर बनायें। | कर-निर्धारण वाले कागज़ों की एक प्रति कानूनगो के पास, दूसरी डिप्टी-कलेक्टरों के पास, और तीसरी सुपरिंटेंडेंट के पास रहे। आवश्यकता होने पर सुपरिंटेंडेंट उन्हें रेजिडेंट के द्वारा अवध सरकार के सामने पेश कर दे। |
| पट्टा और क़बूलियत के रूप को और अधिक सरल बनाया जा सकता है। कुल माँग को एक स्थान पर जोड़कर दिखाया जाय। | क़बूलियत, इकरारनामा और किश्तबंदी के वर्तमान नियमों के स्थान पर, |

| थामसन की टिप्पणियाँ | प्रस्ताव |
|---|---|
| | क़बूलियत से तीनों अभिप्राय लिये जाया करें—यह मालगुजारी के सम्बन्ध में जमींदार की ओर से इकरारनामा होगा कि वह किसानों को लूटने या तंग करने का अधिकारी नहीं और न उनकी ज़मीन छीनेगा। इसमें यह भी उल्लेख हो कि किश्त की रकम कितनी है और कब दी जाती है। कर-निर्धारण वाले कागज़ों में हर गाँव या हिस्से का निम्नलिखित क्रम के अनुसार विवरण दिया जाय:— |
| इसे करना न तो बहुत आवश्यक है, और न आसानी से संभव ही है। | गाँव या हिस्से की संख्या, जमींदार का नाम, कर की कुल रकम, किश्त की अवधि। इसे प्रत्येक ज़िले के डिप्टी-कलेक्टरों को अपने ज़िले के उपभागों की पुस्तिकाओं में भी अंकित करना चाहिए। |
| मैंने उन्हें दीवानी और फौजदारी के मुकदमों के सभी अधिकार दे दिये हैं। उन्हें दो साल कैद की सज़ा दे सकने और हर मामले की अपील कर सकने का अधिकार भी है। दीवानी के मुकदमों के निपटारे के लिए पंचायतों का उपयोग किया जा सकता है। रेज़िडेंट या नवाब की अनुमति सिर्फ फाँसी वाले मुकदमों के लिए ही ली जानी चाहिए। | डिप्टी-कलेक्टरों को कर वसूल करने के साथ ही अन्य सभी विभागों में हस्तक्षेप का अधिकार रहेगा। ठगी, डकैती और हत्याओं के मामलों से निपटने के लिए अवध फ्रंटियर पुलिस-दल की स्थापना की जा चुकी है। अतः इनसे वे मुक्त रहेंगे। डिप्टी-कलेक्टरों को अपने निर्णयों को सुनाते समय कुछ नियमों का भी पालन करना होगा, जिसकी स्पष्ट व्याख्या बाद में की गयी है। वे अपनी सारी कार्रवाई का विवरण सुपरिंटेंडेंट को दिया करेंगे जो उन्हें रेज़िडेंट तक पहुँचा देगा। रेज़िडेंट इनकी सूचना नवाब के दरबार में भेजेगा। |

| थामसन की टिप्पणियाँ | प्रस्ताव |
|---|---|
| | डिप्टी कलेक्टरों के किसी भी फैसले पर, जिस पर सुपरिंटेंडेंट की अनुमति ली जा चुकी हो नवाब के अधिकारियों को आपत्ति करने का अधिकार नहीं होगा। रेजिडेंट के सम्मुख अपील की जा सकती है। इस दशा में रेजिडेंट का निणय ही अंतिम निर्णय होगा। |
| | सुपरिंटेंडेंट को यह अधिकार होगा कि रेजिडेंट से अनुमति लेकर वह किसी भी मुकदमे को नये सिरे से शुरू करवा सकता है और उसके फैसले में हस्तक्षेप कर सकता है। |
| | अवध फ्रंटियर पुलिस की तरह से ही डिप्टी कलेक्टरों के पास ५०० व्यक्तियों का एक पुलिस दल होना चाहिए जो सुपरिंटेंडेंट के अधीन हो। |
| मैं इसे नहीं रोक सकता क्योंकि इन्हें असुरक्षित छोड़ देने पर डकैतियाँ बढ़ने लगेंगी। | किसी भी जमींदार को सशस्त्र पुलिस रख सकने का अधिकार नहीं दिया जायगा। |
| यहाँ पर थोड़ा-सा ध्यान देने की आवश्यकता है। इस प्रकार के करों को उनका अधिकार माना जाता रहा है। बिना मुआवजा के इन सुविधाओं को उनसे छीन लेना बड़ा भारी अपराध होगा। | जमींदारों की ओर से संपत्ति पर व्यक्तिगत रूप से लगाये गये करों और उनकी जमीनों से होने वाले व्यापार की पूरी मनाही रहेगी और इन अपराधों के लिए डिप्टी-कलेक्टरों को सजा दे सकने के अधिकार दिये गये हैं। |
| | इस संबंध में यदि कोई भी जमींदार कानून को अपने हाथ में लेने की कोशिश करे तो दंड स्वरूप उसकी सारी जमींदारी छीन ली जायगी तथा उस पर जुर्माना करके जेल भेज दिया जायगा। |

| थामसन की टिप्पणियाँ | प्रस्ताव |
| --- | --- |
| | सुपरिंटेंडेंट, डिप्टी कलेक्टरों और सिपाहियों की तनख्वाहें नवाब की सरकार, शाही खजाने से हर महीने सुपरिंटेंडेंट को दिया करेगी। सुपरिंटेंडेंट को इसकी रसीद देनी पड़ेगी। |
| पिछले किये गये भुगतानों, कानूनगो लोगों के द्वारा अनुमानित धनराशियों के लेखे-जोखे से और उन स्थानों पर सार्वजनिक रूप से जाँच करके बड़ी आसानी से इनका निर्धारण किया जा सकता है। | प्रांत के काश्तकारी वाले भागों के करों को ठीक-ठीक निर्धारित करने के लिए कौन-से साधन सर्वोत्तम रहेंगे? |
| दो बार नाप करने की जरूरत नहीं है। क़बूलियत और पुराने लेखे-जोखे ही मान्य रहेंगे। | क्या जमीन के क्षेत्रफल को दोबारा नापना अधिक अच्छा रहेगा या नवाब के अधिकारियों वाली नाप-जोख ही विश्वसनीय समझी जायगी? |
| इन्हें बीघों में ही रहने दिया जाय। जब तक स्थायी रूप से ब्रिटिश-प्रणाली न लागू की जाय एकड़ों का उल्लेख नहीं होना चाहिए। | क्या इनकी नाप एकड़ों में करना ठीक होगा जब कि पड़ोसी जिलों में बीघों में की गयी है? |
| पुराने इकरारनामों के प्रति सम्मान रखते हुए उनके समाप्त हो जाने पर नये तैयार किये जाने चाहिए। इनमें अधिक से अधिक शुद्धता लाने का प्रयास करना चाहिए। | पुरानी क़बूलियत समाप्त करके उसके स्थान पर नयी शुरू की जायगी। क्या इन्हें उस इकरारनामे के अनुसार तैयार किया जाय जिस पर जमींदारों ने सहमति प्रकट की थी? अथवा वर्षों की संख्या के आधार पर अनुमान लगाकर इन्हें तैयार करना अधिक अच्छा रहेगा? |
| स्थानीय चलन के अनुसार दो, तीन या चार परगने। पाँच और दस लाख के बीच हर कलेक्टर को सौंपा जाय। उसकी तनख्वाह ३०० स्टर्लिंग प्रतिमास स्थिर कर दी जाय और बराबर उसे मिलती रहे। | प्रत्येक डिप्टी कलेक्टर को अधिक से अधिक कितने कर का भार सँभालने दिया जाय? एकत्र धनराशि के अनुसार उनकी औसत तनख्वाह क्या हो? |

| थामसन की टिप्पणियाँ | प्रस्ताव |
|---|---|
| जहाँ जैसी स्थिति हो पुलिस की संख्या उसी के अनुसार रहे। शान्ति वाले भागों में कम और अशांत भागों में अधिक पुलिस की आवश्यकता होगी। | करों के वसूल करने के लिए हर डिप्टी-कलेक्टर के पास कितना पुलिस दल रहे ? |
| वही विधि जो आजकल काम में लायी जा रही है। हमारे गणक अपने काम में काफी कुशल हैं। उनकी कार्य-प्रणाली में कोई उन्नति संभव नहीं। हाँ, थोड़ा बहुत संशोधन हो सकता है। | करों का ठीक-ठीक हिसाब-किताब रखने के लिए सबसे सरल विधि कौन-सी रहेगी ? |
| गाँवों का मौजों के हिसाब से विभाजन कर लिया जाना चाहिए। यद्यपि कई गाँव ऐसे होंगे जो एक ही व्यक्ति के अविकार में होंगे। बहुत थोड़े-से गाँव ही ऐसे होंगे जो कई भागों में विभाजित हों। | केवल गाँव की ही गणना कर लेना पर्याप्त होगा या हर गाँव के हर हिस्से की अलग गणना की जाय ? |
| उनके प्रतिनिवियों द्वारा भुगतान करने वाली प्रणाली ही अधिक अच्छी रहेगी। | क्या जमींदारी के हर हिस्से का मालिक अपना भुगतान कलेक्टर के पास सीधे ही नहीं कर सकता ? |
| इस दशा में पुराना चलन ही मानना चाहिए। ऐसे लोगों को नानकार की अनुमति नहीं देते। | यदि कोई जमींदार कर्ज से लद जाने के कारण गाँव किसी दूसरे व्यक्ति के अधीन कर देता है तो वह कितने प्रतिशत नानकार रख सकता है ? |
| यह परिस्थितियों पर निर्भर करता है। यदि वह ऋण की सारी रकम चुका देता है तो सामान्यतः उसे पुनः स्थान दे देना अच्छा रहेगा। | क्या कोई जमींदार जो ऋणी हो जाने के कारण एक बार हटाया जा चुका हो, तत्कालीन कबूलियत समाप्त हो जाने पर अपनी जमींदारी फिर से प्राप्त कर सकता है ? |
| सरहदों के संबंध में पंचायतों का निर्णय सबसे अच्छा रहेगा। लेकिन पंचायतें | क्या जमींदारी की सरहदों का निर्णय जमींदारों पर छोड़ा जा सकता है ? |

| थामसन की टिप्पणियाँ | प्रस्ताव |
|---|---|
| उतना ही हस्तक्षेप करें जितना शान्ति बनाये रखने के लिए आवश्यक हो। | |
| इसे अधिक से अधिक सरल रखा जाय जिससे सामान्य जन भी उसे समझ सकें और वह मानवता की दृष्टि से भी उचित हो। | इस संबंध में सजाओं का निर्णय करने के लिए अलग से कोई कानून बनाना अधिक अच्छा होगा या वर्तमान कानूनी प्रशासन के ऊपर ही इन्हें छोड़ दिया जाय ? |
| मेरे विचार से इसे न रखना ही उचित होगा, क्योंकि एक तो यह बेकार ही है और दूसरे खर्च भी इसमें अधिक है। | क्या जमींदारों को सशस्त्र दल रखने की अनुमति दी जानी चाहिए ? |

इतने जटिल विस्तार के पश्चात् हमें इस परिच्छेद से कुछ निष्कर्ष निकालने का प्रयास करना चाहिए। हमने देखा कि अवध के विषय में कितनी गलत बातें कही गयीं और झूठे आरोपों की तो गिनती ही नहीं। आइए अब उन लोगों के विषय में कुछ बताया जाय जिन्होंने इन घटनाओं के उपसंहार की रचना में योगदान दिया। इसमें कर्नल स्लीमैन की श्रेणी में अग्रगण्य लोगों के नाम आते हैं।

## अध्याय ७

## कर्नल ( स्लीमैन ) अवध के अपहरण के मूल साधन के रूप में

कर्नल स्लीमैन सन् १८४९ में रेजिडेंट नियुक्त किया गया। इसकी नियुक्ति से अवध का भविष्य अंधकारमय हो गया। कर्नल स्लीमैन को अवध की जाँच करके विवरण तैयार करना था। लेकिन उसके अवध में आने के पहले ही विवरण तैयार किया जा चुका था। जाँच करने का दावा तो अवश्य किया जाता रहा, लेकिन तथ्यों का खंडन करने के लिए उसे पहले से ही आदेश दे दिये गये थे। यहाँ पर एक बहुत ही गंभीर दोषारोपण किया गया है, लेकिन इस परिच्छेद से इसकी सत्यता प्रमाणित हो जायगी।

कर्नल स्लीमैन एक योग्य एवं उत्साही अधिकारी था। उसने पूरे चालीस वर्ष तक भारत सरकार की सेवा की। इस बीच अपराधों, ठगी और हत्याओं की जो बाढ़ आयी हुई थी, कर्नल स्लीमैन द्वारा बड़ी सफलतापूर्वक दमन कर दी गयी। यह कार्य किसी साधारण आदमी के वश के बाहर का था। वह बड़ी जिज्ञासु प्रकृति का था। बड़े से बड़े अपराधी का उसकी दृष्टि से बच निकलना यदि असंभव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य ही था। बड़े षड्यंत्रों का पता लगाने के लिए उसी को नियुक्त किया जाता था। लेकिन अवध की जाँच के सिलसिले में खुली और निष्पक्ष जाँच करना उसके लिए असंभव बना दिया गया। उस पर हर समय कड़ी निगरानी रखी जाती थी। किसी से भी गुप्त रूप से संपर्क स्थापित करना मना था। ऐसा कुशल और अच्छा अधिकारी, जिसने सैकड़ों डकैतों को गिरफ्तार कराया, लार्ड डलहौज़ी की इस बेमिसाल लूट में सहयोग दे—विधि की विडंबना ही है। कर्नल स्लीमैन को एक निश्चित परिणाम की घोषणामात्र करनी थी क्योंकि निष्पक्ष जाँच कर पाना संभव ही नहीं था। कर्नल स्लीमैन ने अपनी सारी जाँच लॉर्ड डलहौज़ी के हाथों की कठपुतली बनकर की। इसका प्रमाण निम्नलिखित पत्र है :—

गवर्नमेंट हाउस,
सितम्बर १६, १८४८

"मेरे प्रिय कर्नल स्लीमैन,

मुझे बड़ा दुःख था कि मैं राजपूताना में कर्नल सदरलैंड के स्थान पर आपको नियुक्त किये जाने वाली आप की इच्छा नहीं पूरी कर पाया। लेकिन मैं अधिक समय तक दुखी नहीं रहूँगा क्योंकि भाग्यवश मुझे एक ऐसा प्रवंध करने का अधिकार मिल गया है जिसे

आप भी बहुत पसंद करेंगे। इससे राज्य आपकी सेवाओं द्वारा अधिक सक्रिय रूप से लाभान्वित हो सकेगा। कर्नल रिचमंड लखनऊ में रेजिडेंट पद से त्यागपत्र देना चाहते हैं। अक्तूबर, १८४७ में गवर्नर जनरल ने अवध के बादशाह से मिलकर साफ़ शब्दों में कह दिया है कि राज्य की दशा में यदि दो वर्षों में कुछ सुधार न कर लिया गया तो ब्रिटिश सरकार उसे अपने अधिकार में कर लेगी।

यह आशा करना बिल्कुल व्यर्थ ही है कि सन् १८४९ तक अवध में कोई विशेष सुधार हो सकेगा। किसी भी धनी, विशाल एवं प्रगितशील देश की आन्तरिक शासन-व्यवस्था का पुनर्गठन करना, किसी भी अधिकारी के लिए, जिसे वह सौंपा जाय, बड़ा कठिन कार्य है। इसके लिए सर्वोत्तम सेवकों की आवश्यकता होती है।

आपने जो ख्याति और शासन का अनुभव प्राप्त किया है, वह किसी से छिपा नहीं। इस महत्त्वपूर्ण पद के लिए आपसे अधिक योग्य व्यक्ति दूसरा कोई भी नहीं दिखाई देता। अत: मैं इसके लिए आपका नाम प्रस्तावित करते हुए बड़े गौरव का अनुभव कर रहा हूँ। आशा है आप लखनऊ में रेजिडेंट पद का भार सँभाल सकेंगे। कई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन भी किये जाने वाले हैं। आपने ठगी के मामलों का जिस कुशलता से दमन किया था उसे भुलाया नहीं जा सकता। फिर भी, यह अत्यन्त आवश्यक है कि आपको इनसे मुक्त करके आपकी परेशानियों को कुछ कम कर दिया जाय।

"आशा है आप इस प्रस्ताव को अस्वीकार नहीं करेंगे। साथ ही यह आशा भी कर रहा हूँ कि मैं आपसे स्वयं मिलूँ।　　　आपका अत्यन्त आभारी

**"डलहौज़ी"**

"श्री स्लीमैन को........"

इस पत्र से अनुमान लगाया जा सकता है कि 'लॉर्ड डलहौज़ी' 'कर्नल स्लीमैन की जाँच में कितनी बड़ी रुकावट डाल रहा था। क्या इस तरह के पत्रों का उस जाँच पर प्रभाव नहीं पड़ा होगा? क्या कोई भी समझदार व्यक्ति इतनी-सी बात नहीं समझ सकेगा कि यह पत्र अवध की जाँच से पहले लिखा गया था और अवध पर झूठे आरोप मढ़कर उसकी उन्नति में रुकावट डालने का प्रयास किया जा रहा था? क्या इस पत्र से कर्नल स्लीमैन को थोड़ा-सा भी प्रोत्साहन मिल सकता था कि वह निष्पक्ष जाँच करे? क्या कर्नल स्लीमैन उस गौरव को अकारण ही ठुकरा देता जब कि उसके मन में स्वयं ही अपने उद्देश्य के विषय में संदेह हो—और संदेह करना ही उसके सम्मुख कर्त्तव्य भी हो तब उपर्युक्त प्रलोभन ठुकरा सकना संभव ही कैसे है?

आइए इस पत्र का सूक्ष्म निरीक्षण करें क्योंकि देखने में साधारण लगते हुए भी 'घाव करे गंभीर' वाली कोटि का है।" कर्नल स्लीमैन को 'सक्रिय सेवाओं के लिए आमंत्रित किया गया है.........सरकार अवध की आन्तरिक शासन-व्यवस्था के संचालन के

लिए सर्वोत्तम सेवकों की सेवाएँ प्राप्त करना चाहती है...........कई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये जाने वाले हैं।" यह सब तो समझ में आता है, इनमें कोई विशेष बात नहीं। लेकिन लार्ड डलहौज़ी इतना शीघ्र यह कैसे निर्णय कर लेता है कि "यह आशा करना बिल्कुल व्यर्थ है कि सन् १८४९ तक अवध में कोई विशेष सुधार हो सकेगा ?" इसके उत्तर के लिए पाठक पिछले अध्याय के उन प्रस्तावों का स्मरण करने का प्रयास करें। ये प्रस्ताव अवध सरकार के आग्रह पर ब्रिटिश अधिकारियों ने तैयार किये थे। बर्ड और थामसन ने इनका विस्तार करके योजना बनायी थी। कर्नल रिचमंड ने इन्हें अनुमोदित भी किया था और अन्त में अंतिम निर्णय के लिए इन्हें लॉर्ड हार्डिंग के पास भेजा गया था। ब्रिटिशों ने इन पर बड़ी व्यापक दृष्टि से विचार किया था। गवर्नर जनरल ने पहले ही घोषित करके निश्चित कर दिया था कि सन् १८४८ तक कोई सुधार संभव नहीं। अतः लॉर्ड डलहौज़ी को यह अनुमान लगा लेने में जरा भी कठिनाई न हुई कि सन् १८४९ तक कोई विशेष सुधार नहीं हो सकता।

अब अवध की नकेल कर्नल स्लीमैन के हाथों में आ गयी थी। कर्नल जिधर चाहते उसे मोड़ सकते थे। इसी के परिणाम स्वरूप "इन क्रियात्मक सेवाओं" के कारण तरह-तरह की गड़बड़ियाँ फैलने लगीं जिनकी आशा लार्ड डलहौज़ी को पहले से ही थी। उनके आचरण के संबंध में अवध के बादशाह के शब्दों पर गौर कीजिए जो उसने मई १८५७ को 'हाउस आफ कामन्स' को दिये गये अपने आवेदन-पत्र में कहे थे।

"पिछली सभी संधियों ब्रिटिश रेजिडेंटों और गवर्नर जनरलों[१] द्वारा दिये गये सभी आदेशों की कर्नल स्लीमैन तभी से उपेक्षा करते रहे जब से वे इस पद पर नियुक्त

**१. यह बताया जा चुका है कि सन् १७९८ में कंपनी और सआदत अली के बीच एक संधि हुई थी जो नवाब वजीर के द्वारा गवर्नर जनरल (मार्क्विस वेलेज़ली) के पास भेजी गयी थी। इसमें कई प्रस्तावों और उन पर गवर्नर जनरल की स्वीकृति माँगी गयी थी। उन तीन में से प्रथम प्रस्ताव निम्नलिखित है :—**

**पहला प्रस्ताव :—आमितों और अन्य लोगों से बकाया रक़म वसूल करने के कार्य में किसी भी व्यक्ति को बाधा डालने या बाधा डालने में सहायक होने न दिया जाय। वास्तव में इसके विपरीत रेजिडेंट के वसूली वाले काम में सहायता दी जाय जिससे रेजिडेंट सरकार का सहयोग दे सके। यदि रेजिडेंट मुझे किसी को दंडित करने से रोकना चाहे तो मुझसे व्यक्तिगत रूप से कह सकता है। इस दशा में या तो मैं दंड के निर्णय के औचित्य से रेजिडेंट को संतुष्ट कर दूंगा, और यदि मैं गलती कर रहा होऊँगा तो रेजिडेंट उसे सुधार देंगे। किसी प्रकार का अन्यायपूर्ण कार्य मैं कर**

हुए। उन्होंने अवध के शासकों के लिए जो आचरण संहिता तैयार की है वह किसी भी शासक के लिए अपमान-जनक है। बादशाह और मंत्रियों पर व्यक्तिगत आरोप लगाये जाना, बादशाह को लोगों की नजरों में गिराने का प्रयास करना तथा उनकी सरकार को बदनाम करना आदि बड़ी निंदनीय बातें हैं। मुजताहिदुल अस्र यानी इस्लामी अदालतों के न्यायाधीशों के निर्णयों में हस्तक्षेप करके कर्नल स्लीमैन उन्हें अपने हाथों में ले लेते हैं जिसका उन्हें कतई अधिकार नहीं। बादशाह के ही खर्च पर कर्नल स्लीमैन लगभग तीन महीने तक जो अवध में इधर-उधर भ्रमण किया करते हैं वह भी पिछली सभी संधियों के विरुद्ध है। इस भ्रमण में उनका उद्देश्य बादशाह के विरुद्ध शिकायतों, २० या ३० वर्ष पुराने झगड़ों की बातें जमा करना होता है।

इसके अतिरिक्त कई बदमाशों के द्वारा बादशाह और पूरे शाही खानदान को तंग करवाया जाता रहा। और न्याय-व्यवस्था तथा राज्यकर वसूल करने में भी कर्नल स्लीमैन की तरफ से इतनी बाधाएँ डाली जाती रहीं कि कभी-कभी इनका संचालन करना असंभव ही हो जाता और राज्य की सामाजिक एवं राजनीतिक दशा में काफी उथल-पुथल मच जाती रही। कहाँ तो बादशाह को संधि के अनुसार राज्य संचालन के लिए अच्छी सलाहें मिलनी चाहिए थीं, लेकिन मिलता था बदले में यह सब।"

अब हम इन सबके प्रमाण कुछ विस्तार के साथ देना चाहेंगे। ये प्रमाण मेजर बर्ड और एम० एम० मसीहुद्दीन के लिखित वक्तव्यों से उद्धृत किये जा रहे हैं। दोनों ने ही परिस्थितियों को व्यक्तिगत रूप से भली-भाँति समझा था और जाँच करके प्रमाण एकत्र किये थे।

सबसे पहले तो कर्नल स्लीमैन ने अपनी मर्ज़ी के मंत्रियों को नियुक्त करके बादशाह की स्वतंत्रता पर आघात करना शुरू कर दिया। इन मंत्रियों को कर्नल स्लीमैन की

**सकने में असमर्थ हूँ। यदि मैं गलती पर होऊँगा तो अपने निर्णय को वापस लेकर रेजिडेंट की इच्छा पूरी कर दूंगा। हमारे बीच किसी प्रकार का मतभेद नहीं रहेगा।**

**उत्तर :—इसमें कोई आपत्ति नहीं की जा सकती। इसे पालन करने का भरसक प्रयास किया जायगा। नवाब वज़ीर सारे आवश्यक प्रमाण और सूचनाएँ जुटाकर रेजिडेंट को दिया करेंगे जिससे कि ठीक-ठीक न्याय किया जाय।**

**फिर भी यह एकदम सच है कि कर्नल स्लीमैन और अवध सरकार के बीच किसी प्रकार की गलतफ़हमी हो गयी है। रेजिडेंट को सरकार के काम में हस्तक्षेप करने से किस प्रकार अलग रखा गया और कर्नल स्लीमैन ने किस प्रकार नियमों को भंग किया —इसके लिए बादशाह का उत्तर देखिए, पृष्ठ ९ पर।**

इच्छा के अनुसार ही नियुक्त किया या हटाया जा सकता था। वसी अली खाँ प्रधान मंत्री का अनुसचिव था। उसके समय में ही इसी प्रकार का एक उदाहरण देखने में आया। वसी अली खाँ एक बुद्धिमान्, शिक्षित और अनुभवी व्यक्ति था। वह ब्रिटिश कानूनों और संस्थानों से भली-भाँति परिचित था। अपने कर्त्तव्य-पालन के लिए वह प्रसिद्ध था। कर्नल स्लीमन ने समझ लिया कि ऐसे लोकप्रिय व्यक्ति के विरुद्ध कुछ भी कर पाना बड़ा कठिन है। अतः २ मार्च, १८४९ को उसने एक पत्र, बादशाह के नाम लिखा कि वसी अली खाँ को पदच्युत और निर्वासित किया जाता है। इस पत्र में बादशाह से प्रार्थना की गयी थी कि उसे तुरंत लखनऊ छोड़ने का हुक्म सुना दें। यह सज़ा कर्नल लो और कॉलफील्ड के रेज़ीडेंसी के काल में दी गयी थी। लेकिन बादशाह वसी अली खाँ की निष्कलंकता से पूर्णरूप से संतुष्ट था। अतः उसने कर्नल स्लीमैन की यह प्रार्थना यह कहकर अस्वीकार की—"वसी अली खाँ को निरपराध ही और बिना किसी प्रमाण के ही निर्वासित कर देने से मेरे राज्य में काफी अव्यवस्था हो जायेगी।" कर्नल स्लीमैन ने दोबारा बड़ी निर्लज्जता से लिखा—"वसी अली खाँ के अपराध को प्रमाणित करने की कोई ज़रूरत नहीं। यह उसकी जागीर या पैतृक सम्पत्ति तो है नहीं। अतः उसे पदच्युत करने के लिए प्रमाणों को खोजना बिल्कुल जरूरी नहीं।" लेकिन बादशाह अपने इस स्वामिभक्त सेवक को इस तरह निकाल बाहर करने के लिए बिल्कुल तैयार न हुआ। अन्त में उसे वसी अली खाँ को लखनऊ छोड़ देने का हुक्म सुनाने के लिए विवश हो जाना पड़ा। लखनऊ छोड़कर वह अपनी निजी रियासत में चला गया। जिस समय वह अपनी रियासत में रह रहा था, किसी गंगाबख्श नामक व्यक्ति को गिरफ्तार कराने में ब्रिटिश सरकार की बड़ी सहायता की। गंगाबख्श से बादशाह और कर्नल स्लीमैन दोनों ही भयभीत रहते थे और उसे गिरफ्तार करना चाहते थे।

लेकिन कर्नल स्लीमैन को इस घटना से जितनी अधिक प्रसन्नता हुई उतना ही अधिक दुःख भी हुआ जब उसे पता चला कि यह सहयोग उसे वसी अली खाँ की ओर से मिला था। वसी अली खाँ से उसे बेहद चिढ़ थी। अतः इस सेवा के लिए जो पुरस्कार वसी अली को मिलना चाहिए था, नहीं दिया गया। यद्यपि वसी अली ने इस संबंध में जो अर्जी भेजी थी उसके विषय में १८ सितम्बर, १८५० को उत्तर देते हुए उसने लिखा "गंगा-बख्श और उसके पुत्र की गिरफ्तारी के विषय में वसी अली ने जो कुछ भी लिखा है वह, जहाँ तक मुझे मालूम है, बिल्कुल सत्य है।" लेकिन बादशाह ने इसके लिए जो पुरस्कार देने की घोषणा की थी कर्नल स्लीमैन ने देने की मनाही कर दी। वसी अली पर यह अभियोग लगा दिया गया कि वास्तव में वसी अली ने गंगाबख्श को क्षमा दिलवा देने का लालच दिलाकर उसे गिरफ्तार हो जाने के लिए बहकाया था। अतः उसे पुरस्कार नहीं

दिया जा सकता था। बादशाह के लाख सिर मारने पर भी कर्नल स्लीमैन अपने वचन का पालन करने को तैयार न हुआ। पुरस्कार देना तो दूर रहा, वह तो वसी अली को राज्य से ही निकाल दिये जाने की कोशिश कर रहा था।

तब बादशाह ने निम्नलिखित आज्ञा जारी की। इससे अधिक सच्चा प्रमाण क्या होगा कि बादशाह पर इसके लिए कितना जोर डाला जा रहा था :—

उस आज्ञा का अनुवाद जो अवध के बादशाह ने वसी अली खाँ के नाम तीसरी रबीउलबाल१२७० हिज्री (यानी २४ नवम्बर १८५३) भेजी थी।

"वसी अली खाँ अवध सरकार की सेवा तीस वर्षों से करते चले आ रहे हैं। उसके पहले उनके पूर्वज अवध सरकार के सेवक रहते आये हैं। उनके सेवाकाल में बादशाह को कभी उनसे शिकायत नहीं होने पायी। वे अपने कर्त्तव्यों और सेवाओं के प्रति सदैव सजग रहे हैं और बादशाह तथा कंपनी की सरकार दोनों को ही अपनी सेवाएँ बड़ी निष्ठा से अर्पित करते रहे हैं। बादशाह ने उनके आचरण के संबंध में काफी जाँच भी की, लेकिन उनके विरुद्ध एक भी बात नहीं मिली। उन्होंने कभी भूल की ही नहीं। लेकिन रेज़िडेंट के कड़े आदेशों के कारण उन्हें कुछ समय के लिए शहर छोड़ देना पड़ा। बाद में रेजिडेंट ने वापस बुलवाकर उन्हें अपने परिवार वालों के साथ रहने की अनुमति दे दी।

लेकिन थोड़े दिनों बाद ही रेज़िडेंट ने उन्हें पुनः निर्वासित कर देने की इच्छा प्रकट की है। अतः मैंने अपने रेज़िडेंट मित्र के आदेशों का पालन करने के लिए वसी अली को शहर के बाहर रहने का उस समय तक के लिए आदेश दिया है जब तक रेज़िडेंट उनके पक्ष में अच्छी धारणा न बना लें। यदि ऐसा हुआ तो बादशाह को बहुत प्रसन्नता होगी।

बादशाह को यह प्रमाणित करते हुए हर्ष है कि वसी अली का आचरण पूर्णतया संतोषजनक है और उन्हें (बादशाह को) दृढ़ विश्वास है कि वसी अली बिल्कुल निर्दोष हैं।"

—अवध के बादशाह के हस्ताक्षर
और मोहर

कॅर्नल स्लीमैन के विरुद्ध उपर्युक्त आज्ञापत्र एक जीता-जागता प्रमाण है। इससे साफ पता चलता है कि कर्नल स्लीमैन झूठमूठ ही बादशाह को लोगों की नज़रों में गिराकर उनकी सरकार को बदनाम करना चाहता था। लेकिन वसी अली की कहानी यहीं पर खत्म नहीं हो जाती। कर्नल स्लीमैन उसे बरबाद करने पर उतारू था। वसी अली पर यह संदेह प्रकट किया गया कि वह उनकी (कर्नल स्लीमैन की) हत्या करना चाहता है। इस प्रकार के संदेहों को लिए कर्नल स्लीमैन के पास कोई आधार न था। सिर्फ थोड़ी-सी बात का बतंगड़ अवश्य बन गया था। बात यह थी कि रेज़ीडेंसी के बरामदे में पहरा देनेवाले एक संतरी की बंदूक दग गयी। गोली दगने की आवाज़ सुनकर

वहाँ के चपरासी दौड़कर कारण जानने के लिए आ पहुँचे। संतरी ने उन्हें बताया कि दो हथियारबंद आदमी आकर उससे पूछ रहे थे कि कर्नल स्लीमैन इस समय कहाँ पर हैं। उसने उत्तर दिया कि उसे मालूम नहीं है। इतनी रात गये हथियार लेकर आने वाली बात उसे खटक गयी। जैसे ही वे आदमी आगे बढ़े उसने उन पर बंदूक दाग दी। दूसरे दिन दोपहर में ही रेजिडेंट की ओर से संदेश भेज कर प्रार्थना की गयी कि उसे अपनी सुरक्षा के लिए और अधिक सशस्त्र सैनिकों की आवश्यकता है। यह प्रार्थना स्वीकार कर ली गयी और अपराधियों की गिरफ्तारी के आदेश भी दे दिये गये। अभी मुश्किल से एक सप्ताह भी न बीता होगा कि उसी संतरी की बंदूक के दगने की आवाज़ एक बार फिर रात में गूंज उठी। लोग दौड़ पड़े। संतरी ने बताया कि एक हथियारबंद व्यक्ति उसने देखा। आवाज़ देने पर वह आदमी चुप रहा, अतः विवश होकर उसे गोली चला देनी पड़ी। संतरी की हथेली में गोली से थोड़ा घाव भी हो गया था। सुबह बाकायदा जाँच शुरू हुई। जहाँ पर संतरी बैठकर पहरा दे रहा था ठीक उसके ऊपर छत में बंदूक की एक गोली धसी हुई मिली और बारूद के छोटे-छोटे कण भी संतरी के उन कपड़ों पर पाये गये जिन्हें वह पहरा देते समय पहने था। इन सब प्रमाणों से बड़ी आसानी से समझा जा सकता है कि उस समय संतरी का हाथ बंदूक की नली के मुंह पर रहा होगा। नींद आ जाने से गलती से उसके शरीर का कोई भाग बंदूक के घोड़े पर पड़ गया होगा और स्वयं दग गयी होगी। संतरी ने अपनी लापरवाही की बात छिपाने के लिए एक हथियारबंद आदमी वाली कहानी गढ़ ली होगी। पहले भी जाँच की गयी थी, लेकिन कोई आदमी न तो वहाँ किसी और ने देखा ही था और न कोई पकड़ा ही गया। रेजीडेंसी के चारों ओर काफी ऊँची दीवार थी तथा अंदर-बाहर कड़े पहरे का प्रबंध भी था। अगर कोई वहाँ घुसा भी होता तो पकड़े जाने से बचना उसके लिए असंभव ही था।

यह सब समझते-बूझते हुए भी कर्नल स्लीमैन बादशाह के पास बराबर इस प्रकार के संदेश भेजता रहा कि उसे अपनी हत्या किये जाने का संदेह है, अतः बादशाह यथाशीघ्र अपराधी को पता लगाकर गिरफ्तार करें। बादशाह ने उन्हें आश्वासन दिया कि इसके लिए एक विशेष समिति बनायी जायेगी जो इसका पता लगाने के उपायों पर विचार करेगी। इसी के अनुसार जाँच के लिए २० नवम्बर, १८५३ को एक जाँच समिति की स्थापना की गयी। इसमें सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश, उल्मा सैयद मोहिम्मद, अदालतों तथा सेना के कई उच्च अधिकारी सम्मिलित किये गये। बादशाह स्वयं भी विशेष रुचि ले रहा था। कर्नल स्लीमैन को भी इसमें भाग लेने के लिए आमंत्रित किया गया। लेकिन उसने भाग लेना अस्वीकार कर दिया। जाँच काफी समय तक चली। सभी लोग अन्त में इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि वसी अली व अन्य लोगों पर अकारण ही संदेह

प्रकट किया गया है। वे सभी लोग पूर्ण निर्दोष हैं। इसमें उनका कोई हाथ न था और वे सम्मानपूर्वक निर्दोष घोषित हुए। इस वक्तव्य से कर्नल स्लीमैन को संतुष्ट हो जाना चाहिए था। लेकिन कर्नल स्लीमैन तब भी अपने हठ पर अड़ा रहा और वसी अली के विरुद्ध बराबर भीषण रूप से दोषारोपण करता रहा। कंपनी की कुटिल नीतियों के शिकार अन्य लोगों की तरह ही उसे भी शिकार बन जाना पड़ा। १८५५ में उसकी मृत्यु हो गयी।[१]

वसी अली की मृत्यु का कारण यही था कि झूठे आरोपों ने उसके हृदय को विदीर्ण कर दिया था। मृत्यु ने ही उसे इनसे मुक्ति दिलायी।

उपर्युक्त घटना से भिन्न एक दूसरी घटना भी हमारे पहले मत की पुष्टि करती है। इस बार बादशाह के विरुद्ध दोषारोपण करके उसे लोगों की नज़रों में गिराने की कोशिश की गयी थी, अतः बादशाह को कुरुंन (?) अहमद नामक एक व्यक्ति को अपने राज्य की सीमाओं से निकल जाने की आज्ञा देनी पड़ी। कुरुंन अहमद संदिग्ध चरित्र वाला व्यक्ति था जो रेज़िडेंट के गुप्तचर का कार्य करता था। रेज़िडेंट को झूठी-सच्ची बातों से बादशाह के विरुद्ध भड़काना ही उसका एकमात्र उद्देश्य था। जब कर्नल स्लीमैन को पता चला कि कुरुंन अली को राज्य से निर्वासित किया जा रहा है तो उसने उसकी रक्षा के

१. इस जैसे अभागे व्यक्ति की प्रशंसा कई दूसरे अंग्रेजों ने भी की है। ये अंग्रेज वसी अली के व्यक्तिगत संपर्क में रह चुके थे। उनके वक्तव्य से भी हमारे कथन की पुष्टि होती है। एक वक्तव्य निम्न लिखित है :—

"जब से मैं लखनऊ में कमांड पर हूँ, पत्रवाहक वसी अली खाँ बहुधा मुझसे मिलते रहते हैं। मैंने उनका व्यवहार सदैव ही सभ्य एवं सम्मानजनक पाया है। मुझे इस पुर्जी के दिये जाने के उनके अनुरोध को पूरा करते हर्ष होता है।

—लखनऊ, ६ मई १८४१, (हस्ताक्षर) एफ० जानसन, मेजर जॅनरल।

"लखनऊ के बादशाह की तरफ से नियुक्त वसी अली खाँ मेहमानदार, सम्माननीय गवर्नर जनरल की आवश्यकताओं के अनुरूप साधन जुटाने में बराबर संलग्न रहे और लखनऊ से कानपुर जाते समय वे अपने अत्यंत ही कठिन कर्त्तव्य के उत्तरदायित्व को बड़े ही संतोषजनक ढंग से पालन करते रहे।

—लखनऊ, नवम्बर २३, १८७४ (हस्ताक्षर) डब्ल्यू० हैरिसन जी० ए०।

"हमारे कैंप में अवध के बादशाह की ओर से नियुक्त एहितेयात निशान के सुपरिंटेंडेंट हैं। वास्तव में उन्होंने हमारी बड़ी सेवाएँ कीं।"

—लखनऊ, २२ नवम्बर १८७४ (हस्ताक्षर) एच० एम० इलियट।

उद्देश्य से १ फरवरी १८५४ को बादशाह के पास एक पत्र भेजा, जिसका सारांश निम्नलिखित है :—

"मुंशी कुर्रुन अहमद प्रायः मुझसे तथा मेरे सहकारी से मिलने आया करते हैं और इसी लिए आपने उन्हें राज्य से निर्वासित कर देने का फैसला किया है, लेकिन आपको यह साफतौर से समझ लेना चाहिए कि यदि आप ऐसा करेंगे तो मैं आपके प्रधान मंत्री, एवं वकील आदि से मिलने से इनकार कर दूंगा और इसके अतिरिक्त गवर्नर जनरल को लिख कर भेज दूँगा कि बादशाह आपके लोगों से मुझे मिलने नहीं देते हैं। अतः रेजीडेंसी भंग करके देश भर से ब्रिटिश सेनाएँ हटा ली जायँ। इस प्रकार बादशाह अब हमारा मित्र नहीं, वरन् प्रतिद्वंद्वी है।"

दूसरी ओर कर्नल स्लीमैन ने एक लिखित आज्ञा बादशाह के पास भेजी कि वह अपने नाम वाली मोहर से 'गाज़ी' शब्द हटा ले। 'गाज़ी' शब्द उसे अपने पूर्वजों से प्राप्त हुआ था। बादशाह को नीचा दिखाने के लिए ही ऐसा किया गया था। बादशाह को लोगों की दृष्टि में गिराने का यह एक नया प्रयास था।[1] 'अवध ब्ल्यू बुक' (सन् १८५६) के पृष्ठ १७ पर ऐसे असम्मानपूर्ण ढंग के पत्रों के कई उदाहरण मिल जायेंगे। जिन्हें कर्नल स्लीमैन बादशाह के लिए लिखा करते थे। यद्यपि कर्नल स्लीमैन के पहले सभी रेजिडेंटों को आदेश दिये गये थे कि बादशाह के साथ विनम्र व्यवहार करें। तथापि कर्नल स्लीमैन खुले रूप में उन आदेशों की धज्जियाँ उड़ा रहे थे।

अब हम कुछ ऐसी घटनाओं का वर्णन करेंगे जिनसे पता चलता है कि अवध की अदालतों के न्याय में किस प्रकार से हस्तक्षेप किया जाता था और कानूनों को किस प्रकार भंग किया जाता था। अवध ब्ल्यू बुक (जिसका वर्णन ऊपर किया गया है) के पृष्ठ २९ पर कुछ ऐसी ही घटनाओं का उल्लेख मिलता है। पृष्ठ १६७ पर इसी संबंध में कुछ अन्य घटनाएँ भी दी हुई हैं। ये घटनाएँ बड़ी महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि यदि मेज़र बर्ड जैसे लोग इन्हें प्रकाश में न लाते तो कर्नल स्लीमैन के कारनामे छिपे ही रह जाते। सबसे पहले हम चतुरसिंह संबंधी घटना का वर्णन करेंगे।

कहा जाता है कि किसी व्यक्ति ने रेजिडेंट के पास शिकायत भेजी कि वह अपने

१. बादशाह के उत्तर के तेरहवें पृष्ठ पर यह भी लिखा गया है कि कर्नल ने फलों के उस उपहार को लेना भी अस्वीकार कर दिया जिसे बादशाह की सद्भावना प्रदर्शित करने के लिए रेज़ीडेंसी में काफी समय से भेजा जाता रहा था। साथ ही बराबर सार्वजनिक रूप से यही प्रकट किया जाता था कि बादशाह से रेजिडेंट के संबंध मित्रतापूर्ण नहीं हैं।

किसी साथी के साथ कहीं जा रहा था कि मार्ग में उसे जमींदार के भाई चतुरसिंह ने रोका। उस समय वे बिगराई ग्राम के पास से गुज़र रहे थे। चतुरसिंह उन्हें पकड़कर बिगराई ग्राम ले गया। वहाँ उसके साथी का सिर धड़ से अलग कर दिया गया और स्वयं उसकी यही गति बनायी जाने वाली थी। किन्तु वह एक स्त्री को रिश्वत के रूप में कुछ रुपये देकर जान बचा कर भाग आया। रेजिडेंट ने बादशाह से सलाह लिये बिना ही कंपनी के बंदूकचियों और कैप्टेन हार्ड किली के कमान में १०वीं रेजिमेंट, एन० आई० को तुरंत आज्ञा दी कि वे बन्नी की ओर बढ़ें और अवध फ्रंटियर पुलिस के कमांडर लेफ्टिनेंट वेस्टन और अवध के बादशाह की सेवा में नियुक्त कैप्टेन बारलो से जा मिलें और पचास घुड़सवार सैनिक अपने साथ ले लें। कैप्टेन हार्ड विकी को एक मुहरबंद आदेश इस आशय का दिया गया था कि चतुरसिंह से आत्मसमर्पण करने को कहा जाय। इनकार करने पर सारा गाँव नष्ट कर दिया जाय। इतना बड़ा दल बिगराई पहुँचा तो कहीं से भी किसी प्रकार की बाधा उनके मार्ग में नहीं डाली गयी। इतना ही नहीं, पड़ोस के एक गाँव के खेतिहरों ने तो ब्रिटिश सेनाओं को सहयोग देने की इच्छा भी प्रकट की। लेकिन कैप्टेन ने इसकी मनाही कर दी। चतुरसिंह से आत्मसमर्पण कर देने के लिए कहलाया गया। चतुरसिंह के आने में कुछ देरी लगने पर बादशाह का एक नौकर ऊँट पर सवार होकर चतुरसिंह के पास भेजा गया। चतुरसिंह को आते ही गिरफ्तार कर लिया गया। इसके बाद शिकायत करने वाले व्यक्ति को बुलवाया गया कि वह उस जगह को आकर पहचाने जहाँ पर उसके साथी का सिर काटा गया था और उसे भी पकड़ कर रखा गया था। लेकिन वह व्यक्ति जगह न बता सका, क्योंकि सारी घटना तो मनगढंत थी। बतलाता तो कहाँ से बतलाता। इससे यह भी ज्ञात हो जाता है कि कैप्टेन हार्ड विकी न्यायी अधिकारी थे, अतः जो आदेश उन्हें दिये गये थे उनका अंधानुकरण पालन करने में उन्हें हिचक-सी मालूम दी। कैप्टेन बारलों ने चतुरसिंह के पास संदेश भिजवा कर गाँव को नष्ट होने से बचा लिया। इसे हम उनकी दूरदर्शिता ही कहेंगे। लेकिन इस कहानी का जो पक्ष अब बताया जाने वाला है वह इतना ही अधिक दुर्भाग्यपूर्ण है। इस गाँव का पड़ोस के गाँव वालों से जमीन की सीमा के विषय में झगड़ा बहुत समय से चला आ रहा था। यह शिकायत करने वाला व्यक्ति ५०वीं बी० एन० आई० का एक सिपाही था जिसे चोरी के अपराध में बरखास्त कर दिया गया था। सोचा गया था कि यह सिपाही सरकार के प्रतिनिधियों को इस गाँव के विरुद्ध भड़का कर इसे नष्ट करवा डालेगा और सारे झगड़े आप से आप शांत हो जायेंगे। यह परिणाम शीघ्रता से निकट आता जा रहा था। इसी तरह शीघ्रता में मनमाना निर्णय करके अवध की अदालतों के कानून को निष्क्रिय किया जा रहा था। इनके कारण बादशाह के राज्य में बड़ी गड़बड़ियाँ फैलने लगी थीं। ब्रिटिश सेनाओं का

इस प्रकार से उपयोग होते देख गाँवों में खेतिहरों का यह सोचना स्वाभाविक ही था कि देश अब इन्हीं लोगों के अधिकार में आ जाने वाला है। अतः बादशाह को कर देना व्यर्थ है।

कर्नल स्लीमन ने ऐसे लोगों की सहायता करना आरंभ कर दिया जो बादशाह को कर देने से इनकार करने लगे थे। इसकी पुष्टि उस घटना द्वारा होती है जिसका अब हम वर्णन करने जा रहे हैं। काला कांकर, इलाका सलोनी के राजा हनुवंत सिंह ने बादशाह को कर नहीं दिया। वहाँ के डिप्टी कलेक्टर खान अली खाँ ने जब देने के लिए जोर देना शुरू किया तो राजा ने रेजिडेंट से अपनी फरियाद जा सुनायी। रेजिडेंट ने राजा की बात सुनकर अभयदान तो दिया ही, साथ ही प्रत्येक दिन अपने बराबर में बग्घी में बैठकर चलने का अधिकार भी दे डाला। ऐसा करने का उसका अभिप्राय यह था कि अवध के अधिकारियों को पता चल जाय कि बादशाह के लिए अब कर वसूल कर पाना बड़ा ही कठिन कार्य है। इतना ही नहीं, राजा को छावनी में एक घर भी अपनी सुरक्षा के लिए दिया गया। इस भाग में बादशाह के अधिकारी राजा का बाल भी बाँका न कर सकते थे। इसके लिए एक सुरक्षा-पत्र[1] भी दिया गया था जो मेजर बर्ड के पास था। इसी प्रकार के अन्य साधनों के उपयोग के द्वारा अवध के शासन की जड़ों को कमज़ोर बना कर उसे अपंग[2] बनाया जा रहा था। लॉर्ड डलहौज़ी के संकेतों पर चलकर कर्नल स्लीमैन

"लखनऊ, २७ जून, १८५१।

१. महोदय,

यदि आपको, राजा लाल हनुवंत सिंह के विषय में यह संदेह है कि उन्होंने अपने बँगले का जिसकी अवधि तो अगले सितम्बर तक है नहीं दे रहे हैं, तो मैं विश्वास दिलाता हूँ कि उनके न भुगतान करने पर मैं अपनी तरफ से उनके रुपये चुका दूंगा।"

"मेसर्स ब्रैंडन एंड कम्पनी — आपका आज्ञाकारी

सच्ची प्रतिलिपि — (हस्ताक्षर) डब्ल्यू० एच० स्लीमैन"

H. Mc Jvor. — सच्ची प्रतिलिपि

आर० डब्ल्यू० बर्ड

२. बादशाह के द्वारा दिये गये उत्तर में हनुवंत सिंह की पूरी कहानी समझ में आ जाती है:—

"बड़े आश्चर्य की बात है कि सलोंने में कालाकाँकर के तालुकदार हनुवंत सिंह, कर्नल स्लीमैन से उस समय मिले जब वे उनके जिले में आये हुए थे। कर्नल स्लीमैन राजा हनुवंत सिंह के यहाँ ही ठहरे थे। कर्नल को अपने पक्ष में देख कर उन्होंने

इन साधनों को अपना रहे थे और जिस परिणाम की उन्हें आशा थी धीरे-धीरे निकट आता जा रहा था। 'अवध ब्ल्यू बुक' में ऐसी ही एक और घटना का दृष्टांत दिया गया है

> प्रार्थना की कि सरकार को चुकाये जाने वाले कर में उनके साथ कुछ रियायत कर दी जाय। इसके पहले भी हनुवंत सिंह अपनी इच्छानुसार ही कर चुकाते आये थे लेकिन अब वे और अधिक लाभ उठाना चाहते हैं। पिछले दो सालों जुम्मा को बहुत ही थोड़ी दरों पर वे कर चुकाने लगे और अपनी जागीर को हुजूर तहसील प्रणाली के अन्तर्गत करवा लिया। इससे काफी लाभ उठाकर एक दूसरी चाल भी उन्होंने खेली। अपने मातहत कई अधिकारियों से पारिश्रमिक प्राप्त किये जाने की रसीद तो लिखवा ली, लेकिन उन्हें रुपये नहीं दिये। उदाहरण के लिए एक सरकारी कर्मचारी ख़ान मोहम्मद जमादार ने इसी से दुखी होकर आत्महत्या भी कर ली। बेचारे ने कई बार इसके लिए दरख्वास्त दी थी, मगर सुनवाई कौन करता? इसी प्रकार हाथियों के लिए नियुक्त किये गये दारोग़ा लाल मोहम्मद, चीतों के लिए नियुक्त जमादार नबीबख्श और शेरों पर नियुक्त जमादार झाऊ सिंह के हज़ारों रुपये राजा हनुवंत सिंह ने दाब लिये और ये बेचारे मन मारकर रह गये। नक्कारखाने में उनकी तूती की आवाज़ सुनने के लिए वहाँ बैठा ही कौन था। इतनी नीचता दिखलाने के बाद भी पिछले सालों बिल्कुल नये नानकारों की माँग करने से राजा हनुवंत सिंह बाज न आये। कर्नल स्लीमैन की सलाह पर मंडयात छावनी में एक बँगला खरीद कर वे उसमें रहने लगे। वैसे रेजिडेंट कर्नल कालिन्स का यह स्पष्ट आदेश था कि छावनियों में सैनिकों एवं उनकी बाजारों में आवश्यक सामग्री उपलब्ध करने वालों के अतिरिक्त कोई नहीं रह सकेगा। कर्नल स्लीमैन से यह बात कोई छिपी नहीं थी। लेकिन राजा हनुवंत सिंह को यहाँ रहने की अनुमति दे दी गयी। वे रसीद वाले रुपयों के भुगतान से बच कर यहाँ रहने लगे। इस बीच उनके दोनों पुत्र किसानों से कर वसूल करते रहे। पिछले तीन वर्षों से राजा हनुवंत सिंह के दुष्टतापूर्ण आचरण से मैं तंग आ चुका था। हर साल हनुवंत सिंह की शरारत बढ़ती ही जाती थी। मेरे सेवकों के धन और प्राण हर समय ख़तरे में रहते थे। अतः रेजिडेंटों के पास इसकी सूचना भेज कर मैंने हनुवंत सिंह को दंडित करने का आदेश दिया। लेकिन हनुवंत सिंह को कर्नल स्लीमैन की शह मिल चुकी थी। अतः मेरे तहसीलदार से टक्कर लेने की तैयारी हनुवंत सिंह की ओर से की जाने लगी। लगभग एक महीने तक संघर्ष होता रहा इसमें लगभग दो या तीन सौ आदमी मारे गये और घायल हुए। हनुवंत सिंह ने जब अपनी शक्ति को

जो इससे भी अधिक विस्तार में है। बहराइच ज़िले में आमिल यानी टैक्स कलेक्टर मोहम्मद हुसैन को कर जमा करते समय पता चला कि ज़िले का वह भाग ताल्लुकेदार के अधिकार क्षेत्र में है। ताल्लुकेदार साहब आमिल के कार्यालय वाले तम्बू में आ पहुँचे।

कुछ क्षीण होते हुए देखा तो अपने दोनों पुत्रों को शाहजहाँपुर भेजकर स्वयं छावनी की ओर कूच कर दिया। हनुवंत सिंह के दोनों बेटे भी हनुवंत सिंह से कम अपराधी नहीं। यहाँ हनुवंत सिंह को पूर्ण स्वच्छन्दता प्राप्त थी। अब दुष्टतापूर्ण कार्यों की जाँच तो दूर यहाँ मेरे सेवकों को हनुवंत सिंह के बँगले के पास फटकना तक संभव नहीं रह गया। हनुवंत सिंह ने मेरे दो आदमियों के हाथ और नाक भी कटवा लिये। उन बेचारों का अपराध केवल इतना ही था कि हनुवंत सिंह की अनुपस्थिति में ये उनके घर पर जा पहुँचे थे। इन लोगों ने इसकी शिकायत मुझसे की। मैंने इन्हें कर्नल स्लीमैन के पास भेज दिया। लेकिन कर्नल स्लीमैन ने इनकी दशा पर जरा भी तरस न खाया। बेचारों से सहानुभूति प्रकट करना तो दूर रहा उनसे कहा गया कि हनुवंत सिंह जो जी चाहे करने के लिए स्वतंत्र हैं। इसके बाद शाहजहाँपुर के मैजिस्ट्रेट के पास एक पत्र कर्नल स्लीमैन ने भिजवाया जिसमें लिखा था कि हनुवंत सिंह के पुत्रों एवं सेवकों को शस्त्र इत्यादि रखने दिया जाय और कोई उनका विरोध न करने पाये। यहाँ पर सन् १८०१ वाली संधि के उस भाग की तो धज्जियाँ ही उड़ा दी गयीं जिसके अनुसार अवध राज्य को आंतरिक शत्रुओं से सुरक्षित रखने का उत्तरदायित्व सीधे ब्रिटिश सरकार पर आता है। इसी प्रकार सन् १८०२ वाली संधि के उस भाग का भी गला घोंट दिया गया जिसके अनुसार ब्रिटिश सरकार को अपराधियों को अवध राज्य की सरकार के हवाले कर देना चाहिए था। कर्नल स्लीमैन और बातों में तो बड़ी टीका-टिप्पणी करते रहते थे, मगर यहाँ उन्होंने चुप्पी साध ली। कोई उपाय न देखकर मैं चुप रह गया और मन मारकर रेजिडेंट के इच्छानुसार चलने के लिए विवश हो गया। कर्नल स्लीमैन हनुवंत सिंह के कारण तहसीलदार खाँ अली से बड़े जले-भुने बैठे थे, अतः खाँ अली को बर्खास्त करना पड़ा। इसके साथ ही हनुवंत सिंह को भी आश्वासन देना पड़ा कि, वे चाहे लखनऊ में रहें या और कहीं, उन्हें अपमानित किये जाने का भय नहीं होना चाहिए।

मुझे तो इतनी हानि और अपमान सहना पड़ा और मेरे कितने ही सेवकों को अपने धन और प्राणों से हाथ धोना पड़ा, मगर हनुवंत सिंह कर्नल स्लीमैन की छत्र-छाया में चैन की वंशी बजा रहे हैं।"

इसके सामने ही साठ गज़ लंबी और ४० गज चौड़ी ज़मीन कनातें[1] लगा कर घेर दी गयीं थी जिससे भीड़भाड़ से बचा जा सके। आमिल के द्वारा बातचीत किये जाने पर रामदत्त ने कर की निर्धारित रकम चुकाने से साफ इककार कर दिया। रामदत्त को बतला दिया गया कि कर चुकाये जाने से उसे छुटकारा नहीं मिल सकता। किन्तु रामदत्त ने आमिल की बात अनसुनी कर दी और अपने तेरह आदमियों सहित उठ कर बाहर चला आया और कनातों से घिरे हुए भाग में ज़बरदस्ती घुसने लगा। पहरेदारों के द्वारा रोके जाने पर आमिल के आदमियों पर उसने पिस्तौल निकाल कर फायर करने प्रारंभ किये। इस पर वहाँ उपद्रव उठ खड़ा हुआ और इसमें रामदत्त की मृत्यु हो गयी। ताल्लुकेदार के वकील (सुद्धन लाल और अयोध्या प्रसाद जो ताल्लुकेदार के खास आदमी थे) ने इसकी शिकायत कर्नल स्लीमैन से की। इस बीच एक सेवक महमूद हुसैन परगने में वसूली करता रहा। गोरखपुर फ्रंटियर के पास रामदत्त के भाई किशनदत्त और आमिल के आदमियों में एक बार फिर मुठभेड़ हो गयी। किशनदत्त भाग कर उस सकरी नदी को पार करने का प्रयत्न करने लगा जो दो देशों को विभाजित करते हुए बहती थी। आमिल के आदमियों ने किशनदत्त को गिरफ्तार करने की कोशिश की। झगड़े में एक बंदूक की गोली नदी के दूसरी ओर विश्वासमित्र नामक एक ब्राह्मण के लग गयी। वह बेचारा वहीं पर गेहूँ में घुन की तरह पिस गया। ब्रिटिश अफसर श्री "..........." ने रेजिडेंट के पास इसकी सूचना भेजी। साथ ही अवध सरकार से कहा गया कि मोहम्मद हुसैन नामक आमिल को फौरन बरखास्त कर दिया जाय। इसके साथ ही रामदत्त के मारे जाने की भी शिकायत की गयी। बादशाह ने ब्रिटिश सरकार से संबंध बनाये रखने के लिए आमिल को बरखास्त कर दिया और रेजिडेंट के कहने के अनुसार उस पर हत्या का मुकदमा दायर कर दिया। यह मामला अवध के सर्वोच्च न्यायालय यें पेश किया गया। यहाँ के सर्वोच्च अधिकारी मुजताहिदुलुस्सर थे। मामले की बाकायदा जाँच-पड़ताल जारी थी। इसी के दौरान में मोहम्मद हुसैन ने एक वकील को गोरखपुर भेजा जिससे कि वह उस जिले के सर्वोच्च अधिकारी से विश्वासमित्र नामक ब्राह्मण की मृत्यु के संबंध में जाँच-पड़ताल करे और उससे यह शिकायत भी करे कि केवल मैजिस्ट्रेट की शिकायत पर बिना जाँच-पड़ताल किये मोहम्मद हुसैन को कैसे बर्खास्त कर दिया गया। गोरखपुर के उस अधिकारी ने बतलाया कि इसमें उसका कोई हाथ नहीं है। वास्तव में मोहम्मद हुसैन पूर्णतया निर्दोष है। लेकिन अपने इस मत को कागज पर लिखित रूप से प्रकट करने का साहस संचित करने में वह असमर्थ रहा। अत: इसे लिख कर देने को तैयार

१. तम्बू में पर्दे लगा कर किया जाने वाला विभाजन

न हुआ। मोहम्मद हुसैन के वकील ने सारी बातें ज़िला कमिश्नर को कह सुनायीं। कमिश्नर ने जाँच करके आमिल मोहम्मद को इस संबंध में पूर्ण निर्दोष घोषित कर दिया और अपना निर्णय लेफ्टिनेंट गवर्नर के पास भेज दिया। रामदत्त की हत्या के आरोप से मुक्ति उसे दो बातों के आधार पर दी गयी थी। पहली बात तो यह कि आमिल और रामदत्त के आमिदयों की लड़ाई के समय वह घटानस्थल पर उपस्थित न था। दूसरी बात यह कि आमिल ने ऐसे कोई आदेश भी न दिये थे कि किसी की हत्या कर दी जाय। अतः प्रत्यक्ष या परोक्ष किसी भी रूप में उसे दोषी नहीं ठहराया जा सकता था। इन्हीं बातों के आधार पर मुजताहिदुलुस्सर ने उसे निर्दोष माना था। सर्वोच्च न्यायालय के इस निर्णय को जब रेजिडेंट के पास भेजा गया तो उसने इसे मानने से साफ इनकार कर दिया और कहा कि आमिल का मुकदमा या तो उनके पास भेजा जाय या फिर गोरखपुर के मैजिस्ट्रेट के पास। बादशाह ने इसे मानने से इनकार कर दिया। तब रेजिडेंट (कर्नल स्लीमैन) ने सारी परिस्थिति भारत सरकार के सामने रखी। भारत सरकार ने ठीक ही उत्तर दिया कि रेजिडेंट ने इस मामले की जाँच अपने हाथ में ले ली है, यह अच्छा ही है। लेकिन यदि यह कदम शुरू में उठाया जाता तो ज्यादा अच्छा रहता।

सन् १८५० में जाड़े के मौसम में सारे अवध का दौरा करने के लिए कर्नल स्लीमन इससे भी अधिक प्रयत्नशील थे। इसका विरोध अवध की सरकार ने ही नहीं, वरन् ब्रिटिश सरकार ने भी किया। लेकिन बादशाह ने इसे स्वीकार कर लिया। रेजिडेंट अपने इरादों से तनिक भी डिगे नहीं। उन्होंने बादशाह से पाँच मील दूर 'चिनहट' नामक एक स्थान पर जाने का इरादा प्रकट किया। बादशाह ने लाख समझाया कि ऐसी छोटी जगह में जाकर उन्हें कष्ट ही मिलेगा, लेकिन रेजिडेंट ने एक न सुनी। कर्नल स्लीमन ने पूरे राज्य का दौरा करके बड़े ही ज़ोर-शोर से शिकायतों और बादशाह के विरुद्ध अन्य प्रकार की सामग्री जुटाना शुरू कर दिया। ये सब सूचनाएँ जमा करके लॉर्ड डलहौजी के पास भजी जाती थीं। इन पर बड़ी शीघ्रता में निणय करके आदेश दिये गये थे। बाद में मत में कुछ परिवर्तन हो जाने से इन आदेशों के बिल्कुल विपरीत आदेश जारी किये गये। अतः इनके विषय में काफी भ्रम[१] उत्पन्न हो गया। इस प्रकार सन् १८०१

१. इस दौरे के बीच बसी अली और गंगाबख्श वाले झगड़े की शिकायत कई लोगों ने आकर कर्नल स्लीमैन से की। इस घटना का हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं। कर्नल ने दौरे से लौटते ही, बंदूकधारी सैनिकों के दो दस्ते १० वीं एन० आई० की दो कम्पनियाँ, अवध के कुछ स्थानीय पैदल सैनिक और बादशाह के कुछ सैनिकों को किला घेर लेने के लिए भेज दिया। रेजिडेंट से बादशाह ने कई बार प्रार्थना की कि इन सैनिकों

वाली संधि का एक बार पुनः उल्लंघन किया गया और अवध सरकार पर कर्नल ने इन सबके उत्तरदायित्व का आरोप लगाया। इस दौरे के खर्च के लिए अवध सरकार से तीन लाख रुपयों की भी माँग की गयी। परिणामस्वरूप अवध सरकार के अधिकारों का तो हनन हुआ ही, मिलने वाले कर में भी भारी कमी हो गयी। इसी के आधार पर बाद में भी अवध सरकार पर दोषारोपण करने के अवसर आते रहे।

सारांश यह है कि अवध सरकार के कामों में हस्तक्षेप किया जाता रहा और अवध के विरुद्ध जो भी सच या झूठ समाचार होते, उन्हें मान कर अवध सरकार को बदनाम किया जाता रहा। बादशाह से असंतुष्ट लोगों के नामों की एक सूची बनायी जाने लगी। इसमें लोगों ने अवध के शासन-कुप्रबंध की शिकायतें की थीं और इच्छा प्रकट की थी कि ईस्ट इंडिया कंपनी अवध का शासन-भार सँभाले। सन् १८५४ के गर्मी के दिनों में कर्नल स्लीमैन का स्वास्थ्य बिगड़ने लगा और उसे अवकाश-ग्रहण करने तक की अवधि के लिए

को वापस बुला लिया जाय, परंतु बादशाह की प्रार्थना पर किसी ने ध्यान न दिया। किले के लोगों को आश्वासन तक नहीं दिया गया कि यदि वे आत्मसमर्पण कर देंगे तो उनके आरोपों की निष्पक्ष रूप से जाँच की जायगी। बिना कुछ सोचे-समझे ही किले के आदमियों पर आक्रमण कर दिया गया। किले के द्वार पर उपस्थित व्यक्तियों को १०वीं एन० आई० के एक नौजवान अधिकारी ने गोली का निशाना बना दिया और द्वार खुलवा कर बंदूकधारी सैनिकों के एक दस्ते को किले में प्रविष्ट करा दिया। इन लोगों ने किले में रहने वाले चौबीस या पचीस सिपाहियों को मौत के घाट उतार दिया या घायल कर दिया। लेफ्टिनेंट एलर्टन पर आक्रमण करके उन्हें भी मार डाला गया। किले के बचे-खुचे लोग अपनी जान बचाने के लिए जंगलों में जा छिपे। इन लोगों का पीछा किया गया। एक दिन सबेरे ही जंगल के कुछ लोगों पर आक्रमण करके उन्हें मार डाला गया। मृतकों में दो स्त्रियाँ भी थीं। ये अभागे व्यक्ति कुछ ग्रामीण थे जो सैनिकों के आने का समाचार सुन कर अपने प्राणों की रक्षा के लिए जंगलों की शरण लिये हुए थे। इन लोगों से किले की लड़ाई का कोई संबंध न था। वैसे कहा तो यही गया था कि वे गंगाबख्श के आदमी थे, लेकिन यह बिलकुल झूठ है। जिस गाँव में यह दुःखद घटना घटित हुई थी। पूरा तहस-नहस कर दिया गया। बरबादी के लिए बहाना यह गढ़ लिया गया कि गंगाबख्श एक डाकू था और एक व्यक्ति की हत्या भी कर चुका था। बात वास्तव में यह थी कि इससे सत्रह वर्ष पूर्व जमीन की हद के संबंध में कोई झगड़ा उठ खड़ा हुआ था जिसमें विरोधी दल का एक आदमी मारा गया था।

अपने एक डिप्टी के हाथों में यह भार सौंपना पड़ा। कर्नल स्लीमैन की मृत्यु हो जाने के बाद उसके द्वारा छोड़े गये कार्य को पूरा करने का भार जनरल आउटरम पर पड़ा। उन्होंने भी लॉर्ड डलहौज़ी के इच्छानुसार ही सामग्री जुटानी शुरू कर दी। लॉर्ड डलहौज़ी के पत्र के उत्तर में उन्होंने भी अवध के विषय में काफी भ्रम पैदा करवा दिया। अवध सरकार पर उतनी ही खूबसूरती से दोषारोपण करने आरंभ किये जिस तरह कर्नल स्लीमैन ने किये थे।

# अध्याय ८

## जनरल आउटरम के द्वारा कॅर्नल स्लीमॅन के अधूरे काम की पूर्ति

२४ नवम्बर, १८५४ को सर्वोच्च परिषद् की ओर से कर्नल स्लीमैन के अधूरे काम को पूरा करने के लिए जनरल आउटरम नियुक्त किये गये। देश की जाँच करके तत्संबंधी सूचनाएँ देने का कार्य भी उन्हें सौंपा गया। उन्हें यह सूचित करना था कि "ठीक से पता लगा लें कि जिन मामलों का उल्लेख कर्नल स्लीमैन समय-समय पर करते रहते थे क्या अब भी वे उसी रूप में हैं ?" दूसरे शब्दों में उनसे पूछा जा रहा था कि अपने पूर्वाधिकारी (कर्नल स्लीमैन) के विवरण का समर्थन करने के लिए क्या वे सहमत हैं ? जनरल आउटरम बड़े ही उत्साही अधिकारी के रूप में प्रसिद्ध थे। दिसम्बर की पाँच तारीख को वे लखनऊ पहुँचे और १५ को उनकी जाँच पूरी हो गयी और जाँच का विवरण भी तैयार कर लिया गया। इसी के आधार पर बादशाह के भाग्य का निर्णय होना था।

उनकी जाँच का यह विवरण बड़ी ही बुद्धिमत्ता से बनाया गया था। 'अवध ब्ल्यू बुक' में इसका उल्लेख किया गया है। अवध की दशा के विवरण को निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत विभाजित करके प्रदर्शित किया गया था—१. बादशाह। २. कर एवं आर्थिक स्थिति। ३. अदालतें और पुलिस। ४. सेना। ५. सड़कों की दशा और जनहित के कार्य। ६. अपराध संबंधी आँकड़े। ७. अत्याचार एवं निर्दयता इत्यादि। इन विभाजनों को हम उन तीरों की संज्ञा दे सकते हैं जो लॉर्ड डलहौज़ी ने अपने तरकश में भर रखे थे। ये तीर काफी पैने न सिद्ध हुए। क्योंकि जनरल आउटरम की निम्नलिखित स्वीकारोक्ति की उपेक्षा कर पाना बड़ा कठिन है। इसमें उन्होंने साफ शब्दों में यह कहा है—"यह विवरण मैंने अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर नहीं तैयार किया है, बल्कि रेजिडेंसी के सुरक्षित आलेखों (दस्तावेज़ों) पर पूर्णरूप से निर्भर रहा हूँ। इसमें अपने पूर्व अधिकारी (कर्नल स्लीमैन) से प्राप्त सामग्री की पुष्टि मात्र की गयी है।" तात्पर्य यह कि इस विवरण की भाषा तो आउटरम की है, लेकिन भाव वही है जो स्लीमैन का था।

अब इस जाँच-विवरण को यहीं छोड़ कर हम आगे की घटनाओं का वर्णन करेंगे। जिस समय जनरल आउटरम लखनऊ में रेजिडेंट थे, एक उपद्रव हो गया। इसे 'हनुमान

उपद्रव' कहा जाता है। उस उपद्रव को बड़ा तूल दिया गया क्योंकि इसे सरकार अपनी लूट के लिए खेले जा रहे नाटक का पटाक्षेप बनाना चाहती थी। बात यह हुई कि उस वर्ष हिंदुओं का कोई खुशी का त्योहार और मुसलमानों के शोक प्रकट किये जाने वाले त्योहार एक ही तारीख में पड़ गये। सारे भारतवर्ष में कई जगहों पर हिंदू-मुस्लिम दंगे भी इसी के कारण हो गये। हिंदुओं का कहना था कि उनकी खुशी के त्योहार के दिन किसी को शोक नहीं प्रकट करने दिया जायगा जब कि मुसलमान कहते थे कि उनके दुःख के अवसर पर किसी को खुशी नहीं मनाने दी जायेगी। अतः दिल्ली, इलाहाबाद, आगरा, अजमेर तथा कई अन्य नगरों में बड़ी तनावपूर्ण स्थिति पैदा हो गयी। लेकिन अवध की स्थिति बड़ी चिंताजनक हो गयी क्योंकि अमीर अली ने सारे हिंदुओं को जान से मार डालने का निश्चय कर लिया था। अवध का शाही खानदान भी मुसलमानों का ही था, लेकिन इस प्रकार के उपद्रवों से दूर ही रहता था। ऐसे अवसर पर कंपनी के मतानुसार चलने का निर्णय करके बादशाह ने अपनी जागरूकता का परिचय दिया। जब तक जनरल आउटरम की ओर से लिखित रूप में इस संबंध में आज्ञा नहीं प्राप्त हो गयी, बादशाह ने कोई भी कदम इस ओर न उठाया। आज्ञा प्राप्त हो जाने के बाद बादशाह ने अपने संप्रदाय के लोगों के प्रति सहानुभूति की भावना को एक ओर रख उपद्रवियों का कठोरता से दमन करने के आदेश जारी कर दिये। बड़ी शीघ्रता से स्थिति पर काबू पा लिया गया और उपद्रव दबा दिये गये। इन दंगों का कोई स्थायी कारण तो था नहीं, अतः बाद में किसी भी तरह के दंगे-फसाद नहीं हुए। लेकिन ब्रिटिश कंपनी ने इसी के आधार पर अपनी सेनाओं को लखनऊ से वापस बुला लेने का निर्णय किया। मगर सेनाओं को वापस बुलवाने के लिए अवध पर कुछ दोषारोपण भी-तो होना चाहिए था। अतः आरोप लगाया गया कि इन सब परिस्थितियों से ब्रिटिश लोगों को अंधकार में क्यों रखा गया। इसलिए लखनऊ से सेनाएँ वापस बुलवा लेने में क्या हर्ज है। (अवध ब्ल्यू बुक, पृष्ठ ३००)। अच्छा बहाना था कि ब्रिटिश लोगों को अंधकार में क्यों रखा गया है? भला इसे कौन मानेगा कि ब्रिटिश लोगों को कुछ पता हीं न चला हो?

इन सब सेनाओं को हटा लेने का तो कभी निश्चय भी नहीं किया गया था। ऐसी घटनाओं की रोक-थाम के लिए उन्हें रखा जाना आवश्यक था। मेजर आउटरम ने पुरानी किंतु संदिग्ध प्राप्य सामग्री के द्वारा अपने अनुभव के आधार पर जो विवरण तैयार किया था, वह लार्ड डलहौज़ी की उद्देश्यपूर्ति के लिए काफी था। १८ जून को लार्ड डलहौज़ी ने स्वयं ही एक 'मिनिट' तैयार किया। इस पत्र में उसने सन् १८३७ वाली संधि को अस्वीकृत घोषित कर दिया। (सुविधा के लिए इसके सम्बन्ध में हम बाद में बतायेंगे।) और केवल सन १८०१ वाली संधि पर ही ध्यान दिया। यह भी प्रस्ताव रखा

गया कि रेजिडेंट इसे भी अमान्य घोषित करके अवध के बादशाह से नयी संधि स्वीकार करने के लिए कहे। इससे ब्रिटिश सरकार और अवध शासक के बीच हुई पिछली सभी संधियाँ अमान्य समझी जानी थीं। इसके अनुसार अदालतों और सेना का संचालन ईस्ट इंडिया कंपनी के हाथों में दिया जाना निश्चित किया गया। इन प्रस्तावों पर सर्वोच्च परिषद् के सदस्यों में बड़ा वादविवाद हुआ। लार्ड डलहौज़ी ने सुझाव दिया कि बादशाह को गद्दी से हटाया तो न जाय, परंतु उसके अधिकार छीन लिये जायँ और उसकी स्थिति तंजौर के राजा (अवध ब्ल्यू बुक, पृष्ठ १८८, १८९) की तरह की रखी जानी चाहिए। लार्ड डलहौज़ी ने यह प्रस्ताव भी रखा कि बादशाह को करों से प्राप्त होने वाले लाभ पर कंपनी का अधिकार रहेगा। उसने पहले से यह अनुमान कर लिया था कि इस प्रस्ताव का विरोध अवश्य किया जायेगा (वही, पृष्ठ ९२)। डोरिन का तो मुख्य उद्देश्य ही यह था कि अवध को कंपनी के अधिकार में लेकर बादशाह को सम्मान से वंचित कर दिया जाय (वही, पृष्ठ १९२)। इसी से ग्रांट ने बादशाह की स्वीकृति लिये बिना ही पिछली सभी संधियों की अवहेलना करके बादशाह के भक्तों को कम से कम करने के लिए कटिबद्ध हो गया था (वही, पृष्ठ २१९)। वैसे तो मेजर जनरल लो भी कुछ ऐसे ही विचार रखते थे। जहाँ तक आय या अधिकारों का प्रश्न है (वही, २२३–२२४) वे इनकी अपेक्षा कहीं अधिक उदार थे। पीकॉक बादशाह से उसका राज्य लेते समय उसे कुछ भाग पर शासन का केवल अधिकार ही नहीं, बल्कि कंपनी को मिलने वाली वहाँ से प्राप्त करों की आय को अवध के लिये ही व्यय करने की छूट देने के इच्छुक थे (वही, २३२)। पीकॉक एक प्रसिद्ध वकील था। वह अच्छी तरह से जानता था कि ब्रिटिश लोगों की जूरी के सामने इस प्रकार के प्रस्ताव रखने पर क्या-क्या परेशानियाँ उठ खड़ी हो सकती हैं। फिर भी 'अवध ब्ल्यू बुक' के पृष्ठ २३२ पर उसने अपनी इस इच्छा को प्रकट किया है। उल्लेखनीय बात तो यह है कि न तो उसने और न उसके किसी साथी ने ही लॉर्ड डलहौज़ी को उस प्रस्ताव के औचित्य के संबंध में संतुष्ट करने का कोई प्रयास किया। सन् १८३७ की संधि पर तो किसी ने किंचित् ध्यान न दिया। इस महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पर विचार किये बिना ही परिषद् ने निर्णय ले लिया।

इन "मिनिटों" के अतिरिक्त लॉर्ड डलहौज़ी ने "अवध ब्ल्यू बुक" में ३ जुलाई, १८५५ को एक पत्र लिखा जिसका अनेक दृष्टिकोणों से उल्लेख करना आवश्यक हो गया है। 'अवध ब्ल्यू बुक' में यह पत्र सबसे पहला पत्र है। इसमें उसने अवध के विषय में लिखा है कि "वह अपना कर्त्तव्य पालन करने के लिए तैयार है।" फिर अपने आठ वर्षों के अनुभव तथा शासन की ओर से दिये जाने वाले सुअवसर का उल्लेख किया गया है। वह यह उल्लेख करना भी नहीं भूला कि "जो महत्त्वपूर्ण एवं भारी कार्य का उत्तरदायित्व

उसे सौंपा गया है उसके द्वारा वह उन उद्देश्यों की पूर्ति करके और अधिक सेवा कर सकगे।"[1] इस पत्र को निर्देशकों की एक सभा में प्रस्तुत किया गया। २१ नवम्बर, १८५५ के एक आदेश-पत्र में लॉर्ड डलहौज़ी के प्रस्तावों को स्वीकार कर लिया गया। अब उसे मन-मानी कर सकने की छूट मिल गयी थी। निर्देशकों ने इस पत्र में (अवध ब्ल्यू बुक, पृष्ठ २३६) लॉर्ड डलहौज़ी को आदेश दिया था कि अपना कार्य करते रहिये। इसमें संदेह नहीं कि इसके लिए आप से अच्छा कोई दूसरा व्यक्ति नहीं है। और हम आपको किसी प्रकार के बंधनों में नहीं रखना चाहते हैं। फिर भी हमें, दोषारोपण से बचाये रखने और प्रत्येक परिस्थिति में परिणाम के अनुकूल होने का ध्यान रखें।

सन १८५५ के लगभग अंत में गवर्नर जनरल ने परिषद में आदेश जारी किये कि कानपुर में सैनिक शक्ति बढ़ाकर अवध की सैन्य शक्ति के बराबर कर दी जाय जिससे किसी भी आकस्मिक परिस्थिति का सामना कर सकने के लिए वह काफी हो। इसके फलस्वरूप वर्तमान सेना के अतिरिक्त १३,००० सैनिकों की और वृद्धि की गयी। जब मेजर जनरल को सैनिक शक्ति से संतोष हो गया तो उसे आदेश दिया गया कि वह लख-नऊ दरबार से संपर्क स्थापित करने के लिए सेनाओं को तैयार रखें। इसके उद्देश्य लखनऊ दरबार के पास भेज गये पत्र में दिये गये थे।

इस बीच अवध की सरकार थोड़ी चौकन्नी भी हो गयी क्योंकि इतना आभास तो हो ही गया था कि कोई उपद्रव होने वाला है, किन्तु किस प्रकार का उपद्रव होगा, यह जानने

१. **"यह हमारी प्रबल इच्छा रही है कि जिस महत्त्वपूर्ण कार्य का अधिकार हमें मिला है उसे कार्यान्वित करने का उत्तरदायित्व किसी योग्य व्यक्ति पर छोड़ा जाय। आप जैसे व्यक्ति, जो इतने समय से भारत के ब्रिटिश राज्य के कार्य संचालन को बड़ी योग्यता से निभाते आये हैं, इसके लिए सबसे उपयुक्त व्यक्ति हैं। आपने इस विषय पर काफी ध्यान दिया है। आपने बड़ी कुशलता से अपना कार्य संचालित किया है। आपकी योग्यता और निर्णय में विश्वास रखते हुए, आपकी सरकार के अन्य सदस्यों के सुझाव पर हम भविष्य में अपनी ओर से किसी प्रकार का कोई आदेश नहीं भेजेंगे। हम आपको किसी प्रकार के बंधनों में बाँधकर नहीं रखना चाहते। हमें पूर्ण विश्वास है कि आप किसी भी कार्य के लिए जो भी क़दम उठायेंगे उसका परिणाम अच्छा ही होगा, साथ ही किसी प्रकार के झगड़ों या अमानवीय व्यवहार की नौबत नहीं आने देंगे।**

**हम हैं आपके,**
**ई० मैकनागटन**
**डब्लू० एच० साइकेस इत्यादि, इत्यादि**

में अवध सरकार असमर्थ रही। अवध सरकार यह पता लगाना चाहती थी कि इस रहस्य-पूण ढंग से सैनिकों की संख्या में वृद्धि किये जाने के क्या अर्थ हैं। लेकिन गवर्नर जनरल के दरबार में उनका कोई वकील न था क्योंकि इस संबंध में गवर्नर जनरल ने लिखित आदेशों के द्वारा मनाही कर दी थी। अत: इनकी कोई उचित व्याख्या कर पाना संभव ही न था। जनवरी, १८५६ के प्रारंभ में ही जनरल आउटरम कलकत्ता गये हुये थे। उनकी अनुपस्थिति में कैप्टेन हापेस से पता लगाने की कोशिश की गयी कि कानपुर में इतनी बड़ी सेना की क्या आवश्यकता पड़ गयी। मंत्री की ओर से विश्वास दिलाया गया कि नेपाली सेनाएँ नानपारा की ओर से प्रवेश करना चाहती हैं। उनको पीछे हटाने के लिए ही सैनिक शक्ति इतनी बढ़ायी गयी है। यह वचन इतने पवित्र भाव से दिया गया कि इसके पीछे किसी बुरी भावना की स्वप्न में भी कल्पना नहीं की जा सकी। वास्तव में अवध के अधिकारियों और बादशाह को इस ओर से आँखें मूंद लेने के लिए यह चाल खेली जा रही थी। जनरल आउटरम ने कलकत्ते से लौटते ही अपना असली रूप प्रकट कर दिया। ३० जनवरी को अवध में शहीद दिवस की वर्षगाँठ मनायी जा रही थी। उसी दिन जनरल आउटरम ने अवध के मंत्री को रेजिडेंसी में आने के लिए आमंत्रित किया। वहाँ पहुँचने पर मंत्री को सूचित किया गया कि ब्रिटिश सरकार ने राज्य को अपने अधि-कार में लेने का निश्चय किया है। किसी प्रकार का उपद्रव न हो सके इसके लिए सैनिकों के एक शक्तिशाली दस्ते को गंगा पार करके राजधानी की ओर बढ़ने का आदेश दिया जा चुका है। मंत्री को इससे बड़ा आश्चर्य हुआ और साथ ही दु:ख भी। इस अनूठी चाल-बाज़ी से मंत्री हतप्रभ होकर रह गया। मेजर जनरल आउटरम ने मंत्री को विश्वास दिलाना चाहा कि बादशाह भी इससे महमत होंगे। मंत्री ने उत्तर देते हुए कहा कि बादशाह से उनका राज्य छीने जाने का यह अनुबंध स्वीकार किया जाना बहुत मुश्किल है। इसके बाद मंत्री ने अपने बादशाह के शासन की तुलना उनके पूर्वाधिकारियों से करने का प्रयत्न किया। इसमें उसने पहले की अपेक्षा न जाने कितने गुना सुधार होने का उल्लेख किया। लेकिन रेजिडेंट ने बादशाह के पक्ष की इन बातों पर कुछ भी कहने-सुनने से इनकार कर दिया। मंत्री की एक न सुनी गयी। निराश होकर प्रधान मंत्री लौट आया और सारी बात बादशाह से कह सुनायी। बादशाह यह सुनकर और भी ज्यादा हैरान तथा निराश हुआ। १ फरवरी को उसने रेजिडेंट के नाम एक पत्र लिखा जिसमें लिखा कि जब से उसे शासन का अधिकार मिला है, अपनी समझ से ब्रिटिश सरकार के प्रति कोई भी अपराध नहीं किया। लॉर्ड हार्डिंग से मिलने के बाद शासन,

१. "हाउ टु मेक एण्ड हाउ टु ब्रेक ए ट्रीटी", पृष्ठ ३३।

कर-वसूली तथा पुलिस के नये सिरे से प्रबंध किये गये। संधि से यह आदेश जरा भी मेल नहीं खाता। इस प्रकार का आदेश पिछली संधि के एकदम विरुद्ध है। इस पत्र का उत्तर रेजिडेंट ने उसी दिन भिजवा दिया जिसमें लिखा कि बादशाह के किसी भी तर्क या सूचनाओं के संबंध में वह कुछ भी सुनने को तैयार नहीं है। अतः बादशाह को तीन दिन का समय दिया गया था कि वह इसे स्वीकार कर ले। रेजिडेंट इस निर्णय में थोड़ा भी हेर-फर करने के लिए तैयार न था। तीन दिन के बाद बादशाह को इस आदेश पर स्वीकृति के हस्ताक्षर करने के लिए बुलवाया जाना था। यह अवधि किसी भी कीमत पर बढ़ायी नहीं जा सकती थी। ईस्ट इंडिया कंपनी के इस अन्यायपूर्ण कार्य का विरोध करने का साहस बादशाह को नहीं हुआ। उसने अपनी सेनाओं को निःशस्त्र कर देने का निश्चय कर लिया। ऐसा इसलिए किया गया कि ईस्ट इंडिया कंपनी को अन्यायपूर्ण कार्यों का कोई बहाना न मिल सके।[१] अपने मातहतों को आदेश दे दिये कि अवध की ओर बढ़ती हुई सेनाओं के साथ शांति एवं मित्रतापूर्ण व्यवहार प्रदर्शित करें। तीसरे दिन रेजिडेंट अपने सहकारी सहित बादशाह के भवन पर आया। बादशाह के संतरियों के हाथों में लाठियों के अतिरिक्त उन्हें कोई और हथियार न दिखाई दिये। ४ फरवरी को प्रातः आठ बजे के लगभग मेजर आउटरम दो सेनाधिकारियों को लेकर बादशाह के भवन पर पहुँचे। यहीं पर आधिकारिक रूप में विधिवत् घोषित कर दिया गया कि सन् १८०१ वाली संधि को समाप्त समझा जायगा। इसके बाद सात शर्तों वाली एक नयी संधि बादशाह के सामने प्रस्तुत की गयी। इसमें उसे घोषित करने को कहा गया कि पिछली संधियों को वह स्वयं भंग करते आ रहा था और उसका यह कार्य निंदनीय था। संधि की पहली शर्त के अनुसार बादशाह को यह भी घोषित करना था कि उपर्युक्त कारणों

१. बादशाह का यह निश्चय वास्तव में सराहनीय था। वह भली-भाँति जानता था कि उसकी सेना के सारे हिंदू और मुसलमान सैनिकों की यह प्रतिज्ञा है कि अपने शासक और देश की रक्षा के लिए वे लड़ते-लड़ते प्राण गवाँ देने में भी नहीं हिचकिचायेंगे। दूसरी ओर ब्रिटिश सिपाहियों ने, जो अधिकतर अवध के ही रहने वाले थे, अपने भाइयों तथा दूसरे रिश्तेदारों पर गोली चलाने से इनकार कर दिया था। राजाओं और जमींदारों ने भी बादशाह को न जाने कितनी बार विश्वास दिलाया कि यदि उसे हटाने के लिए सरकार ने जरा भी कोशिश की तो वह सब मिलकर एक लाख आदमियों और एक हजार तोप चलाने वाले सैनिकों द्वारा कंपनी से टक्कर लेंगे। लेकिन बादशाह ने यह आमंत्रण स्वीकार नहीं किया। इससे लोगों में बड़ा असंतोष फैल गया और बादशाह के प्रति लोगों की घृणा हो गयी।

से अवध की सभी प्रकार की सरकारों—सैनिक और अदालती—के संचालन की व्यवस्था ब्रिटिश कंपनी को सौंप दिये जाने चाहिए। करों पर भी ब्रिटिश सरकार का ही अधिकार रहना चाहिए। बादशाह के मन में असीम दुःख भरा था। भावावेश में उसने इस पर हस्ताक्षर करने से साफ इनकार कर दिया और कहा कि वह शासक से न्याय की भीख माँगेगा क्योंकि न्याय अब भारत में नहीं मिलेगा। लेकिन रेजिडेंट जैसे हृदयहीन व्यक्ति पर इन बातों का रत्ती पर भी प्रभाव न पड़ा और वह अपनी बात पर अड़ा रहा। अंततः बादशाह को झुकना पड़ा।

७ फरवरी, १८५६ को मेजर जनरल आउट्रम ने एक आदेश जारी कर दिया। यह पहले से ही कलकत्ते में तैयार कर लिया गया था। इसमें घोषित किया गया था कि "अवध की सरकार ने अपने राज्य को सदैव के लिए ईस्ट इंडिया कंपनी को समर्पित कर दिया है। न्याय-व्यवस्था के संचालन के लिए हर विभाग में कई कमिश्नरों और अधिकारियों की नियुक्ति भारी तनखाहों पर की गयी। यह वेतन अवध राज्य की आय से दिया जाता था। अवध की सेना के आदमियों ने ब्रिटिश कंपनी की चाकरी करने से इनकार कर दिया। इतना ही नहीं, कई उच्च अधिकारियों को भी ईस्ट इंडिया कंपनी की दासता स्वीकार नँ हुई। उन्हें बड़े-बड़े लालच दिये गये। भारी वेतन देने और नये-पुराने सभी लोगों को एक जैसे पद दिये जाने तथा अन्य कई प्रकार के लालच बार-बार दिये जाने पर भी काफी लम्बे समय तक ये प्रयास असफल ही रहे। इन लोगों ने बादशाह पर बाकी पैसा भी लेने से इनकार कर दिया। एक बहादुर सूबेदार ने अपने साथियों से साफ कह दिया कि वह और उसके पूर्वज लगभग चालीस वर्षों से बादशाह की सेवा करते चले आये हैं। अब किसी दूसरे की सेवा करना उसे स्वीकार नहीं। इन घटनाओं को ब्रिगेडियर ग्रे-जैसे सक्रिय अधिकारी भी झूठा नहीं साबित कर सकते थे। ऐसे बहादुरों को भले ही विद्रोही कहा गया हो, लेकिन वास्तव में उन्होंने जानबूझ कर खतरा मोल-लेकर भी अपने शासकों एवं राजकुमारों के प्रति भक्ति-भावना ही प्रदर्शित की थी।

बादशाह ने स्वयं जाकर इंगलैंड प्रशासन से न्याय की माँग करने के लिए एक प्रार्थना-पत्र लिखा जिस पर रेजिडेंट की स्वीकृति लेने की आवश्यकता थी। लेकिन रेजिडेंट ने इस प्रार्थना-पत्र पर स्वीकृति देने की प्रार्थना को बड़ी ही असभ्यता से ठुकरा दिया और बादशाह की इच्छापूर्त्ति करने से एकदम इनकार कर दिया। उसने बादशाह के उस दुर्भाग्य पर थोड़ा भी तरस न खाया। इतनी ही हृदयहीनता दिखा कर रेजिडेंट संतुष्ट न हुआ, वरन् बादशाह के मंत्री सैयद अली नकी[१] खान को हिरासत में ले लिये जाने का आदेश

**१. टिप्पणी :—अली नबी खाँ मछरेहटा, जिला सीतापुर का था। वह बादशाह का श्वसुर था। उसके साथ विश्वासघात किया गया।**

भी जारी करवा दिया। सैयद अली नकी खाँ दिल्ली के एक परिवार का सभ्य और संभ्रांत व्यक्ति था। अपने राजनीतिक जीवन के प्रारंभ से अंत तक ब्रिटिश सरकार के प्रति अनुरक्त रहा। ब्रिटिश अधिकारियों की प्रशंसा का पात्र भी रह चुका था। इसी समय कई उच्चाधिकारी भी हिरासत में ले लिये गये और लखनऊ में ब्रिटिश अधिकारियों के आगे पेश किये गये। जिन विवरणों, जनहित कार्यों के लेखे-जोखों तथा अन्य महत्त्वपूर्ण कार्यों के दस्तावेज़ों से बादशाह को अपनी पूर्वस्थिति प्राप्त कर लेने में ज़रा भी सहायता मिल सकती थी—रेजिडेंट के अधिकारियों ने अपने कब्ज़े में ले लिये। प्रधान मंत्री को ज़मानत देनी पड़ी कि वे लखनऊ के बाहर कहीं नहीं जायेंगे। वित्त मंत्री, राजा बालकृष्ण, सरकार के लेखा-जोखा रखने वाले बाबू पूर्णचंद आदि के साथ भी यही किया गया। अतः बादशाह को अपने अधिकारों को पुनः प्राप्त करने में अब इन अधिकारियों की सहायता नहीं मिल सकती थी क्योंकि उनके अधिकार संबंधी सभी प्रमाण अब उनके हाथों से निकल चुके थे। बादशाह को भी बाहर न जाने देने की कोशिश की गयी। इसलिए बादशाह के निजी बाईस नौकरों-चाकरों को गिरफ्तार कर लिया गया और उसकी घोड़ा-गाड़ी भी छिन गयी। बादशाह कुछ लोगों के साथ किसी प्रकार बाहर निकल ही आया और वह तथा उसका परिवार अपनी फरियाद इंगलैंड की पार्लियामेंट में पेश करने के लिए रवाना हो गया।

अवध के साथ ही बादशाह की कोई भी वस्तु छिनने से बच न पायी। बादशाह के महलों, पार्कों, वाटिकाओं, हीरे-जवाहरात, घरेलू साज-सज्जा के सामान, गोदामों, वस्त्रागारों, कई दुर्लभ वस्तुओं, शाही संग्रहालय एवं दो लाख दुर्लभ पुस्तकों और हस्तलिखित ग्रंथोंवाले पुस्तकालय आदि सभी कुछ छीन लिये गये। इसके अतिरिक्त बादशाह के पास अरबी, फारसी और विलायती घोड़ों, लड़ने, सामान लादने और शिकार खेलने के हाथियों, ऊँटों, कुत्तों तथा अन्य चौपायों की एक अच्छी-खासी संख्या थी। इन्हें सार्वजनिक रूप से नाममात्र के दामों पर नीलाम करवा दिया गया। बादशाह के अत्यंत दुर्लभ एवं बहुमूल्य हथियारों को भी कब्ज़े में ले लिया गया। बाद में ये हथियार बाज़ार में बेच दिये गये। बादशाह को संधिपत्र पर हस्ताक्षर करने को राज़ी करने के लिए जनरल आउटरम ने राजमाता को कुछ रिश्वत[1] का भी लालच दिया था। शाही घराने की औरतों के साथ भी बड़ा कठोर और अमानुषिक व्यवहार किया गया।

१. "यदि राजमाता बादशाह को संधिपत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए सहमत कर लेंगी, उन्हें एक लाख रुपये वार्षिक भत्ते के रूप में मिलते रहेंगे"

—अवध ब्ल्यू बुक, पृ० ९१, अनुच्छेद २८-५६।

उनके बार-बार विरोध तथा प्रार्थना करने पर भी उन्हें २३ अगस्त, १८५६ को राजनीतिक कमिश्नर के पास भिजवा दिया गया। बेचारी औरतों को ज़बर्दस्ती छतर मंजिलवाले राजभवन से निकाल बाहर किया गया। इस प्रकार शाही घराने की औरतें सड़क की धूल फाँकने के लिए विवश कर दी गयीं। उनकी सारी इज्ज़त और दौलत धूल में मिला दी गयी। धन के नाम पर बेचारियों के पास एक दमड़ी तक न रहने दी गयी। शाही घरानों को नष्ट-भ्रष्ट करके वहाँ के लोगों की इतनी दुर्गति करना, जिससे वे सड़कों पर मारे-मारे फिरने लगें—इसे विनाश के लिए प्रयुक्त की गयी प्रणाली का अंतिम चरण समझना चाहिए। बेचारे अवध के शासकों को "सच्ची मित्रता और एकता करने" का यही पुरस्कार मिला। इस प्रकार ब्रिटिश कंपनी की लूट या डकैती का अन्त हुआ। इसी के आधार पर ईस्ट इंडिया कंपनी तथा लॉर्ड डलहौज़ी को हम इस लूट का मुख्य कारण मानते हैं।

## अध्याय ९

## "अवध ब्ल्यू बुक" के आरोप और उनके संम्बंध में अलग-अलग दिये गये पूरे उत्तर

डलहौज़ी के मार्क्विस का हमने पहले भी उल्लेख किया है। "अवध ब्ल्यू बुक" में भी उसका उल्लेख मिलता है। लेकिन अब हम उस पर अधिक विस्तार से विचार करेंगे। "अवध ब्ल्यू बुक" को अवध के बादशाह के विरुद्ध एक अभियोग-पत्र कहना अधिक उचित होगा। इसमें भूत या वर्तमान, अस्पष्ट या स्पष्ट, सच्ची घटनाओं या झूठी अफवाहों पर आधारित और कभी-कभी तो एकदम सफेद झूठ—सभी प्रकार के आरोप देखने को मिल जायेंगे। क्योंकि कंपनी के प्राचीन ग्रंथागारों से जो भी सामग्री उसके प्रोत्साहित कर्मचारी ढूंढ़ सकते थे, उसका उपयोग करने का अवसर उसे प्राप्त था। इसमें निरंतर की जाने वाली जाँचों के उत्तर भी मिल जाते हैं। जाँच का कार्य उस सरकार की ओर से होता था जो बड़ी शक्तिशाली थी और अपनी नीतियों पर बड़ी दृढ़ता से चल रही थी। इस सरकार का उद्देश्य ही था कि किसी प्रकार सारे भारत पर उसका एकछत्र शासन स्थापित किया जा सके।

ब्रिटिश कंपनी के सरकारी कर्मचारी इस उद्देश्य की पूर्त्ति में अपने स्वामियों को पूरा सहयोग दे रहे थे। जब कोई नया भाग कंपनी की ओर से हड़प लिया जाता तो कंपनी को बहुत ही लाभ पहुँचता था। अतः कंपनी के लोग नित्य नये राज्यों का अपहरण करने के लिए बड़े उत्सुक रहा करते थे। लूट के ये तरीके कितने लोकप्रिय थे, इसका उल्लेख "अवध ब्ल्यू बुक" के पृष्ठ २५७–८ पर मिलता है। उल्लेख उस समय का है जब लार्ड डलहौज़ी जनरल आउटरम को इसके प्रबंध के लिए आवश्यक निर्देश दे रहे थे।

"सम्माननीय गवर्नर जनरल को आपको अवध के मामलों के लिए चीफ कमिश्नर नियुक्त करते हुए बड़े हर्ष का अनुभव होता है। इसके अतिरिक्त आप गवर्नर जनरल के एजेंट भी रहेंगे। मुझे आदेश दिया गया है कि मैं आपको उत्तरदायित्वों तथा कार्यों के विषय में समझा दूं। इससे आपको ज्ञात हो जायेगा कि उस प्रदेश की सरकार के प्रति

आपका व्यवहार किस प्रकार का होना चाहिए और आपको सरकार के प्रति आचरण के सम्बन्ध में कौन से सिद्धांतों का पालन करना चाहिए।

"आपके अधीन् एक जुडीशियल कमिश्नर, एक वित्त कमिश्नर और एक डिवीज़नों का कमिश्नर रहेगा। साथ ही सारे डिप्टी कमिश्नरों, सहायक कमिश्नरों तथा अतिरिक्त सहायकों को भी आपके नियंत्रण में रहना होगा। शासन-संचालन की प्रणाली जहाँ तक हो उसी प्रकार की होनी चाहिए जैसी सतलज पार के सभी प्रांतों में सात वर्षों से बड़ी सफलतापूर्वक कार्यान्वित होती चली आ रही है।

"चीफ कमिश्नर होने के नाते लखनऊ में रेज़िडेंट के कार्यालय से संबद्ध वेतन एवं भत्ते आपको अपने पास ही रखने होंगे। जुडीशियल कमिश्नर और वित्त कमिश्नर को ३,५०० रुपये प्रति मास वेतन मिलेगा। डिवीज़न के कमिश्नरों में से प्रत्येक को २,७५० रुपये प्रतिमास मिलेंगे। डिप्टी कमिश्नरों की तीन श्रेणियाँ होंगी जिनका वेतन १,५०० रु० से १,००० रुपये तक होगा। सहयोगी कमिश्नरों को भी श्रेणी के अनुसार ही ७०० रुपये से ५०० रुपये प्रतिमास दिये जायेंगे। अतिरिक्त सहायकों को भी तीन श्रेणियों में विभाजित कर दिया गया है। जब इन अधिकारियों की संख्या के संबंध में अंतिम निर्णय हो जायेगा तो उसी अनुपात में उनका वेतन भी रखा जायगा। सबसे पहले उदाहरण के लिए १८ अतिरिक्त सहायकों की नियुक्ति की गयी हो तो उन्हें निम्नलिखित ढंग से तीन श्रेणियों में विभाजित कर दिया जायगा :—

प्रथम श्रेणी, वेतन ६०० रुपये प्रतिमास..............३

द्वितीय श्रेणी, वेतन ४०० रुपये प्रतिमास............६

तृतीय श्रेणी वेतन २५० रुपये प्रतिमास...............९

ये अतिरिक्त सहायक दूसरे प्रदेशों में सीधे भारत सरकार के अधिकार के अंतर्गत आते हैं और इन्हें डिप्टी कलेक्टरों (उत्तरी पश्चिमी प्रदेशों में अभी तक इस पद का यही नाम है) की अपेक्षा वरीयता दी जाती है। मजिस्ट्रेटी और जुडीशियल अधिकार पाकर ये उन्हीं के बराबर में आ जायेंगे। इसमें हर श्रेणी और धर्म के लोग रहेंगे। आपके द्वारा चुने गये अधिकारियों को नियुक्त करने में गवर्नर जनरल को बड़ी प्रसन्नता होगी।

"इस समय कमीशन की कुल संख्या के संबंध में बता पाना असंभव है क्योंकि बहुत से ज़िलों की संख्या और सीमाएँ अभी तक या तो अस्पष्ट हैं या उनके संबंध में अभी तक कुछ ज्ञात नहीं हो सका है। लेकिन सरकार को जो भी जानकारी है और सन् १८०१ की संधि से जो भी पता चलता है, उसके आधार पर गवर्नर जनरल का विचार है कि उतने क्षेत्र से कर वसूल करने के लिए डिवीज़नों के चार कमिश्नरों, जिलों के १२ डिप्टी कमिश्नरों और आठ सहायकों को नियुक्त करना पर्याप्त होगा"......

इस प्रकार के उद्धरणों द्वारा निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इस प्रकार के अनुबंध का संकल्प करने के बाद उससे लाभ उठाने की आशा करना ब्रिटिश सरकार के लिए स्वाभाविक ही था। अतः वह इसके लिए प्रयत्नशील थी।

लेकिन आश्चर्य की बात तो यह है कि सरकार के पास कोई विशेष औचित्यपूर्ण आधार नहीं था जिसके लिए इतना बावेला मचाया जाय। अधिकांशतः तो इसके लिए सरकार के पास कोई प्रमाण ही नहीं है, बल्कि अफवाहों के आधार पर ही जो जी में आया कर डाला गया। "अवध में हुए अपराधों के लेखे-जोखे" (पृष्ठ १०८ से १४३ तक) में सबसे पहली घटना १ जनवरी, १८४८ को दर्ज की गयी है जिसमें देश में हुई दो हत्याओं का उल्लेख है। अंतिम घटना २९ दिसम्बर, १८५४ की है। इसके अनुसार मघराता शहर में कुछ चोरों ने घुसकर पहरेदारों में से एक आदमी को घायल कर दिया। इस बीच बहुत-से दूसरे अपराधों का भी विवरण मिलता है। लेकिन यदि हम किसी यूरोपीय या पूर्वी ज़िले के उतने ही क्षेत्रफल और जनसंख्या वाले भाग से इनकी तुलना करें तो स्थिति में क्या कोई अंतर मिल सकता है? वहाँ भी स्थिति इससे बेहतर नहीं कही जा सकती।

अपराधों की संख्या बढ़ा-चढ़ाकर दिखलाने के लिए कई घटनाओं को कई बार दोहराया भी गया है। स्लीमैन, जनरल आउटरम और लार्ड डलहौज़ी — सभी ने इस तरह की बेईमानी करने में खुलकर भाग लिया है। उदाहरण के लिए रामदत्त पांडेय नामक एक महाजन (जिसका हमने पहले भी उल्लेख किया है) वाली घटना का उल्लेख (अनुच्छेद २९, ९२. १६५ और १७३) कई जगहों पर किया गया है। यही दशा रघुवीर सिंह की भी की गयी है। जिस प्रकार किसी नाटक कंपनी के पास अभिनेताओं की संख्या में कमी होने पर बार-बार उन्हीं को रंगमंच पर लाया जाता है, और दर्शकों को अधिक संख्या का भ्रम हो जाता है, ठीक वही हालत यहाँ भी है।

इसी प्रकार इनकी गवाही में ही कई विरोधाभासपूर्ण असंगत बातें मिल जाती हैं। इनमें से कुछ विचारणीय हैं। जनरल आउटरम ने जो विवरण लार्ड डलहौज़ी को दिया था उसके प्रत्येक अंश का विवेचन कर सकना तो असंभव है। हाँ, इस गवाही का क्या प्रभाव हुआ यह बता सकना संभव है। सबसे अच्छा भी यही बता देना रहेगा। जनरल आउटरम ने अपने विवरण को निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत विभाजित किया है :—

## १. शासक और उसके मंत्री

इस प्रकार भूतपूर्व रेज़िडेंटों ने अवध के शासक को अत्यंत पतित चरित्र के दुष्ट प्राणी के रूप में चित्रित किया है। उनके अनुसार अवध के शासक दिन-रात गवैयों और

हिजड़ों के बीच घिरे रहते थे और उन्होंने अपना सब कुछ इन्हीं के हाथों सौंप रखा था। अपनी लापरवाही से हो रही बरबादी की उन्हें रत्ती भर चिंता न थी। "गवैयों और हिजड़ों" वाली बात का कर्नल स्लीमैन ने ही नहीं, जनरल आउटरम के पत्रों एवं विवरणों में, तथा अन्त में लार्ड डलहौज़ी ने भी रोना रोया है। इन लोगों के द्वारा प्रस्तुत प्रमाणों से एक नयी बात का पता चलता है कि इन "गवैयों और हिजड़ों" का आगमन पूर्व के लिए बिल्कुल नयी चीज़ है। हमने तो सुन रखा था कि ये दोनों पूर्व के लिए बहुत पुराने हो चुके हैं। बाबर और अकबर दोनों ही इनके समाज से मुक्त न थे। केवल ये ही नहीं, अन्य किसी बादशाह के बारे में नहीं सुना गया कि वह इनसे मुक्त था। हरमों में जो ईर्ष्या-द्वेष का वातावरण रहता है उसे देखते हुए हिजड़ों को रखना स्वाभाविक ही है। गवैयों को अपने यहाँ रखने का शौक पूर्व के राजाओं को हमेशा से रहा है। अतः इन्हें रखने में अंग्रेजों को आपत्ति करने का कोई औचित्य न था। इसमें संदेह नहीं कि अवध के शासक के दरबार में गवैये भी थे और हिजड़े भी। लेकिन यह कहना सफेद झूठ होगा कि केवल इन्हीं लोगों को प्रमुखता दी जाती थी और सामान्य जनता की उपेक्षा की जाती थी। इस आरोप का खंडन करने के लिए हमारे पास कई प्रमाण हैं।

सबसे पहले तो हम उन उत्तरों पर दृष्टिपात करने का प्रयास करेंगे जो इन आरोपों के संबंध में स्वयं बादशाह की ओर से दिये गये थे। पृष्ठ ३२ पर उनके दरबारियों के नाम दिये गये हैं और बताया गया है कि "वे विद्वान् और संभ्रांत परिवार के व्यक्ति हैं। इनके पूर्वज दिल्ली सरकार और मेरे राज्य में भी महत्त्वपूर्ण पदों पर रह चुके हैं।" अब हम एक और प्रमाण पर भी प्रकाश डालेंगे। लार्ड डलहौज़ी ने बादशाह पर कर्त्तव्यों की उपेक्षा करने के जो आरोप लगाये हैं उनके निम्नलिखित वक्तव्य से ज़रा सा भी मेल नहीं खाते—"अवध की शासन-व्यवस्था का चित्रण कर चुकने के बाद यह बता देना भी मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ कि वज़ीर अली के समय से कोई भी बादशाह क्रूर अथवा अत्याचारी नहीं रहा है। वे सभी भले, दयावान् तथा उदार व्यक्ति रहे हैं।" मेजर जनरल लो की स्वीकारोक्तियाँ इनसे भी अधिक स्पष्ट हैं। 'अवध ब्ल्यू बुक' के पृष्ठ २२५ पर बड़ी महत्त्वपूर्ण बात उसने लिखी है :—

"अवध के शासन के कुप्रबंध के विषय में पिछले तीस वर्षों से अखबारों में बहुत कुछ छपता रहा है। किसी ने इसके विरोध में एक शब्द भी नहीं लिखा और न झूठे वक्तव्यों का खंडन ही किया है। अपने देशवासियों की तो यह आदत ही है कि जिन पड़ोसी राज्यों में वे कभी गये तक नहीं और न उन्हें कुछ ज्ञान ही है, जब कोई उपद्रव उठ खड़ा होता है तो वे एक स्वर से वहाँ के शासक को ही दोषी ठहराने लगते हैं। अतः शासक ही इसके लिए उत्तरदायी घोषित कर दिया जाता है। प्रायः मेरे सुनने में आता रहता है कि अवध

के बादशाह का अपनी जनता के प्रति बड़ा ही क्रूर व्यवहार है। कम से कम अंग्रेजों के समाज में तो यही बात प्रचलित है। लेकिन ऐसा मत रखने वाले ये अंग्रेज ब्रिटिश सरकार की सुरक्षा तथा उसका पालन करने के लिए बादशाह के प्रति थोड़ी-सी कृतज्ञता भी प्रकट नहीं कर पाते।

"वास्तव में कम से कम पिछले पाँच सात बादशाहों में से किसी के प्रति इस प्रकार की बात कहना सरासर असत्य होगा। मैं यह मानने को तैयार हूँ कि घरेलू मामलों में उनके यहाँ कुप्रबंध था। मैं यह भी मानने को तैयार हूँ कि उनके सारे राजनीतिक अधिकार छीन लेना भी आवश्यक हो गया था, लेकिन जहाँ तक हमारी सरकार के उपयोगी, सहयोगी, नियमित निष्ठावान् विनीत मित्र और हमारे अधिकारियों के प्रति सौहार्द्र भाव रखनेवाले राजा का रूप है, उनमें मुझे कोई बुराई नज़र नहीं आती है। उनसे हमारी सरकार को सदैव लाभ ही रहा है। इसकी प्रशंसा तो करनी ही पड़ेगी। इन बादशाहों के आचरण से हमें कई महत्त्वपूर्ण लाभ भी हुए हैं। अतः मेरे विचार से यदि वर्तमान बादशाह हमारी संधि के प्रस्ताव पर हस्ताक्षर कर दे तो उसके और उसके उत्तराधिकारियों से सरकार का व्यवहार उदारतापूर्ण होना चाहिए। इसके बाद ही उनकी शक्ति, इज्ज़त तथा स्वतंत्रता का अपहरण किया जाय क्योंकि इस पर कायदे से उनके उत्तराधिकारियों का ही अधिकार था।

"बादशाह ने हमारे प्रति सदैव ही मैत्रीपूर्ण संबंध बनाये रखा और हमारे मार्ग में कभी बाधक नहीं बना। जब हम अपने शत्रुओं से युद्ध करने में व्यस्त थे उस समय भी उसने हमारी बड़ी सहायता की। उसने हमारी सेनाओं को बड़ी मात्रा में अनाज और पशु आदि उपलब्ध कराये। जब हम नेपालियों और बर्मियों से लड़ रहे थे उस समय लगभग ३ करोड़ रुपयों से हमारी सहायता करके अवध के बादशाह ने हमें नया जीवन ही दे डाला। उस समय हमें रुपयों की अत्यधिक आवश्यकता थी, और हमें कहीं से भी रुपये नहीं मिल रहे थे। वर्तमान बादशाह के बाबा ने सन् १८४२ में १४ लाख रुपयों की सहायता की थी। उनके पुत्र (वर्तमान बादशाह के पिता) ने ३२ लाख रुपयों से हमारी सहायता की थी। इन रुपयों की भी 'लार्ड एलेन बरो' की सरकार को बड़ी भारी-आवश्यकता थी। इसके द्वारा अफ़गानिस्तान में जनरल पुलॉक की सेनाओं को आगे बढ़ाने तथा पिछली हार का प्रतिशोध लेने के साधन जुटाये गये थे। इस घटना का उल्लेख करते हुए मेरी प्रार्थना है कि इसके साथ एक कागज़ भी संलग्न कर दिया जाय जिस पर 'ब' अंकित हो और उसमें लखनऊ वाले लेखे-जोखों के कुछ उदाहरण भी दिये हुए हों। उनसे पता चले कि अवध के बादशाहों की मनोवृत्ति तथा मुख्य भावना उस समय किस प्रकार की थी जब वे हमारी सहायता करते थे।

हमें बादशाह से पशुओं की सहायता तो मिलती ही थी, अवध के शासकों की एक और सहायता का भी उल्लेख मुझे करना है। नेपाल युद्ध में अवध के बादशाह ने ३०० हाथियों का निःशुल्क ऋण हमें भेजा था जिससे हम अपनी तोपें, गोले, बारूद तथा तम्बू आदि युद्ध सामग्री लाद कर ले जा सकें। यह सहायता भी हमारे लिए बड़ी लाभप्रद थी क्योंकि इतनी बड़ी सहायता हम लाख कोशिश करके भी कहीं से पाने में असमर्थ थे।

"मैं इस सच्चाई से भी इनकार नहीं कर सकता कि जब हमारी सेनाएँ अवध की ओर डाक इत्यादि की रक्षा करने के लिए बढ़ रही थीं तो अवध के शासकों ने आवश्यक सामग्री भेज कर उनकी सहायता की। इसके अतिरिक्त दूसरे प्रांतों से भागकर अवध में छिप जाने वाले अपराधियों को पता लगाकर हमारे हवाले करने और लुटेरों को गिरफ्तार करवाने में भी हमारा पूर्ण सहयोग किया है। नदियों तथा नालों की धाराओं मे होनेवाले परिवर्तनों के कारण जमीनों में भी परिवर्तन हो जाया करते हैं। इन ज़मीनों के झगड़े भी काफी हुआ करते थे। इनके संबंध में किसी निर्णय पर पहुँचने में भी उन्होंने हमारी बड़ी सहायता की। अवध दरवार के किये गये कुछ दूसरे कार्यों से भी मैं इसी निर्णय पर पहुँचा था कि ऐसा उदाहरण अन्यत्र किसी भी दूसरे राज्य में दुर्लभ है। जिस समय मैंने यह निष्कर्ष निकाला था उस समय मैं लखनऊ में एक अधिकारी के रूप म काम कर रहा था। आज भीं मैं अपने उसी निष्कर्ष पर दृढ़ हूँ। सारांश यह है कि अवध के बादशाह के शासन में जो थोड़ा-बहुत कुप्रबंध है भी वह आंतरिक मामलों में है। हम लोगों के प्रति उसके आचरण में कोई दोष कभी नहीं मिल पाया।

"जिस समय यह पत्र लिखा जा रहा था मैंने गवर्नर जनरल के एक 'मिनिट' के सारांश को एक बार फिर से पढ़ा। यह गत १८ जून को लिखा गया था। इसे दोबारा केवल आत्मसंतोष के लिए पढ़ा था। मैं समझता हूँ कि सबसे अच्छा तो यही होगा कि 'मिनिट' का वह सारांश पूरे का पूरा उद्धृत कर दूँ। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि बादशाह से मैं एकदम सहमत हूँ। मिनिट का सारांश इस प्रकार है :—"अवध के शासक चाहे कितने बड़े धोखेबाज क्यों न रहे हों और उनके शासन में चाहे कितना कुप्रबंध रहा हो ब्रिटिश सत्ता के प्रति वे सदैव सच्चे और स्वामिभक्त रहे हैं। ब्रिटिश सरकार के प्रति इनकी मैत्री की भावना में कभी कमी नहीं आने पायी। बिना किसी प्रकार की चीं-चपड़ किये उन्होंने हमारी सत्ता को आत्मसमर्पण भी कर दिया। हमारी आवश्यकताओं में उन्होंने हमारी भरसक सहायता की है।" —"ज० लो।"

बादशाह के व्यक्तिगत जीवन के विषय में अवश्य कहा जा सकता है कि अधिक व्यवहार कुशल वे भले ही न रहे हों, लेकिन सुरुचि-संपन्न व्यक्ति अवश्य थे। एम० एम० मसीहुद्दीन के वर्णन के अनुसार बादशाह "सुशिक्षित तो था ही, साथ ही प्राचीन एवं अर्वा-

चीन इतिहास का भी काफी अध्ययन कर रखा था। इतना ही नहीं, उर्दू और फारसी में कई बड़ी अच्छी कविताएँ और कुछ अन्य ग्रंथ भी लिखे। इन्हें यूरोप के किसी भी सार्वजनिक पुस्तकालय में देखा जा सकता है।" फ्रांसीसी संस्था के सदस्य तथा एकोल इम्पीरियल में हिन्दुस्तानी के प्राध्यापक एम० गारसिन डी टैसी के एक व्याख्यान में भी बादशाह और उनके पूर्वजों की साहित्यिक कृतियों की बड़ी प्रशंसा की गयी है। यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि इन्हीं साहित्यिक पद्य रचनाओं को मध्यकाल से ही गीतकार, चारण तथा विदूषक इत्यादि गाते रहे हैं। अतः जिन हिजड़ों की उपस्थिति का रोना रोया गया है वे उपर्युक्त "गायक कलाकार" ही थे।[1]

१. यदि शाही परिचारकों द्वारा बादशाह के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने वाले दावों में थोड़ी भी सत्यता है तो ईस्ट इंडिया कंपनी को बादशाह के विरुद्ध उन्हें भड़काने का कोई अधिकार नहीं है। सम्माननीय फ्रेडरिक जान शोर के एक महत्त्वपूर्ण वक्तव्य से साफ पता चलता है कि ब्रिटिश कंपनी के दलालों ने बादशाह पर कितने ही जोर-जुल्म किये। शोर का वक्तव्य निम्नलिखित है:—

"भ्रष्टाचार के आरोप में नौकरी से निकाले गये और भविष्य में भी किसी भी नौकरी के लिए न रखे जाने के स्पष्ट आदेश के बावजूद भी एक व्यक्ति को गवर्नर जनरल ने बादशाह के पास भेजा। पहले तो उसे नौकरी के उपयुक्त, समझे जाने का ही आग्रह किया गया था। बाद में बादशाह को आदेश दिया गया कि उस व्यक्ति को सरकारी पद पर नियुक्त किया जाय। ऐसा आदेश भिजवाने से पहले यह क्यों भुला दिया गया था कि लखनऊ के इस अभागे बादशाह ने एक अंग्रेज गायक और उसकी पत्नी को पेंशन देने की प्रार्थना की थी। क्या उस गायक को पेंशन देना, इस भ्रष्टाचारी व्यक्ति को सरकारी पद पर नियुक्त किये जाने से भी बुरी बात थी? मैंने स्वयं देखा है कि रेजिडेंट किस प्रकार से बादशाह के कामों में हस्तक्षेप किया करता था। रेजिडेंट ने एक बड़े ही मूल्यवान फ्रांसीसी खिलौने को जबरदस्ती बादशाह से खरीदवा डाला। बादशाह को पहले स्वयं ही खिलौना दिखलाना और बाद में उसे खरीद लेने के लिए दबाव डालना—यदि यह उनका हस्तक्षेप नहीं तो और क्या है? इन्हीं महानुभाव ने बादशाह पर यह भी दबाव डाला कि अंग्रेज गाड़ीवानों, मालियों, संगीतज्ञों तथा कई अन्य लोगों को अपने आश्रय में रख ले। बादशाह को इन लोगों की बिल्कुल आवश्यकता नहीं थी। बादशाह के सिर पर अकारण ही इन्हें मढ़ दिया गया। इन्हीं उपायों से कंपनी के अत्याचारों से अवध को एक लंबे अरसे तक पीड़ित किया जाता रहा।"

सच पूछा जाय तो बादशाह को अपने अत्याचार का शिकार बनाने के लिए उनके व्यक्तिगत जीवन में सभी शौकों पर रेज़िडेंट की कड़ी दृष्टि थी। उनकी हर बात पर निगरानी रखी जाती थी और रेजिडेंट को तत्संबंधी सूचनाएँ भेजी जाती थीं। बादशाह की दशा शीशे के पिंजरे म बंद एक असहाय पक्षी की भाँति थी जिसकी कोई भी हरकत रेजिडेंटों से छिपी नहीं रह सकती थी। इन भलेमानुसों को संतुष्ट करने का यह उपक्रम शुरू से ही चलता आ रहा था। विशप हेबर के अनुसार उन्होंने देखा कि "बादशाह के परिवार की प्रत्येक घटना को लिखित रूप में रेजिडेंट के पास पहुँचा दिया जाता था। उसके यहाँ किस समय कौन व्यक्ति आया या गया—सब कुछ बड़ी सावधानी से लिख कर भिजवा दिया जाता था। मैं किस समय सोकर जगा, नाश्ते में मैंने कौन-कौन चीज़ें खायीं—मैं वहाँ कितनी बार आया या गया और मैंने सुबह का समय किस प्रकार बिताया—ये सभी सूचनाएँ बादशाह के चोबदारों ने बड़े विस्तार से अपने स्वामी के लिए लिख लीं। बादशाह के स्वयं के सारे कार्यकलाप भी रिकेट की जाँच के लिए लिख लिये गये।" अगर इंगलैंड के किसी बादशाह या किसी दूसरे व्यक्ति को रिकेट या उनके चोबदारों के बीच इस प्रकार रहना पड़ता तो उनका अपने पद पर रहना असंभव हो जाता। यह तो बादशाह की सज्जनता थी कि वे इस अत्यंत ही कड़वे घूँट को पीते रहे। "अवध ब्ल्यू बुक' के रचयिताओं को इन सब बातों को विस्तारपूर्वक ब्रिटिश पार्लियामेंट में पेश करने में ज़रा भी शर्म न आयी। ये बातें निम्नलिखित प्रकार की होती थीं:—

"१७ मार्च। आज सुबह बादशाह ने अपने दरबारियों तथा हिजड़ों का अभिवादन स्वीकार करके कुछ कबूतरों के साथ अपना दिल बहलाया.....२३ मार्च। बादशाह की सलाह पर उसके मेहतरों के मुखिया कल्लू ने अपने दो सौ साथियों की सलाह पर इस्लाम धर्म को स्वीकार कर लिया। उन सबके साथ वह अब्बास की दरगाह पर बड़ी धूमधाम से गया।.....३० मार्च। पिछली शाम का समय बादशाह ने कुछ नर्तकियों का नृत्य प्रदर्शन देखकर व्यतीत किया। आज सुबह सदैव की भाँति अपने दरबारियों का अभिवादन स्वीकार किया।............११ मई। कल शाम बादशाह ने कुछ आतिशबाज़ियों के द्वारा अपना मनोरंजन किया। आज सुबह बादशाह ने मोसाहिब अली, सारंगी वादक और एक अफ्रीकी स्त्री को दुशालों और रूमालों की भेंट दी।.......२३ मई। बादशाह के लिए बिल्लियाँ पकड़ने के लिए आज ६ आदमी नियुक्त किये गये। इत्यादि। इस प्रकारकी बातें डायरी के लेखक ने डायरी के प्रत्येक पृष्ठ पर लिख

**—ईस्ट इंडिया कंपनी की सरकारी सेवा में नियुक्त उच्चाधिकारी फ्रेडरिक जान शोर की 'नोट्स आन इंडियन अफेयर्स' खंड २, अनुच्छेद ८३-८४ से उद्धृत।**

रखी हैं।" इनके द्वारा यह अनुमान लगाना कठिन नहीं कि लदन की बिल्लियों के समान ही लखनऊ की इन बिल्लियों ने भी लोगों की सुख-शान्ति भंग कर डाली होगी और राजधानी में शान्ति स्थापित करने के लिए बादशाह को उन्हें मार डालने के लिए विवश हो जाना पड़ा होगा। दूसरी ओर यह बात भी सोचने की है कि 'अवध ब्ल्यू बुक" के पृष्ठ इन निरर्थक बातों से रँगने और इस प्रकार कंपनी की अपने खर्चे को अकारण ही बढ़ा लेने में आखिर कौन-सी बुद्धिमानी थी। बादशाह अगर कबूतरबाज़ी और नर्तकियों को रखने का शौकीन था या अवध की बिल्लियों को मरवा डाला तो उसने कोई जुर्म तो नहीं किया। क्या किसी राज्य को इस अपराध में छीनने का अधिकार है? नहीं, कभी नहीं। यह सरासर अन्याय है।

इसमें संदेह नहीं कि बादशाह अपने समय का इससे अधिक अच्छे ढंग से सदुपयोग कर सकता था। लेकिन उसे ऐसा न करने देने का दोषी कौन था? इस प्रश्न का उत्तर हम उस समय ही दे चुके हैं जब हमने बताया था कि बादशाह ने अपनी सेनाओं को पुनर्गठित करने का प्रयास किया था और थामसन ने उसके प्रस्तावों को किस रूप में स्वीकृत किया था? बादशाह के ऊपर जो आरोप लगाये गये थे उनके उत्तर में हम अपनी ओर से कुछ न कह कर उसी के शब्दों को उद्धृत करना ठीक समझते हैं। बादशाह ने आरोपों के उत्तर में पृष्ठ २४ पर इस प्रकार लिखा है:—

"मेजर जनरल आउटरम अपने १५ मार्च, १८५५ वाली रिपोर्ट के १५वें अनुच्छेद में लिखता है—'मेरे विचार से बादशाह के जिम्मे जो काम किया गया है वह उसके प्रति अपने कर्त्तव्य का उत्तरदायित्व समझ सके इसकी आशा नहीं के बराबर है।' उसी अनुच्छेद के एक अन्य भाग में वह लिखता है—'पिछले सभी बादशाहों के शासनकाल में सप्ताह में कम से कम एक बार दरबार अवश्य लगाया जाता रहा है। इसमें सभी तरह के लोग, अपने शासक का अभिवादन करने के साथ ही अपने कष्टों आदि के संबंध में उनसे व्यक्तिगत रूप से बात कर सकने के लिए स्वतन्त्र थे। वर्तमान शासनकाल में भी पिछले तीन-चार महीनों तक इस परंपरा का पालन होता रहा जो बाद में बंद कर दिया गया।'

राज्य संचालन में सुव्यवस्था बनाये रखने के लिए दो ही ढंग संभव हैं—एक तो यह कि सार्वजनिक दरबार प्रायः लगाये जाते रहें और दूसरा यह कि जनता के मामलों पर पूरी तौर से कोई ध्यान देने वाला हो। पहला ढंग तो असुविधाजनक है क्योंकि जो व्यक्ति राज्य के एक-एक मामले की जाँच-पड़ताल में ही काफी समय खर्च करेगा, वह सबकी फरियादें कहाँ तक सुन पायेगा! इस समय को सार्वजनिक हित के लिए व्यय करना अधिक लाभदायक होगा। अतः दरबार लगाने वाले तरीके से शासन की आन्तरिक

व्यवस्था ही बिगड़ जायगी। जब मुझे शासन का भार सँभालने का अवसर मिला तो मैंने भी जनता के सभी मामलों की जाँच-पड़ताल करना ही ठीक समझा था। मैं चाहता था कि हर मामले की जाँच करूँ और आवश्यकता पड़ने पर पुर्नविचार करके सही निश्चय पर पहुँच सकूँ। शासन के प्रबंध की यही प्रणाली मुझे ठीक लगी थी। मैंने शुरू में यह नहीं सोचा था कि जिस नये राज्य का भार मुझे सौंपा जा रहा है, उसके संबंध में कोई बिल्कुल नयी कार्यप्रणाली ढूँढ़नी पड़ेगी। मैंने पहले वाली प्रणाली के उपयुक्त होने के लिए परीक्षण लेना चाहा। अतः मैंने सड़कों पर सन्दूक रखवा दिये जिनमें जनता अपनी शिकायतें और अपनी माँगें डाल सके। इनसे मुझे ज्ञात हुआ कि अदालतों के न्याय में अमीरी-गरीबी का कोई भेद नहीं रहता और सभी के साथ मुसलमानों के कानून के अनुसार न्याय किया जाता है। ऐसा एक भी दृष्टान्त देखने को नहीं मिला जिसमें अदालतों में न्याय न मिलने की शिकायत हो। इस बात का भी निश्चय मुझे हो गया कि न्यायाधीश अपने पदों के लिए सर्वथा योग्य थे और मुसलमानों के कानून को अच्छी तरह से समझते थे। वे सभी उच्च चरित्र वाले व्यक्ति थे। अतः मैंने उनके मामलों में हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं समझी। हाँ, अपनी सेना को अवश्य मैं पुनर्गठित करना चाहता था। अपने पहले के शासकों के अधिकारियों का भी यही सुझाव था और मैं व्यक्तिगत रूप से भी इस सम्बन्ध में कुछ करने के लिए उत्सुक था। परंतु कर्नल स्लीमैन ने इसके विरुद्ध शिकायत मेरे पास भेजी। मैंने भी यह सोच कर कि मेरे इस कार्य से ब्रिटिश कंपनी को हमारी मित्रता के विषय में संदेह अथवा अविश्वास हो सकता है, इस दिशा में कुछ भी न करने का निर्णय किया। मैंने अब अपना पूरा ध्यान जनहित की ओर देना शुरू कर दिया था। मेरा बहुत समय से एक विशेष प्रबंधक समिति (ट्रस्ट मैनेजमेंट) का आश्रय लेने का इरादा था। लार्ड हार्डिग ने भी मुझे यही सलाह दी थी। थोड़े ही समय में देश का ९/१० वाँ भाग इसी प्रबंधक-समिति के अधिकार में आ गया। कई स्थानों पर थाने बना दिये गये। यद्यपि किसी इज़ारा या ठीके में अभी तक इसका उल्लेख नहीं किया गया है। ऐसी रियासतों में जहाँ पर 'जुम्मा' की निर्धारित धनराशि लगभग ५ या ७ वर्षों के पट्टों या इज़ारों के अंतर्गत चली आ रही थी, आदेश भेजा गया कि वे लोग आकर हुज़ूर तहसील प्रणाली के अंतर्गत ज़मीनें ले सकते हैं। एक बार फिर से यह अफवाह फैला दी गयी कि कुछ कलेक्टर गरीबों की ज़मीनें जबर्दस्ती छीन कर अपने नाम लिख ले रहे हैं। अतः यह आदेश जारी करवा दिया गया कि सरकार को सूचित किये बिना गाँवों को खरीदा या बेचा नहीं जा सकता। सरकार की स्वीकृति पर सरकारी मोहर लगी होनी चाहिए। सरकार उसी दशा में स्वीकृति देगी जब कि विक्रेता की ओर से विक्रय की घोषणा और आपत्ति की स्थिति में लिखित रूप में आपत्तियाँ भी प्राप्त कर ली जायँ। इसके अर्थ ये हैं कि

उपर्युक्त भावार्थ प्रदर्शित करनेवाली घोषणा से सहमति की कुछ प्रतिलिपियाँ रेजिडेंट के पास भेजनी होंगी जिससे वे ब्रिटिश कंपनी को तत्सम्बन्धी सूचना भेज सकें। इन मामलों के लिए इससे अधिक मैं क्या कर सकता था। अपनी तरफ से तो मैंने कोई कसर नहीं छोड़ी थी। जनता के किसी भी मामले में अच्छी तरह से विचार किये बिना मैं कोई भी निर्णय नहीं लेता था। भिन्न-भिन्न रेजिडेंटों की ओर से बड़ी अजीबोगरीब सूचनाओं की माँग की जाती थी। कभी कलेक्टरों की आदतों के संबंध में कुछ पूछा जाता था तो कभी और कुछ। इन बे-सिर-पैर की सूचनाओं के माँगे जाने पर मैं इनके संतोषजनक उत्तर नहीं दे पाया। बिना अच्छी तरह मामलों की छान-बीन किये, तत्संबंधी सूचनाएँ दे पाना नैतिक दृष्टि से हीन तो है ही, असंभव भी है। ऐसी बात नहीं कि दरबार सबसे कम बार मैं ही लगाता रहा होऊं। मैडॉक के समय तक रेजिडेंट सप्ताह में एक बार दरबार लगाते थे जिसमें ब्रिटिश अधिकारी और याचक सभी लोग उपस्थित हुआ करते थे और अपनी तकलीफें हमें बताते थे। लगभग २० वर्षों से यह प्रथा बंद कर दी गयी है। मैंने कभी किसी से भेंट करने से इनकार नहीं किया। हाँ, इतना अवश्य है कि केवल उन्हीं लोगों से मिला करता था जो वास्तव में मिलने के इच्छुक थे।"

बादशाह ने कहीं पर भी उन प्रस्तावों का उल्लेख नहीं किया है जो उसने ब्रिटिश कंपनी के सम्मुख रखे हों और कंपनी ने उनकी स्वीकृति देने में अड़ंगेबाजी की हो। अर्थात् बादशाह ने जितना लिखा है उससे कहीं अधिक न्यायी वह अपने व्यावहारिक जीवन में था। इतना करने के बाद भी बादशाह ने लिखा था कि भले ही वह एक असफल शासक रहा हो, लेकिन जहाँ तक ब्रिटिश सरकार का संबंध है, उसने कभी कोई अनियमितता नहीं प्रदर्शित की। ब्रिटिश सरकार के प्रति वह सदैव कर्त्तव्य पालन करता रहा। ब्रिटिश सरकार से शांतिपूर्ण संबंध बनाये रखने के लिए उसे काफी मूल्य भी चुकाना पड़ा, परंतु उसने मैत्रीपूर्ण संबंधों में अपनी ओर से तनिक भी अंतर न आने दिया। जब तक बादशाह से उसका राज्य छीनकर उसे दर-दर की ठोकरें खाने के लिए विवश नहीं कर दिया गया, वह बराबर मैत्री बनाये रखने के लिए प्रयत्नशील रहा।[१]

**१. इस विषय पर हम एम०एम० मसीउद्दीन के द्वारा लिखित एक और उदाहरण दे रहे हैं– "बादशाह को उसके अधिकारियों तथा दुनिया की नजरों में गिरा हुआ सिद्ध करने के लिए जो भी प्रयत्न किये गये हैं, वे निंदनीय हैं। उन पर लगाये गये आरोप मनगढ़ंत एवं ऊटपटांग हैं जो केवल बादशाह की बदनामी करने के लिए गढ़ लिये गये हैं। कर्नल स्लीम ने तो मनगढ़ंत आरोप लगाने में सभी निन्दकों को पीछे छोड़ दिया। सन् १८४८-४९ में पंजाब में हुए विद्रोह के समय ब्रिटिश कंपनी के भाग्य रूपी क्षितिज**

जनरल आउटरम की इस रिपोर्ट में जिसे कर्नल स्लीमैन के वक्तव्यों की पुनरावृत्ति कहना अधिक अच्छा रहेगा, दूसरा शीर्षक है करों और आर्थिक स्थिति का।

## २. कर तथा आर्थिक स्थिति

प्राय: अवध को कुप्रबंध के लिए बदनाम किया जाता रहा है और झूठ-मूठ के आरोप अवध पर लगाये जाते रहे हैं। इन आरोपों और उनके उत्तरों को सविस्तार लिख सकना संभव नहीं है। इसके लिए भारतीय मामलों का विशिष्ट ज्ञान होना चाहिए। कई और भी कठिनाइयाँ हैं। हाँ, वे आरोप तथा उनका खंडन करने वाले प्रमाण सारांश रूप में अवश्य लिखे जा सकते हैं।

सबसे पहली बात तो यही है कि ये सभी आरोप पूर्णतया निराधार हैं। किसी भी आरोप का सीधा खंडन किया जा सकता है। क्या अवध की ओर से कभी भी कर इत्यादि

**पर विपत्ति के काले बादल मँडराने लगे थे। कंपनी का अस्तित्व ही उस समय खतरे में पड़ गया था क्योंकि उस समय मूलराज लगभ एक वर्ष तक अंग्रेजों के सारे प्रयासों को निष्फल करता रहा था। चिलियाँ वाला की पराजय से सभी राज्यों की श्रद्धा की भावना नष्ट होने लगी थी। विद्रोही और राज्य की जेलों के बंदी हाथों में तलवार लेकर दूसरी सेनाओं में मिल रहे थे। उस समय यह भी अफवाह थी कि काबुल और फारस की शक्तिशाली सैनिक सहायता मिल जाने पर वर्तमान अंग्रेज जाति का समूल नाश कर दिया जायगा। ऐसे विषम समय में बादशाह ने ही हमारी सहायता की थी। बादशाह से किसी प्रकार की सहायता माँगी नहीं गयी थी, लेकिन जैसे ही उसे ऐसी परिस्थिति का पता चला, उसने हमें आवश्यक धन के साथ सैनिक भी भेज कर हमारे साथ सहयोग किया। यह उसकी मैत्रीपूर्ण भावना का ही सूचक है। अभी हाल में ही बर्मा वाली लड़ाई में भी गवर्नर जनरल से प्रार्थना की थी कि उसे या तो तोप चलाने वाले सैनिक भेजने या किसी अन्य रूप में सहायता करने के लिए अनुमति दी जाय। रूस वाले युद्ध में उसने ब्रिटिश सरकार के साथ इसी प्रकार सहयोग देने की इच्छा प्रकट की थी और सरकार से आग्रह किया था कि उसकी सहायता स्वीकार कर ली जाय। वह केवल सैनिक सहायता देने वाला व्यक्ति ही नहीं, वरन् शांति स्थापित रखने के लिए भी प्रयत्नशील था। वह कला प्रेमी भी था। सन् १८५१ की विराट् प्रदर्शनी में उसने भारतीय कला के कई दुर्लभ तथा उच्च कोटि के नमूने प्रदर्शित किये थे। इसके लिए ब्रिटिश सरकार की ओर से उसके प्रति आभार-प्रदर्शन भी किया गया था।**

चुकाने से इनकार किया गया है ? सन् १८५३ और १८५४ की रसीदों पर जनरल आउटरम ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि करों के जो आँकड़े उसके पास हैं वे उसने स्वयं निर्धारित नहीं किये हैं और न उसे सरकारी तौर पर मिले हैं। वे पूर्णरूप से कर्नल स्लीमैन के द्वारा निश्चित किये गये आँकड़ों पर निर्भर हैं। वह यही मानकर चला है कि ये आँकड़े पूर्णतया शुद्ध हैं।[१] दूसरी ओर बादशाह के उत्तरों से ज्ञात होता है कि कर ५५ वर्षों से इसी प्रकार चलते आये हैं। एम० एम० मसीहुद्दीन भी इसी का समर्थन करते हुए कहता है कि करों के आँकड़ों से वह सिद्ध कर सकता है कि बादशाह के शासनकाल के आरंभ से लेकर अंत तक १ करोड़ रुपये (अर्थात् १,०००,००० स्टर्लिंग) वार्षिक से कम कर कभी नहीं वसूल किये गये। रेज़िडेंटों के वक्तव्य इसके एकदम विपरीत हैं। सुविधा के लिए बादशाह की सेनाओं को वेतन दिये जाने के लिए कलेक्टरों और गवर्नरों को आदेश दिये गये थे। पिछले कई वर्षों से ऐसा ही होता आया था। सेनाओं को इन्हीं के अधिकार में रखा गया था, अतः इन अधिकारियों को आदेश दिया गया था कि वे लोग करों के रूप में वसूल की गयी कुल रक़म को शाही खज़ाने में न जमा करें। सेना को वेतन दे चुकने के बाद बचा हुआ धन ही जमा करने के लिए भेजें। रेज़िडेंट के करों का हिसाब करते समय सेना पर हुए व्यय को छोड़ दिया जाय और इतने रुपयों को हिसाब में कम होना बताया जाय। इसके अतिरिक्त उन्हें यह आरोप लगाने का भी अवसर मिल गया कि सेनाओं के व्यय को तो बड़े-बड़े जमींदार और ताल्लुकेदार वहन करते हैं।

इन सारी बदमाशियों की जड़ कॅर्नल स्लीमैन को ही समझा जाना चाहिए। अवध में अपहरण करने में प्रत्यक्ष या परोक्ष किसी न किसी रूप में उसका हाथ अवश्य रहता था। बिना किसी प्रकार की छानबीन[२] किये ही कई पुराने आमिलों या कलेक्टरों को

१. **"मुझे अपने कार्य के लिए कोई सरकारी आँकड़े नहीं उपलब्ध हुए हैं। बल्कि मुझे कर्नल स्लीमैन की सूचना पर आधारित आँकड़ों पर निर्भर रहना पड़ता है। मेरा विश्वास है कि ये बिल्कुल शुद्ध आँकड़े हैं।" —आउटरम**

२. **निम्नलिखित पत्रों से यह स्पष्ट रूप से प्रमाणित हो जाता है कि रेज़िडेंट के द्वारा इन लोगों की बरखास्तगी के लिए जो आदेश भेजे गये थे उनके विषय में किसी भी प्रकार की खोजबीन और जाँच-पड़ताल नहीं की गयी थी।**

**अवध के बादशाह की ओर से रेजिडेंट को ४ थी रबीउज्जानी १२७० हिजिरी को भेजा गया एक पत्र :—**

**"मुझे आपका पत्र मिला। पत्र के साथ ही ताल्लुकेदार शिवदर्शन सिंह के प्रार्थना-पत्र की एक प्रति भी मिली। इसमें सलोनी या सलोन ? के कलेक्टर खान**

नौकरी से अलग कर दिया गया और उनके स्थान पर नये, किंतु अनुभवहीन व्यक्तियों को रख लिया गया। इसी लिए गोंडा तथा बहराइच के आमिल राजा इंचा सिंह को भी २१ अक्तूबर, १८४३ (२८वीं रमज़ान १२५८ हिजरी) के एक पत्र द्वारा बरखास्त किये जाने का आदेश भेजा गया। ठीक इसी प्रकार रसूलाबाद के तहसीलदार अहमद अली और कलेक्टर शिवदीन सिंह को २५ मार्च, १८५४ (२९वीं रब्बेउलवाल १२६२ हिजरी) के एक पत्र में उनके पदों से हटाये जाने की सूचना मिली। सलोन के आमिल या कलेक्टर ख़ान अली खाँ को १२६९ हिजरी (१८५२-५३) में और रसूलाबाद ज़िले के तहसीलदार या कर वसूल करनेवाले कलेक्टर को ४ जुलाई, १८५२ (२८वीं रमजान १२६९ हिजरी) को हटाये जाने के आदेश भेज दिये गये। इन लोगों के द्वारा ज़मीन के करों की वसूल की गयी रकम से कर्नल स्लीमैन को कोई विशेष लाभ होता हो यह बात नहीं है, यह तो इन्हें हटाये जाने का एक बहाना मात्र था। इसी प्रकार अपनी स्थिति का लाभ उठाकर कुछ बड़े ताल्लुकेदारों और जमींदारों को भी निकाल बाहर कर दिया।[१] इन सबके हटा दिये जाने से कर वसूल होने के काम में और अधिक अक्षमता आ गयी। इसका

अली खाँ के अत्याचारों की शिकायत की गयी थी। आपके इच्छानुसार ख़ान अली खाँ को बरख़ास्त करके उसके स्थान पर साहब राजे को नियुक्त कर दिया गया है। उसने अपने कर्तव्यों को ईमानदारी और निष्पक्षता से पालन करने और करों के ठीक वसूल किये जाने के संबंध में काफ़ी कड़े कदम उठाये हैं। अच्छा होगा कि शिवदर्शन सिंह को आप सूचित कर दें, अपने हिसाब-किताब को, अपनी शिकायत की जाँच के लिए उनसे मिल लें। भविष्य में नियमित रूप से जो कर चुकाना हो, वह मिलकर निश्चित कर लें।

१. निम्नलिखित पत्र से भी यही ज्ञात होता है। उस पत्र का अनुवाद जो बादशाह की ओर से रेज़िडेंट के नाम १६ सितम्बर, १८५० को भेजा गया था :—

"मुझे आपको फिर से याद दिलाना है कि फ़जली १२५६ (१८४९–५०) में तुलसीपुर के ताल्लुकेदार दुर्गराज ने सरकार के लगभग १००० रुपयों का भुगतान नहीं किया था। बाद में दुर्गराज के पुत्र साहब जी के द्वारा यह धन चुका दिया गया था। धन चुका देने पर ताल्लुका या जिला साहब सिंह के हवाले कर दिया गया था। लेकिन कुछ ही महीने बाद साहबजी से वह ताल्लुका फिर छीन लिये जाने का आपने आदेश भेजा और उस पर दुर्गराज का पुनः अधिकार हो गया। इस घटना से दुर्गराज को इतना दुःसाहस हो गया है कि वह अपने जिले या इलाके के सभी कर वसूल कर लेने के बावजूद भी भुगतान करने के लिए बिलकुल तैयार नहीं। एक वर्ष की अवधि बीत चुकी है और दुर्गराज पर ४१, १२६ रु० ११ आने बाकी हैं। मेरी आपसे प्रार्थना

अंतिम दुष्परिणाम यह भी हुआ कि कर्नल स्लीमैन को इज़ारा (काश्तकारी प्रणाली) के स्थान पर अमानी प्रणाली लागू कर देने की शरारत का मौक़ा मिल गया। इस प्रकार के प्रयोग समय-समय पर विभिन्न रेजिडेंटों के द्वारा किये जाते रहे थे, लेकिन (अवध ब्ल्यू बुक, पृष्ठ १७१) लार्ड डलहौज़ी के एक 'मिनिट' में यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया है कि इनसे असफलता और निराशा के अतिरिक्त और कुछ हाथ न लगा था :—

"इजारा प्रणाली को अमानी प्रणाली में परिवर्तित करने के लिए कई जिलों में प्रयोग किये गये थे। परिणाम हरबार एक ही रहा अर्थात् कर वसूली में कमी आने लगी और सरकार तथा जनता के बीच निराशा की भावना प्रबल हो उठी। ये प्रयोग ब्रिटिश सरकार द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों ने किये थे।

गाज़ीउद्दीन के शासन-काल में रेजिडेंट कर्नल बेली ने सारे अवध में इज़ारा प्रणाली को अमानी में परिवर्तित कर दिया था, लेकिन दो वर्षों के बाद ही इसे सभी स्थानों से हटा लेने के लिए विवश हो जाना पड़ा था। यह प्रयोग कहीं भी सफल नहीं रहा था। रेजिडेंट कर्नल लो और रेजिडेंट मैडॉक ने नसीरुद्दीन के शासन-काल में एक बार फिर यही मूर्खता दोहरायी थी। परिणाम वही हुआ जो होना था। दो वर्षों से भी कम समय में अमानी को काश्तकारों को दे देना पड़ा। कर्नल लो और कॉल फील्ड नामक रेजिडेंटों ने मोहम्मद अली शाह के शासनकाल में पुनः यही प्रयोग दोहराया। मंत्री शरफुद्दौला ने रेजिडेंटों को संतुष्ट करने के लिए इस प्रणाली को कार्यान्वित करने का जी-तोड़ प्रयास किया। उसने अमानी में ३५ लाख रुपये की वार्षिक आय करके दिखायी। दो वर्ष बाद उसे पदच्युत करके उसके स्थान पर अमीनुद्दौला को नियुक्त किया गया। अमीनुद्दौला ने भी इस दिशा में जी-तोड़ प्रयास किया। उसे भी शीघ्र ही हटा दिया गया। अमीनुद्दौला के बाद सभी उत्तराधिकारियों के हाथों में यह प्रणाली अधिक फलफूल न सकी। अतः एक बार फिर काश्तकारी प्रणाली को लागू करना पड़ा।"

"इतनी असफलताओं के बाद भी सरकार अमानी प्रणाली के लागू किये जाने वाले प्रयोगों के लिए अपने हठ पर दृढ़ रही। लगभग ५० वर्षों से यह प्रयोग बराबर असफल होता आ रहा था, मगर सरकार की आँखें अभी भी नहीं खुली थीं।"

प्रयोग फिर असफल रहे और पुनः निराशा ही हाथ लगी। लेकिन एक दिलचस्प बात यह है कि जनरल आउटरम और कर्नल स्लीमैन के द्वारा दिये गये प्रमाण एक से नहीं हैं वैसे दोनों में से यह किसी ने नहीं कहा है कि प्रयोग सफल रहा। मेजर ट्रूप ने अपने

**है कि आदेश दें—कि ऐसी स्थिति में मुझे किस प्रकार से यह धनराशि प्राप्त करनी चाहिए। आपके आदेशों का पालन करूँगा।"**

२७ दिसम्बर, १८५४ वाले एक पत्र में एक बार फिर स्वीकार किया है कि जिस ज़िले में दर्शनसिंह कलेक्टर थे, अमानी प्रणाली के अंतर्गत वहाँ से उन्हें ५ से ९ लाख रुपये के करों का घाटा उठाना पड़ा है। दूसरी ओर कैप्टेन बनबरी ने अपने १ जनवरी, १८५५ के पत्र म लिखा है कि दर्शनसिंह के समय से करों की वसूली में पहले की अपेक्षा बिल्कुल कमी नहीं हुई। बात कुछ इस प्रकार की है कि दो चिकित्सकों में रोगी के रोग के संबंध में मतैक्य न हो तो रोगी की दशा में सुधार न होना अनिवार्य है। इसके उत्तर में शासक की ओर से पृष्ठ २६ पर उन्हें द्विविधा में डाल देने की शिकायत इस प्रकार से की गयी है :—

"ऐसा प्रतीत होता है कि मुझे लांछित करने के लिए जनरल आउटरम के सहकारी दोहरे उत्तर दिया करते हैं। जब म अमानी प्रणाली को लागू करने की बात का समर्थन करता हूँ तो वे लोग इज़ारा की माँग करते हैं। इसके विपरीत यदि मैं इज़ारा लागू करने का इरादा करता हूँ तो वे अमानी का गुणगान करने लगते हैं।" बादशाह को इस प्रकार से गुमराह करने के प्रयास किये जाते थे जिससे करों की वसूली में बड़ी बाधाएँ उठ खड़ी होती थीं। परिणामस्वरूप यदि कर न वसूल हो पाते थे तो बादशाह का इसमें कौन दोष था। हाँ, नुकसान अवश्य बादशाह को ही उठाना पड़ता था। अतः यदि इस संबंध में दोष किसी का था भी तो रेजिडेंटों का था, बादशाह का नहीं।

बादशाह द्वारा दिये गये उत्तर में पृष्ठ ३५ पर स्पष्ट शब्दों में लिखा गया है कि अवध के आर्थिक मामलों में इस प्रकार के हस्तक्षेप के कारण कर वसूल करने वाले साधनों की क्षमता में बड़ी कमी आ गयी है। इसी लिए उन साधनों के द्वारा कर उतना नहीं वसूल किया जा सका जितना आपके "अत्यधिक शुद्ध गणना करने वाले" अर्थशास्त्री लोग पाना चाहते थे। अतः उन्होंने सोच लिया कि अवध के हिसाब-किताब में जनरल आउटरम द्वारा दिखायी गयी कर्ज की बकाया धनराशि का उल्लेख ही नहीं किया गया है। ब्रिटिशों की तुलना में अवध में करों में जो वृद्धि पायी गयी है वह दो स्रोतों से प्राप्त की गयी है। जमींदारों और कानूनगोओं के लिए कंपनी ने भत्ते और मुफ्त में जागीरें देने की व्यवस्था की थी और कहा था कि ये सदैव इसी प्रकार से चलती रहेंगी। इसके अतिरिक्त कंपनी ने उस बंजर भूमि को भी खेती योग्य भूमि मान लिया है जो बादशाह के अधिकृत क्षेत्र के बाहर है। अतः बादशाह को प्रसन्नता है कि चाहे बिल्कुल ही **भिन्न परिस्थिति में**[1] की गयी इस प्रकार की तुलना कितनी ही असुविधाजनक क्यों न हुई हो।

१. **इस भाग के सम्बन्ध में किसी भी निर्णय पर पहुँचने से पहले हम एम० एम० मसीहुद्दीन के एक उद्धरण को प्रस्तुत करना चाहेंगे जिससे जनरल आउटरम के एक आर्थिक आलोचक वाले रूप पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।**

## ३. अदालतें और पुलिस

इस सम्बन्ध में भी जनरल आउटरम ने मनगढ़ंत आरोप लगाने की परम्परा का पालन किया है। उनके मत के अनुसार यहाँ की न्याय-व्यवस्था एकदम भ्रष्ट, शर्मनाक एवं कमजोर हैं। इसके बाद रामदत्त पांडेय का वर्णन आता है (रामदत्त पांडेय का नाम अपराधियों की सूची में सबसे पहले आया है।) रामदत्त पांडेय वाली घटनाओं के उल्लेख

"कर और आर्थिक व्यवस्था वाले शीर्षक को अपनी रिपोर्ट में देकर कर्नल आउटरम ने अपनी अयोग्यता ही प्रकट की है। यह उनकी बड़ी भारी भूल थी जिससे किसी को भी कोई लाभ नहीं पहुँच सकता था। अपने द्वारा खोदे हुए गढ़े में वह स्वयं ही जा गिरा था। उसके अनुसार सीमा वाले करों के मुख्यतः चार स्रोत थे।

१. खालसा या क्राउन रियासतें।
२. हुजूर तहसीलें, जिनमें जमीन के मालिक अपने करों का भुगतान सीधे सरकार को कर सकते थे।
३. ताल्लुकेदारों और जमींदारों की जागीरदारियों वाले जिले, इनमें करों का भुगतान इजारा या शर्तनामें के अनुसार होता था।
४. अमानी या ट्रस्ट प्रणाली के अंतर्गत आने वाले जिले। यहाँ पर कर्नल स्लीमैन ने खालसा को हजूर तहसील इजारा और अमानी से भिन्न मान कर अपने अज्ञान का ही परिचय दिया है। उसे इतना भी ज्ञान नहीं कि ये अंतिम तीन विभाजन भी खालसा ही हैं। इनमें कोई भेद नहीं। खालसा शब्द के अर्थ तो कोई भी निरक्षर ग्रामीण तक जानता है। सभी जगहों पर लोगों को अच्छी तरह से मालूम है कि 'खालसा' शब्द के अर्थ हैं 'जिस पर राज्य के शासक का अधिकार हो।' हुजूर तहसील से तात्पर्य यह है कि शासक की ओर से किसी विशेष अधिकारी को उन भागों की कर वसूली के लिए नियुक्त किया गया है, जो वहाँ के स्थानीय अधिकारी की सीमा से बाहर है। कर्नल आउटरम से भी गलती इसीलिए हुई कि सारे भारतवर्ष की भाँति अवध में भी एक या दो गाँवों के मालिकों को जमींदार और दस से बीस गाँवों के मालिकों को तल्लुकेदार कहा जाता है। इनकी जमीनें ही खालसा कही जाती हैं। इनके करों का भुगतान सरकार को किया जाता है।

"कॅर्नल आउटरम ने अपने प्रिय अधिकारी कर्नल ऑर का अंधानुकरण करके बड़ी भारी भूल की। कर्नल ऑर ने अपने ५ फरवरी, १८५५ के एक पत्र में लिखा है—'अभी कुछ ही वर्ष पहले सैकड़ों-हजारों गाँव ऐसे थे जिनपर ताल्लु-

से अधिकारियों ने अपने फैसलों के औचित्य को सिद्ध करने की कोशिश की है। इसी प्रकार चार-पाँच और घटनाओं का उल्लेख भी केवल इसी उद्देश्य से किया गया है जिससे

केदारों का अधिकार न था। वे सीधे शासन के अधिकार के अंतर्गत थे। उन्हें खालसा कहा जाता था।' अब यह तो स्पष्ट ही है वे गाँव चाहे ताल्लुकेदारों के हों या न हों, उस समय भी ख़ालसा के अंतर्गत ही आते थे। उनके करों की सारी धनराशि सरकारी ख़ज़ानों में ही जाती थी। हाँ, कुछ जागीरें अथवा उपहार स्वरूप प्राप्त ज़मीनें अवश्य ही इनसे मुक्त थीं।'

"कैप्टेन ऑर के वक्तव्यों पर आँख मूंदकर विश्वास करके कैप्टेन आउटरम ने दूसरी भूल की। कैप्टेन ऑर के ५ जनवरी, १८५५ के क पत्र में करों के हड़प लिए जाने के विषय में एक और कारण भी बताया गया है—'अभी कुछ ही वर्ष पहले ये सैकड़ों-हज़ारों गाँव ऐसे थे जिन पर ताल्लुकेदारों का अधिकार न था, वरन् सीधे शासनाधिकार के अंतर्गत आते थे। कई वर्षों से रिश्वत लेकर चकलेदार लोग इन्हें ताल्लुकेदारों का बताते चले आ रहे थे जब कि पिछले पट्टे के जुम्मों में कोई वृद्धि नहीं होती थी।

"यह परम्परा अब भारत में सभी लोग भली प्रकार जान चुके हैं। कंपनी के प्रांतों में यह विशेष रूप से प्रचलित है। इन प्रांतों में जब कोई ज़मीदार निर्धारित कर की धनराशि नहीं चुका पाता तो गाँवों को बेच कर रक़म की वसूली कर ली जाती है। अधिकांशतया इसका उत्तरदायित्व किसी विश्वासपात्र ताल्लुकेदार पर छोड़ दिया जाता है। इस प्रकार कलेक्टरों की एक अच्छी खासी पलटन के कारण होने वाली अनावश्यक देरी और खर्च आदि अन्य झंझटों से छुटकारा मिल जाता है।

"कर्नल आउटरम इस प्रथा से पूर्णतया अनभिज्ञ थे। फिर कैप्टेन ऑर ने उन्हें और भी अधिक भ्रम की स्थिति में डाल दिया। अतः इसकी शिकायत करते हुए वह लिखते हैं 'एक ज़िले में ६५० गाँवों में से ६२५ गाँवों को नियंत्रण में रखने के अधिकार रियासत से छिन गये हैं।' लेकिन इससे इतना लाभ तो अवश्य हुआ है कि कलेक्टरों की संख्या ५०० से घट कर २५ ही रह गयी। लेकिन कर के वसूल करने की कार्यक्षमता में कोई कमी नहीं हुई और कमखर्च म ही काम चलने लगा। ज़्यादातर ताल्लुकेदार लोग स्वयं ही आकर कर की रक़म चुका देते हैं, लेकिन यदि कोई ऐसा नहीं करता तो किसी अधिकारी व्यक्ति को उसके यहाँ भेज कर सारी रक़म मंगवा ली जाती है। क्या ताल्लुकेदारों को यह शोभा देता है कि बादशाह के कलेक्टरों के कर्तव्य-पालन में बाधक बनें?

अवध की अदालतों की निरर्थकता प्रमाणित की जा सके। इस प्रकार कर्नल स्लीमैन के पदचिह्नों का अनुसरण मात्र किया गया है। दूसरी ओर ब्रिटिश पाठकों के सम्मुख यह महत्त्वपूर्ण तथ्य भी नहीं छिपा है कि अवध की अदालतें यद्यपि 'साम्राज्ञी की अदालतों' (ब्रिटिश सरकार की) से समता नहीं रखतीं, परंतु उनकी पुलिस ने सभी घटनाओं में ब्रिटिश सीमांत प्रदेशों की सुरक्षा में सफलता प्राप्त की थी। जनरल आउटरम के मतानुसार—

"अवध फ्रंटियर पुलिस की स्थापना सबसे पहले सन् १८४५ में की गयी थी। उस समय इसमें केवल ५०० पैदल और १०० घुड़सवार सिपाही थे। वर्तमान बादशाह ने ७७०६२ रु० वार्षिक व्यय की लागत पर पैदल सिपाहियों की संख्या ७५० और घुड़सवारों की संख्या १५० कर दी। पुलिस दल की शक्ति को बढ़ाने का उद्देश्य यह था कि शरणार्थी ब्रिटिश अपराधियों के आक्रमण से सुरक्षा की जा सके। इसके खिलाफ सभी ओर से शिकायतें सुनने में आ रही थीं। क्या मजिस्ट्रेट, क्या ठगी विभाग के कार्यालय वाला अधिकारी वर्ग सभी इनसे तंग आ चुके थे। दरबार की ओर से रेजिडेंट भी इन अपराधियों को पकड़वाने के लिए जीतोड़ कोशिश कर रहे थे। इस शक्तिशाली पुलिस दल ने इन अपराधियों को पकड़ने में काफी सफलता प्राप्त की। पुलिस के कर्त्तव्य-पालन की कर्नल रिचमंड और कर्नल स्लीमैन दोनों ने ही सराहना की। कर्नल स्लीमैन ने १० मार्च, १८४९ को निम्नलिखित रिपोर्ट तैयार की :—

**"जहाँ तक चकलेदारों पर कैप्टेन ऑर के द्वारा लगाये गये रिश्वत लेने के आरोपों का प्रश्न है प्रमाणों के अभाव में स्वीकार करने योग्य नहीं हैं।**

**"कर्नल आउटरम ने अपनी रिपोर्ट में हुजूर तहसील प्रथा की बड़ी ही अतिरेक-पूर्ण प्रशंसा की है।—'हुजूर तहसील प्रणाली के अन्तर्गत जमींदार लोग किन्हीं अन्य साधनों को उपयोग में न लाकर बादशाह को कर चुकाते हैं। अवध में यही कार्य-प्रणाली सबसे लोकप्रिय सिद्ध हुई है। कोई भी अन्य कार्यप्रणाली इतनी सफल नहीं रही जितनी कि यह रही। जब भी किसी जमींदार को अपनी संपत्ति को स्थानीय अधिकारियों के चंगुल से छुड़ा कर हुजूर तहसील प्रणाली के अंतर्गत हो आने का सौभाग्य प्राप्त होता है तो वह कर के अतिरिक्त भी कुछ धन देता है जो खजाने में नहीं जमा किया जाता। इस तरह कभी-कभी रिश्वत ली जाया करती है।" इस आरोप के उत्तर में वास्तविकता तो यह रही है कि दूसरे रेजिडेन्टों ने भी इस कार्य-प्रणाली को सबसे अधिक पसंद किया है। यदि ठीक तरह से जाँच की जाय तो पता चलेगा कि इससे कहीं अधिक बेशर्मी से कचहरियों में ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकारी लोग रिश्वत लिया करते हैं।"**

"फ्रंटियर पुलिस का बड़ा ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। अपने काम में यह पूणरूप से दक्ष एवं सक्षम है। मेरे विचार से सीमांत प्रदेशों में अपराधों की संख्या इतनी कम पहले कभी नहीं रही है। जौनपुर, आज़मगढ़ और गोरखपुर आदि ज़िलों के अपराधों की संख्या बहुत ही कम हो गयी है। कप्टेन हालिंग के दूसरे सहयोगी कैप्टेन ऑर के सफल प्रयासों से इन ज़िलों के मजिस्ट्रेटों को काफी संतोष हुआ है। पूर्वी सीमांत प्रदेश पर फ्रंटियर पुलिस इन्हीं के अधीन थी। इन ज़िलों में किसी भी अपराधी के लिए अपराध करने के बाद पुलिस की निगाहों से बच निकलना यदि असंभव नहीं तो काफी कठिन अवश्य है। शायद ही कोई अपराधी पकड़े जाने से बच पाता हो। पहले सहयोगी के रूप में (असिस्टेंट) कैप्टेन हियरसे शाहजहाँपुर से मिलने वाले पश्चिमी प्रदेशों की फ्रंटियर पुलिस को आदेश देने के लिए नियुक्त किया गया है। वह भी अपने काम में सफल रहा है। परंतु पूर्वी प्रदेशों की अपेक्षा पश्चिमी प्रदेशों में अपराधियों को पकड़ पाना कहीं अधिक कठिन काम है।

एक ओर तो कर्नल स्लीमैन और आउटरम बादशाह की सरकार के विरुद्ध बराबर नये-नये आरोप लगाया करते थे, वहीं दूसरी ओर सीमा की सुरक्षा के लिए बादशाह के प्रयासों की प्रशंसा किये बिना भी उनसे रहा न गया। उनके एक कथन के अनुसार "अवध की सड़कें उस समय की अपेक्षा कहीं अधिक सुरक्षित हैं जिस समय जनवरी, १८४९ में मैंने अपना पद ग्रहण किया था।" सन् १८५२ का उल्लेख बादशाह के पक्ष में एक और प्रमाण है। वह आगे लिखता है—"दरबार में इच्छानुसार ही आचरण करता रहा और जनता के लाभ के लिए मेरे कई सुझावों को भी प्रयोग में लाता रहा।" कर्नल स्लीमन ने यह भी स्वीकार किया है कि सीमा के झगड़ों को सुलझाने में उसे सहयोग प्रदान करने के लिए भी अवध सरकार काफी इच्छुक थी। इन झगड़ों की वजह से भारत में भीषण रक्तपात होता रहा था। सरकार इस तथ्य से इनकार नहीं कर सकती, भले ही अवध की सरकार पर आरोपों की झड़ी लगा दी गयी हो। यदि ब्रिटिश सरकार इस संबंध में अपने को 'दूध की धुली' मानती थी तो उसे अदालत में आकर, अपनी सफाई पेश करके अपने निर्दोष होने का प्रमाण प्राप्त कर लेना चाहिए था। बंगाल के जिन मिशनरियों को लेकर 'हाउस आफ कामंस' में काफी वाद-विवाद छिड़ा था—इस संबंध में ठीक ही रुख अपनाया गया है। उन्हें भुला नहीं देना चाहिए।

एम० ल्यूइन के कथनानुसार "बंगाल के डिप्टी गवर्नर हेलिडे ने अभी हाल ही में अवध की न्याय-व्यवस्था के संचालन में कुप्रबंध होने की जितनी शिकायत की है, वास्तव में उससे खराब स्थिति तो अपने स्वयं के ज़िलों में है। किसी भी देश में—चाहे वह कितना ही असभ्य और पिछड़ा हुआ क्यों न हो—इतनी कुव्यवस्था तो वहाँ नहीं ही

होगी। मद्रास की सीमा पर हो रहे अत्याचारों की जाँच करने के लिए पार्लियामेंट की ओर से जिन कमिश्नरों को नियुक्त किया गया था, उनकी रिपोर्ट से यह बात स्पष्ट रूप से सामने आ जाती है। हेलिडे ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि बंगाल में न्याय-व्यवस्था केवल एक ढोंग मात्र है। वे लिखते हैं--"गाँव की पुलिस भूखों मरती रहती है। उसमें से अधिकांश तो स्वयं ही चोर-लुटेरे हैं अथवा चोर-लुटेरों से मिले हुए हैं। चोर-लुटेरों के साथ उनके संबंध इतने गहरे हैं कि अगर गाँव में कोई व्यक्ति लूट लिया जाता है तो सबसे पहले उस गाँव के चौकीदार पर ही संदेह किया जाता है।" आगे चलकर एक स्थान पर वह लिखते हैं—"हमारे न्यायालयों से जनता का विश्वास उठ चुका है। यहाँ की न्याय-व्यवस्था, लॉटरी डालकर निर्णय करने की अपेक्षा शायद कुछ बेहतर हो, लेकिन कोई विशेष अंतर लोगों को दिखाई नहीं देता।" मद्रास में नियुक्त कमिश्नरों के मतानुवार देश की पुलिस और लुटेरों में कोई अंतर नहीं है। धन और प्राण दोनों ही सुरक्षित नहीं रह गये हैं। अत्याचार करना तो सरकार की कार्य-प्रणाली का एक अंग बन गया है। कर वसूल करने और पुलिस की कार्रवाइयों के लिए अत्याचार किये जाने को अत्यधिक आवश्यक साधन मान लिया गया है। जनता की सेवा के लिए किये जानेवाले अन्य कर्त्तव्यों की तरह इस कर्त्तव्य का पालन भी नियमित रूप से करते रहने की सरकार आदी हो गयी है।[1]

क्लारिकार्ड के मार्क्विस ने १९ फरवरी को अपने एक व्याख्यान में इस मामले को अपने सत्ताधिकारियों (हाउस आफ लॉर्ड्स) के सम्मुख रखा। उस व्याख्यान का एक अंश निम्नांकित है :—

"भारत के लिए एक नयी कानून संहिता बनाये जाने का आश्वासन दिया गया था, लेकिन अभी तक इसका समावेश नहीं किया गया। इसबीच न्याय-व्यवस्था का भ्रमास्पद और अनिश्चित स्थिति में पड़े रहना बड़ा ही अशोभनीय है। क्या कोई विश्वास कर सकता है कि भारत में इतनी बड़ी शासकीय सत्ता के अधीनस्थ लोगों की सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए कोई कानून ही नहीं है? यहाँ के निवासियों के संपत्ति संबंधी अधिकारों की दशा भी बड़ी अस्तव्यस्त-सी है। जब से देश हमारे अधिकार में आया, इस प्रकार की टीका-टिप्पणियों में प्रेसिडेंसियों के सर्वोच्च न्यायालयों (सुप्रीम कोर्ट्स) को नहीं सम्मिलित किया गया है। ये सर्वोच्च न्यायालय अपवाद स्वरूप हैं। क्योंकि इनका संचालन कानून के अनुभव प्राप्त व्यक्तियों द्वारा किया जा रहा है। वे निणय देने में बड़ी सावधानी रखते हैं। लेकिन भारतवर्ष की अदालतों में तो खुलेआम पक्षपात का ही बोलबाला है।

१. मद्रास की सदर अदालत के द्वितीय न्यायाधीश स्वर्गीय मैलकाम ल्यूइन के द्वारा लिखित "पैम्फ्लेट आन अवध" से।

यदि कोई अंग्रेज देश के किसी भी भाग में किसी निवासी को मार डाले या भीषण रूप से घायल कर दें तो मृतक के रिश्तेदार या वह घायल व्यक्ति जब तक सर्वोच्च न्यायालय में न जाय, उस अंग्रेज का बाल बाँका नहीं कर सकता। मान लीजिए कि कलकत्ते से १,५०० मील दूर पंजाब में कोई अंग्रेज़ किसी निवासी को मार डाले या मार डालने का प्रयत्न करे तो जब तक गवाहों को परीक्षा देने के लिए १,५०० मील कलकत्ते न ले जाया जाय तब तक उस अंग्रेज़ का कुछ भी नहीं बिगाड़ा जा सकता। लेकिन यदि कोई भारतवासी ऐसा कुछ कर डाले तो उसे तुरंत स्थानीय अदालत में पेश कर दिया जायगा और वे मजिस्ट्रेट, जो अपने पद के लिए सर्वथा अयोग्य हैं, मनमाना निर्णय सुना सकने के लिए स्वतंत्र हैं। इन मजिस्ट्रेटों के चरित्र के संबंध में क्या कहा जाय जब कि चरित्र नाम की कोई भी चीज़ इनके पास न हो।

ईस्ट इंडिया कंपनी की अपराध संबंधी अदालतों से तो लोग डर के मारे थर-थर काँपते हैं। ये तो बदला लेने एवं अत्याचार करने के लिए एक साधनमात्र बन कर रह गयी हैं। इन अदालतों में पूर्व धारणाओं को ही साक्षी मान कर निर्णय सुना दिये जाते हैं। इनके संमुख मनुष्य का दुर्भाग्य ही उसका सबसे बड़ा अपराध है। जनता को इन पर रत्ती भर भी विश्वास नहीं रह गया है। ये केवल जुर्माना करके ही संतोष नहीं पा लेतीं, बल्कि लोगों की स्वतंत्रता, धन, प्राण, एवं सामाजिक अस्तित्व का भी मूलोच्छेदन करने में ही कार्यरत रहती हैं। जनता इनसे हर हालत में छुटकारा पाने के लिए अधीर हो उठी है। जनता की सबसे बड़ी इच्छा है कि उसे न्याय मिले और इसीलिए उसकी ओर से सर्वोच्च न्यायालय में मुकदमा चलाये जाने की माँग की जाती है। जनता भली-भाँति जानती है कि सर्वोच्च न्यायालय के अतिरिक्त न्याय मिलने की स्वप्न में भी आशा करना मूर्खता है।

"भारत की शोचनीय दशा के विषय में अपने स्वामियों को विश्वास दिलाने के लिए वह बंगाल के लेफ्टिनेंट हैलिडे के उस उद्धरण को साक्षी के रूप में प्रस्तुत कर रहा है। इसमें बंगालियों की दशा का वणन निम्नांकित शब्दों में किया गया है :—

"काफी लम्बे अर्से से बंगाल सरकार की मुफस्सिल पुलिस की बुराई की चर्चा परंपरागत रूप में होती चली आयी है। इस दिशा में सुधार करने के प्रयास भी लगभग नहीं के बराबर किये गये हैं। हर जगह 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली कहावत ही चरितार्थ होती दीख पड़ती है। धन के द्वारा उचित-अनुचित सभी कुछ करने की खुली छूट मिली हुई है। सबसे बड़ी शक्ति धन ही है। यह बात तो निर्विवाद रूप से सत्य है कि पिछले २० वर्षों से पिछड़े हुए प्रांतों के ग्रामीण क्षेत्रों की पुलिस अपने उच्च स्थान, चरित्र एवं जनहित की एक संस्था होने की दृष्टि से बराबर पतन की ओर उन्मुख हो रही है।

वास्तव में अदालतों से तो जनता का विश्वास उठ ही चुका है। जनता यहाँ की न्याय व्यवस्था को लॉटरी की अपेक्षा कुछ ही बेहतर समझती है। बात ठीक हो या न हो, परंतु कम से कम जनता की तो यही राय है। लोगों का कहना यही है कि अधिकांश मामलों म जीत अपराधी की ही होती है। यूरोपीय मुफस्सिल समुदाय के लोगों की भी लगभग ऐसी ही राय है।"

व्यापारी वर्ग के कथनानुसार कानूनी व्यवस्था की शिथिलता का तो यह हाल था कि २० या ३० वर्षों में जितना लाभ हो पाया था अधिक से अधिक पाँच या छः वर्षों में वसूल किया जा सकता था। लेकिन कानून का ठीक ढंग से पालन न करने से इतने समय का अपव्यय हो जाया करता था। भारत के एक काश्तकार ने कहा था :—

"कानून की ऐसी दशा के कारण खेतिहरों को भारी हानि उठानी पड़ती है। संक्षेप में कपनी की ओर से खेतिहरों को पूरी तरह से बरबाद कर डालने के अतिरिक्त और कोई दूसरी सुविधा तो नहीं मिली थी। कंपनी को तो लूट-खसोट से ही फुरसत नहीं मिलती। संसार के अन्य सभ्य देशों के समान यदि कोई उचित न्याय-व्यवस्था यहाँ भी होती तो बीस या तीस वर्षों में जितना लाभ हुआ है अधिक-से-अधिक पाँच या छः वर्षों में बड़ी आसानी से हो सकता था। इससे प्रति वर्ष जो हानि उठानी पड़ी है, इंग्लैंड में उसका अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता। कंपनी की अदालतों से न्याय मिलना असंभव होने के कारण पिछले तीन वर्षों से मैं लगभग २,५०० स्टर्लिंग का ऋणी हो गया हूँ। निचली अदालतों में न्याय मिलने की बात एक क्षण के लिए मेरे स्वप्न तक में नहीं आयी। वहाँ तो मुझे और भी अधिक हानि उठानी पड़ती।[१]

इसी विषय को लेकर 'पार्लियामेंट' के दोनों सदनों में काफी वाद-विवाद छिड़ता रहा, लेकिन बंगाल के लेफ्टिनेंट गवर्नर जैसे अधिकारियों के इस प्रकार के वक्तव्यों से भी किसी के कानों पर जूँ तक नहीं रेंगी। ब्रिटिश सरकार पर इनका रत्ती भर भी प्रभाव न हुआ। प्रत्येक संप्रदाय के ईसाई मिशनरियों ने इस वक्तव्य को लेकर काफी विचार-विमर्श किया और इस मामले को किन्नार्ड ने आगे बढ़ाया। इस प्रकार उपर्युक्त वक्तव्य का काफी महत्त्व बढ़ गया। अन्याय के विरुद्ध उठाये गये स्वरों को भारी बल प्राप्त हुआ। स्थानीय गवर्नर के एक मिनिट में यह विरोध तो परिलक्षित होता है ही, साथ ही कुछ नग्न सत्यों का भी उद्घाटन हो जाता है। ये विरोधस्वरूप उठाये गये स्वर स्पष्ट रूप से कहते हैं कि किसी के साथ कितना ही भारी अन्याय क्यों न

**१. बृहस्पतिवार, १९ फरवरी, १८५७ को क्लारिकार्ड के मार्क्विस के एक वक्तव्य से, जो हाउस आफ लॉर्ड्स में दिया गया था।**

हुआ हो, न्याय की आशा करना उसके लिए दुराशामात्र ही होगी। उनका यह विश्वास करना ठीक ही प्रतीत होता है कि सरकार को उनके मरने-जीने से कोई सरोकार नहीं है। चारों ओर बुराइयों के बढ़ते रहने के कारण लोगों का नैतिक पतन हो रहा है। यह चेतावनी बड़े दुःख के साथ दी जा रही है कि यदि वर्तमान स्थिति में कोई सुधार न किया गया तो ग्रामीण क्षेत्रों में असंतोष और अधिक बढ़ जाने का भय है। ग्रामीण क्षेत्रों में कंपनी के प्रति घृणा का भाव दिनों-दिन प्रबल होता जा रहा है। इसके लिए एक जाँच कमीशन नियुक्त किया जाना चाहिए जिसमें ऐसे व्यक्तियों को स्थान दिया जाय जो स्वतंत्र विचारों वाले हों और अधिकारियों के दुष्प्रभाव से मुक्त होकर निष्पक्ष रूप से जाँच करें। उनके मन में पहले से ही किसी प्रकार का पूर्वाग्रह न बन गया हो। अवध की अदालतों और पुलिस की किसी प्रकार की आलोचना करने से पहले कंपनी को ज़रा अपने काले कारनामों पर भी एक नज़र डालनी चाहिए। संभव है कि ब्रिटिश सेना वाले तथा संथालों के विद्रोह में इन विषम परिस्थितियों तथा व्यापक असंतोष का भी कुछ योगदान रहा हो। लेकिन कंपनी की सेवा में नियुक्त यूरोपीय अधिकारी इन सबके संबंध में पूर्णतया बेखबर थे। उन्हें तो यह भी नहीं मालूम था कि करों की वसूली में लोगों के साथ कितने अत्याचार किये जाते हैं। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि पुलिस और अदालतों के संबंध में अवध के बादशाह की व्यवस्था कंपनी की अपेक्षा कहीं अधिक अच्छी थी। अतः कुप्रबंध की शिकायत बादशाह को होनी चाहिए थी, न कि कंपनी को।

जनरल आउटरम के इस अभियोग-पत्र का अगला शीर्षक 'अवध की सेना' है।

## ४. अवध की सेना

जनरल आउटरम ने तो यह स्वीकार ही कर लिया है कि सेना की वास्तविक शक्ति के संबंध में उनके पास कोई विश्वस्त आँकड़े नहीं हैं। कारण यह है कि सेना के किसी भी भाग का निरीक्षण करने का उन्हें अवसर ही नहीं मिला (अवध ब्ल्यू बुक, पृष्ठ ३२, अनुच्छेद ६७–६८)। परंतु कैप्टेन हापस के दिये गये प्रमाण के आधार पर उसे "लुटेरी, चरित्रहीन और अव्यवस्थित" आदि की संज्ञा दे डालने में उन्हें ज़रा भी संकोच न हुआ। कैप्टेन ऑर और बनबरी के दिये गये विवरणों में सेना के स्तर को बहुत ही निम्नकोटि का बताया गया है। सेना के अनुशासन के संबंध में भी कोई अच्छी राय नहीं ज़ाहिर की गयी है। कहा तो यह भी गया कि कुछ परिस्थितियों में सैनिकों के वेतन का ऋण शेष रह जाया करता था। यह भी कहा गया कि जब ये सेनाएँ किसी ओर से होकर निकलती थीं तो किसानों के साथ बड़ा लूट-पाट मचाती थीं। जैसा 'कर और अर्थ-व्यवस्था' वाले शीर्षक के अंतर्गत लिखा जा चुका है। इस सेना के वेतन का भुगतान जिला कलेक्टरों के

हाथों सौंप दिया गया था। बादशाह ने अपने 'उत्तर' में अनुच्छेद ४०–४१ में स्पष्ट रूप से उपर्युक्त आरोपों का खंडन किया है। उसने लिखा है कि सेना को कठोर आदेश दिये गये थे कि किसानों से बलपूर्वक कुछ भी न लें और जब भी उनसे कुछ लें तो उसका उचित मूल्य भी चुका दें। यह बात सामान्य बुद्धि वाला व्यक्ति भी समझ सकता है कि ये सैनिक अपनी ही संपत्ति एवं संबंधियों को कैसे लूट सकते थे। ये सैनिक तो अवध के ही निवासी हैं। फिर इनसे ऐसी आशा किस प्रकार से की जा सकती है कि वे अपने ही लोगों के साथ इस प्रकार का व्यवहार करेंगे। अब रहा सेना के असंगठित होने का प्रश्न। कर्नल स्लीमैन और रिचमंड ने इस संबंध में बड़े-बड़े आरोप लगाये हैं। इस प्रकार के आरोपों के उत्तर में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि बादशाह ने जिस समय शासन का भार अपने हाथ में लिया था और अपनी सेनाओं के पुनर्गठन का प्रयास किया था तब इन्हीं दोनों व्यक्तियों ने ही बादशाह की इस योजना पर पानी फेर दिया था। बादशाह को यह धमकी देकर हतोत्साहित भी किया था कि कंपनी को उसकी यह योजना बिल्कुल नापसंद है। अतः इसे स्थगित कर दिया जाय। इस प्रकार जनरल आउटरम के इस आरोप का स्वयं खंडन हो जाता है। सच बात तो यह है कि अवध सरकार के प्रति हम जिस प्रकार का व्यवहार कर रहे हैं, वह हर हालत में अनुचित है। हमारा इस प्रकार का व्यवहार कोई नयी बात नहीं, वरन् हमारी ऐतिहासिक परंपरा के अनुरूप ही है।

## ५. सड़कें एवं जनहित के कार्य

इस शीर्षक के अंतर्गत मुख्य आरोप यह लगाया गया है कि "सन् १८४९ में कर्नल स्लीमैन के दिये गये विवरण के बाद से नयी सड़कें बिल्कुल नहीं बनायी गयीं। संपूर्ण अवध में कानपुर जाने वाली सड़क को छोड़कर कोई भी सड़क पक्की नहीं है।" यह सड़क ईस्ट इंडिया कंपनी की आवश्यकता के अनुसार बादशाह ने ३५,००० स्टर्लिंग खर्च करके बनवायी थी। यदि थोड़ी देर के लिए मान लिया जाय कि अवध सरकार ने जनहित के लिये केवल इतना ही कार्य किया तो भी हम उसे दोषी नहीं ठहरा सकते। वास्तव में इसके लिए दोषी ईस्ट इंडिया कंपनी ही है। कंपनी को अपनी सेनाएँ लखनऊ तक भेजने के लिए सड़कों की बड़ी आवश्यकता थी। लेकिन जब बादशाह ने अपनी राज्य-सीमाओं में फैजाबाद से होती हुई एक सड़क बनवाने का प्रस्ताव रखा तो कंपनी ने केवल सहयोग देने से ही नहीं, वरन् इसके लिए अनुमति तक देने से इनकार कर दिया। यदि यह सड़क बन जाती तो अवध के लोगों को बड़ा लाभ पहुँचता। व्यापार में तो उन्नति होती ही, साथ ही साथ काफी चक्करदार रास्ते के स्थान पर सीधा और कम दूरी का रास्ता तैयार हो जाता। इस पर भी जनरल आउटरम ने अपनी रिपोर्ट में फैजाबाद और लखनऊ के बीच सड़क को बड़ी टूटी-फूटी बतलाया है। इसके अतिरिक्त लखनऊ में जो भी निर्माण-

कार्य एवं प्रगति हुई भी है उसे भी अत्यंत खर्चीला बता कर उसके महत्त्व को समाप्त कर दिया है। एम० एम० मसीहुद्दीन ने अपने एक वक्तव्य में जनरल आउटरम की कई अवहेलनाओं पर प्रकाश डाला है। वह लिखता है :—

"इस शीर्षक के अंतर्गत कर्नल आउटरम ने निरीक्षण करके जो कुछ भी लिखा है उसमें बादशाह और उसके पूर्वजों के द्वारा समय-समय पर बनवायी जाने वाली बड़ी-बड़ी सड़कों और इमारतों का जानबूझ कर उल्लेख नहीं किया गया है। इनके निर्माण-कार्य में रेजिडेंट की अनुचित अड़ंगेबाजी के कारण बादशाह को भारी आर्थिक हानि भी उठानी पड़ी है। इसका कोई उल्लेख न करके कर्नल आउटरम ने जो जघन्य पाप किया है उसकी जितनी भी निंदा की जाय, कम होगी। इन अवहेलनाओं के कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं। बादशाह ने अपने खर्च पर प्रत्येक गाँव में यात्रियों के लिए विश्रामगृह अथवा सरायें स्थापित करा दी थीं। यात्रियों की सुरक्षा के लिए प्रत्येक सराय में पुलिस भी रखी जाती थी। धीरे-धीरे इन सरायों की हालत बिगड़ती गयी। प्राचीन काल में मुसलमान बादशाहों द्वारा निर्मित ये सरायें अब या तो चोरों के अड्डों या जंगली पशुओं की गुफाएँ बन कर रह गयी हैं।

"बेचारे यात्री यदि गरीब हुए तो वृक्षों की शरण में जाते हैं और धनवान् यात्रियों को तम्बू गाड़कर अपनी रक्षा करनी होती है। परंतु हत्यारे डाकुओं से फिर भी उनकी रक्षा नहीं हो पाती।

"कलकत्ता में ही सरकार का तख्त है। लेकिन यहाँ एक भी सराय नहीं है। यात्रियों के ठहरने के लिए होटल ही एकमात्र स्थान है। परिणामस्वरूप सैकड़ों गरीब राहगीरों को खुले आकाशके नीचे ही रात काटने को विवश होना पड़ता है। इनमें से कुछ लोग तो वास्तव में इतने गरीब होते हैं कि होटलों का भारी खर्च उठा सकने में असमर्थ होते हैं। कुछ लोग इसलिए भी होटलों में ठहरना नहीं पसंद करते कि ईसाइयों द्वारा चलाये गये होटलों में रुकने से उनकी धार्मिक भावनाओं को आघात पहुँचता है।

"अवध के भूतपूर्व एवं वर्तमान बादशाहों ने लगभग १००,००० कुएँ खुदवाये।

"स्वर्गीय बादशाह के शासन काल में गोमती नदी पर एक लोहे का पुल बनाया गया, इसके बनाने के लिए काफी धनराशि खर्च करके इंग्लैंड से सामान मँगवाया गया था। इस पुल के लिए किसी को कर या चुंगी नहीं देना होता था। बादशाह ने इसे अपने अधीन कर्मचारियों एवं अधिक से अधिक जनता की सुविधा के उद्देश्य से ही निर्मित कराया था।

"जिस समय कानपुर से लखनऊ तक एक सार्वजनिक सड़क बनाने का निश्चय किया गया रेजिडेंट के अनुमोदन पर एक यूरोपीय अधिकारी को निर्देशक या व्यवस्थापक

के रूप में नियुक्त किया गया। कुछ ही समय बाद एक लाख रुपये लेकर वह यूरोपीय अधिकारी भाग खड़ा हुआ। रेजिडेंट ने उसे पकड़ कर दंडित करने का जरा-सा भी प्रयास न किया। यह बात कर्नल स्लीमैन ने अपनी रिपोर्ट में एकदम ही दबा दी और सारा आरोप बादशाह के मत्थे मढ़ दिया।

"बादशाह ने व्यापार को प्रोत्साहन देने, कृषि को लाभ पहुँचाने तथा देश भर की भूमि को उपजाऊ बनाने के लिए, गंगा और गोमती को मिलाती हुई एक नहर खोदने की आज्ञा जारी की थी। कई लाख रुपये खर्च करके लगभग ५० मील तक नहर खोदवा भी डाली थी तभी रेजिडेंट ने हस्तक्षेप करके काम में बाधा उत्पन्न कर दी। रेजिडेंट के कथनानुसार वह तो ईस्ट इंडिया कंपनी की संपत्ति थी क्योंकि गंगा नदी उस सीमा क्षेत्र से होकर गुजरती थी। अतः सारा सीमा क्षेत्र ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकार में बता दिया गया।

"यदि रेजिडेंट की बात सत्य भी थी तो उसका कर्त्तव्य था कि काम शुरू होने के पहले ही सारी परिस्थिति से बादशाह को अवगत करा देता। लेकिन रेजिडेंट ने ऐसा नहीं किया। इससे तो यही प्रकट होता है कि रेजिडेंट का उद्देश्य ही यह था कि वह बादशाह के आर्थिक साधनों को अपंग कर दे जिससे बादशाह संपूर्ण रूप से उसके अधीन हो जाय और देश की उन्नति रुक जाय।

"कंपनी ने अपनी राज्य-सीमा के अंतर्गत दो ही कार्य किये थे—मुख्य रूप से कुछ सड़कें बनवायी थीं और कुछ डाक बँगले भी बनवायें गये थे। सड़कें सैनिकों की सुविधा के लिए थीं और डाक बँगले या तो डाक बाँटने की कार्यक्षमता में वृद्धि करने के लिए थे या फिर धनी लोगों के ठहरने के लिए। वहाँ के निवासियों के लिए अगर कुछ बना भी था तो जेलें। जेलों की भारी संख्या देखकर यह अनुमान लगाना कठिन नहीं कि कंपनी की शासन-व्यवस्था को इनसे कितना अधिक लाभ है।

## ६. अपराधों एवं अत्याचारों के आँकड़े

इसके संबंध में हम थोड़ा बहुत तो इस अध्याय के प्रारंभ में ही लिख चुके हैं। यहाँ इतना कह देना काफी होगा कि ये आँकड़े बे-सिर-पैर के हैं और अधिकांशतया एकदम अविश्वसनीय सूत्रों द्वारा एकत्र किये गये हैं। इनमें ज्यादातर अनुमान का ही सहारा लिया गया है। यह तो स्वीकार किया ही जा चुका है कि ये पूर्णरूप से कर्नल स्लीमैन की रिपोर्ट पर आधारित हैं। इनके द्वारा किसी सही निर्णय पर पहुँच पाना नितांत असंभव है।

उदाहरण के लिए, अपराधों के बढ़ने के विषय में निम्नलिखित टिप्पणियों में कितना अधिक विरोधाभास है। मेजर ट्रूप (पृष्ठ ५७) के कथनानुसार सुलतानपुर जिले में

"अपराधों की वृद्धि हुई है।" कैप्टेन बनबरी (पृष्ठ ५८) पर उसी ज़िले के विषय में "अवध में जहाँ अपराधों एवं नृशंसताओं का काफी जोर रहा करता था, अब बहुत ही कम हो चले हैं।" कैप्टेन पैट्रिक और कैप्टेन एलेक्ज़ेंडर ऑर के कथनानुसार अपराध न तो घटे और न ही बढ़े। ले बॉस के मतानुसार जौनपुर में डकैतियों की संख्या में कमी हुई है और "कुछ वर्षों से इस दिशा में निश्चयात्मक रूप से कुछ सुधार हुआ है।" गोरख-पुर के चेस्टर ने भी यही प्रदर्शित किया है कि अपराध घटे हैं। स्पैंकी के अनुसार अप-राधों की दशा पहले-जैसी ही चली आ रही है। इसी प्रकार का विरोधाभास भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के लिए लोगों के विचारों में भी देखने को मिलता है। अगेई (?) अली खाँ नामक एक व्यक्ति को जो सुलतानपुर का नाज़िम था, लखनऊ के भूतपूर्व रेजिडेंट कर्नल स्लीमैन का एक अनुमोदन पत्र मिला था। कर्नल आउटरम (पृष्ठ २४) पर लिखते हैं कि "मेजर ट्रूप और कैप्टेन पैट्रिक दोनों ही इस व्यक्ति के आचरण के संबंध में एक ही मत रखते हैं।" इनके वक्तव्यों में इस व्यक्ति की अत्यधिक कटु आलोचना की गयी है और उसे ही सारे अपराधों और झगड़े-फसादों का मूल कारण तो ठहराया ही गया है, साथ ही उसके विरुद्ध अपराधियों को शरण देने का आरोप भी लगाया गया है। कैप्टेन एलेक्ज़ेंडर ऑर (पृष्ठ ६६) ने तो यहाँ तक लिखा है कि अगेई (?) के चरित्र के विषय में कर्नल स्लीमैन के अतिरिक्त अंग्रेज़ कमिश्नरों ट्रकर और लोथर को बड़ा भारी धोखा हो गया था और उन्होंने उसे अनुमोदन पत्र देने की भूल कर डाली। कैप्टेन बनबरी ने भी यह स्वीकार किया है कि ट्रकर अगेई (?) के पक्ष में था। लेकिन सीमा पर नियुक्त अंग्रेज़ मैजिस्ट्रेट ने सुलतानपुर के नाज़िम के रूप में इस व्यक्ति के लिए लिखा है कि "इस व्यक्ति ने सदा ही मेरे साथ सहयोग करने की इच्छा प्रकट की है और तदनुकूल आचरण भी किया है। मैंने जब भी उससे कुछ करने को कहा नाज़िम सदैव उसके लिए तत्पर रहा और कभी भी अपराधियों को प्रोत्साहन देता हुआ नहीं दिखाई दिया।" इसी प्रकार के विरोधी सूत्रों के आधार पर रिपोर्ट तैयार की गयी। यही इस रिपोर्ट का सबसे विश्वस्त भाग माना जा सकता है। क्योंकि इसका शेष भाग 'अफवाहों' पर आधारित है। लोगों की डायरियाँ तथा समाचारों के लिखे गये पत्र कम से कम अफवाहों की अपेक्षा तो अधिक विश्वस्त हैं ही। ऐसे अविश्वस्त सूत्रों से सूचनाएँ एकत्र करने में जनरल आउटरम और कर्नल स्लीमैन में (पृष्ठ ३५) अद्भुत साम्य है।

यदि इन आँकड़ों को हम कुछ समय के लिए सही भी मान लें तो भी कंपनी के पक्ष में बात कुछ बनती नहीं। कंपनी की सीमाओं से अवध सरकार की सीमाओं का तुल-नात्मक अध्ययन करने पर अवध सरकार के पक्ष में पलड़ा भारी प्रतीत होता है। जनरल आउटरम ने अवध की तुलना पंजाब से की है। पंजाब को समय-समय पर उत्पी-

ड़ित करके बलपूर्वक दबाया जाता रहा है। लेकिन इस तुलनात्मक अध्ययन से जो उत्तर मिलता है, वह अवध के पक्ष को ही बल प्रदान करता है। अवध की जनसंख्या सन् १८४८ से सन् १८५४ के बीच ५० लाख बतायी गयी है। लेकिन यहाँ होने वाले औसत अपराधों की संख्या (पृष्ठ ३६) का जो अनुमान लगाया गया है, उसके अनुसार साधारण अपराधों की संख्या लगभग १६०० और डकैतियों आदि भीषण अपराधों की संख्या लगभग २०० रही है। दूसरी ओर बादशाह के द्वारा दिये गये उत्तर के अनुसार इलाहाबाद में, जो पूरे अवध का पाँचवा भाग है, सन् १८५५ में होने वाले अपराधों की कुल संख्या १,४५२ बतायी गयी है। उसी वर्ष बनारस में, जो पूरे राज्य का छठवाँ भाग है, अपराधों की संख्या चारगुनी से भी अधिक अर्थात् ८००४ बतायी गयी है। अब ज़रा बंगाल की ओर देखिए—क्योंकि यह प्रदेश कंपनी के अधिकृत प्रदेशों में सबसे पुराना है। लेकिन यहाँ की हालत अवध की अपेक्षा कहीं अधिक गयी-बीती है। यहाँ सन् १८५० में ९६,३५२ लोग अपराधों के सिलसिले में पकड़े गये जिनमें से ५५,२५२ लोगों को अपराधी पाया गया और दंडित किया गया। सन् १८५१ में अपराधियों की यह संख्या बढ़कर ९४,६२९ हो गयी थी। इसी प्रकार सन् १८५२ में यह संख्या ९२,११२ और सन् १८५६ में ९२,६२९ थी। इस प्रकार बंगाल में अपराधों की औसत संख्या ९०,००० से कम कभी भी नहीं रही है जब कि वहाँ की जनसंख्या अवध से केवल आठ गुनी ही अधिक है। अतः यदि इन आँकड़ों में सत्यता का थोड़ा-सा भी अंश हो और हम इन पर विश्वास करके चलें भी तो इनके विषय में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं रह जाती। ये तो अपनी कहानी स्वयं ही सुनाते हुए प्रतीत होते हैं—भले ही कहानी से कुछ दूसरा भाव प्रकट होता हो।

जनरल आउटरम के इस अभियोग का अंतिम शीर्षक है—अत्याचार एवं निर्दयता।

## ७. अत्याचार एवं निर्दयता

अभियोग–पत्र का यह भाग भी कई सच्ची झूठी कहानियों से भरपूर है। इनके द्वारा भी किसी निश्चय पर पहुँच पाना असंभव है। लाख सिर मारने पर भी इस निष्कर्ष पर पहुँच पाना असंभव है कि पहले की अपेक्षा वर्तमान बादशाह के अत्याचारों की संख्या में कमी हुई है या बढ़ोत्तरी। इस शीर्षक के अंतर्गत सात पृष्ठों में से तीन पृष्ठों को तो रघुवीरसिंह पर नृशंसताओं के दोषारोपण से रँगा गया है। लार्ड डलहौजी ने इस व्यक्ति के नाम की कई बार पुनरावृत्ति की है। रघुवीर सिंह के विषय में हम बादशाह के एक वक्तव्य (उत्तर पृष्ठ १४) का उद्धरण देना चाहेंगे। कंपनी के पास इसका क्या उत्तर है?

"सन् १८४७ में लखनऊ के रेजिडेंट कर्नल रिचमंड के पास किसी व्यक्ति ने बहराइच के तहसीलदार रघुवीर सिंह की शिकायत की थी। उस व्यक्ति के कथनानुसार रघुबीर सिंह ने उस स्थान में रहने वाले ५०० स्त्री पुरुषों को पकड़ कर बेंच दिया था। रेजिडेंट ने उस व्यक्ति के नाम का उल्लेख न करते हुए अवध की अदालत के सम्मुख इस मामले को पेश किया। समाचारपत्रों के लेखकों के पुराने रेकार्डों की खोज की गयी और हर प्रकार की खोजबीन की गयी, लेकिन इस प्रकार की कोई बात नहीं मिली। अदालत के अधिकारियों ने, यह सोचकर कि बेंचे गये लोगों के मित्र, संबंधी आदि स्वयं आयें या रेज़िडेंट के पास किसी को भेजें, उनके आने की कुछ दिनों तक प्रतीक्षा भी की। उन लोगों के आने पर ही भली-भाँति छानबीन कर सकना संभव था। लेकिन कोई भी नहीं आया। रघुवीर सिंह से पूछताछ करने पर उसने बताया कि कंपनी और अवध दोनों की सीमाओं में किसी भी व्यक्ति को खरीद सकने या बेचने की मनाही है। इतनी भारी संख्या में लोगों के बेचे या खरीदे जाने की बात छिप नहीं पाती। ऐसी बातें भी कहीं छिपती है? इतने स्त्री-पुरुषों और बच्चों को खरीद सकने की सामर्थ्य न तो अवध के ही किसी व्यक्ति में है और न कंपनी की सीमाओं में। अतः उसकी प्रार्थना थी कि इस मामले की कड़ी जाँच करायी जाय जिससे पता तो चले कि कब, कहाँ और किस व्यक्ति को बेचा गया। यह भी पता चले कि आखिर इतने धनी खरीददार लोग देश के किस भाग में हैं जो इतने लोगों को फौरन खरीद सकते हैं। इतने लोगों की कीमत तुरंत चुका देनेवाले लोगों तथा बेचे गये लोगों के रिश्तेदारों तथा उन रिश्तेदारों के पेशे का पता तो चले। बिना किसी प्रमाण के ही किसी को दंडित करना मुसलमानी दंडशास्त्र और देश के नियमों के विरुद्ध था। फिर भी, रेजिडेंट और कर्नल रिचमंड की इच्छा का विचार करते हुए रघुवीर सिंह को नौकरी से अलग कर दिया गया। रघुवीर सिंह को नौकरी से अलग करने के कारण मुझे कई लाख रुपयों की भारी हानि भी उठानी पड़ी क्योंकि उन पर मेरा काफी कर्ज भी बाकी था। लेकिन इसकी जरा भी चिंता न करके मैंने रघुवीर सिंह को बरखास्त कर दिया। यहाँ पर मैं इस तथ्य की ओर विशेष रूप से ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ कि अपने इस सेवक को दंडित करने के लिए दो ही रास्ते संभव थे। पहला तो यह कि यदि उसके विरुद्ध कुछ भी साबित हो जाता तो उसे दंड दिया जाता और दूसरा यह कि सबूत न मिलने पर भी विश्वस्त सूत्रों से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर संदिग्ध चरित्र वाले व्यक्ति के रूप में सदैव के लिए नौकरी से अलग कर दिया जाता। इस दूसरी दशा में बर्खास्त करने से बड़ी सज़ा मैं नहीं दे सकता था क्योंकि ऐसा करना उसके साथ बहुत भारी अन्याय होता। अतः यह समझ कर कि मुझसे इतनी ही आशा की जा सकती है मैंने रघुवीर सिंह को नौकरी से अलग कर

दिया। मैंने उसके प्रति किसी भी तरह की उदारता नहीं दिखायी। प्रमाणों के अभाव में किसी को फाँसी या इससे अच्छी सज़ा तो नहीं दी जा सकती। मेरा यह विश्वास है कि मैं दोषी ठहराया जाऊँगा। यह बात आश्चर्यजनक है कि कर्नल रिचमंड यदि रघवीर सिंह को इतना बुरा आदमी समझते थे तो किसी व्यक्ति की शिकायतों पर उसे गिरफ्तार क्यों नहीं किया गया। उसे किसी मेजिस्ट्रेट की चेतावनी मिलना तो दूर रहा, ईस्ट इंडिया कंपनी की सीमाओं में बड़े सुख एवं ऐश्वर्य पूर्ण जीवन व्यतीत करने का अवसर भी मिल गया। जब मैंने इससे नाराज़ होकर इस संबंध में उसे पत्र भेजे तो ब्रिटिश अधिकारियों ने उसके सम्मुख यही प्रकट किया कि उनमें करों की बकाया रक़म की माँग भर की गयी है और कुछ नहीं।"

विस्तार भय के कारण इस प्रकार की अन्य घटनाओं के विषय में हम नहीं लिखेंगे। उनकी व्याख्या बादशाह द्वारा दिये गये उत्तर वाले उस अध्याय में मिल जायगी जहाँ से हमने रघुवीर सिंह का दृष्टांत लिया है। इन सबके उत्तर में हमें केवल इतना ही कहना है कि यदि इन घटनाओं में सत्य का थोड़ा-सा भी अंश होता तो अवध को लोग छोड़-छोड़ कर भाग जाते। खेती का कहीं पता तक न चलता और उपजाऊ ज़मीनें रेगिस्तानों में परिवर्तित हो चुकी होतीं। लेकिन स्थिति इसके विपरीत है। अतः इस रिपोर्ट को सत्य कैसे मान लिया जाय—सोचने की बात है।

संक्षेप में जनरल आउटरम की इस पूरी रिपोर्ट का हम एक ही उत्तर दे सकते हैं कि अवध पर इतने वर्षों से वहीं के निवासी बादशाह शासन करते चले आये मगर यहाँ के निवासियों ने यहाँ की शासन-व्यवस्था भंग करके कंपनी के साथ सम्मिलित हो जाने की कभी भी इच्छा प्रकट नहीं की। बड़े-से-बड़े छिद्रान्वेषी भी इस सत्य की उपेक्षा न कर सके। इसे कई तरह से देखा और उल्टा-फेरा गया। इसकी गुरुता को समझकर इसके साथ काफी खींचातानी भी की गयी, परंतु अंत में निराशा ही हाथ लगी। इसकी उपमा बंदरों के उस समूह से दी जा सकती है जिन्हें कहीं से एक बड़ा-सा नारियल मिल गया हो और उसे छेद कर उपयोग करना चाहते हुए भी वे कर न पा रहे हों और बिना किये उनसे रहा भी न जाता हो। जनरल आउटरम कहते हैं कि "यह सोचना स्वाभाविक ही है कि यदि वास्तव में अवध के लोगों को इतना सताया जाता जैसा कि बताया जाता है तो वे पड़ोसी ब्रिटिश जिलों के साथ सम्मिलित हो जाते। इस विषय में सभी मजिस्ट्रेटों से जवाब तलब किये गये, परंतु अभी तक तो कोई ऐसा उत्तर नहीं मिला जिसमें ब्रिटिश जिलों के साथ मिल जाने की इच्छा प्रकट की गयी हो।" (अवध ब्ल्यू बुक, पृष्ठ ४४)। इस अनबूझ पहेली से जब लार्ड डलहौजी का सिर चकराने लगता है तो वे जनरल आउटरम की शरण लेते हैं जब कि जनरल आउटरम को मेजर ट्रूप ही सबसे अधिक विश्वस्त जान

पड़ते हैं। (बात कुछ इसी तरह की है कि सारा संसार हाथी के सहारे रुका हुआ है जब कि हाथी का आधार एक कछुआ है)। मेजर ट्रूप यह तर्क अवश्य देते हैं कि कंपनी के अधीन अवध के सिपाहियों के रिश्तेदारों की सुरक्षा का प्रबंध होने के कारण जनसंख्या का लगभग १/१० भाग का जीवन तो सुरक्षित ही है; अतः अवध के लोग यहाँ छोड़कर नहीं जा रहे हैं। लेकिन उनके पास इस प्रश्न का क्या उत्तर है कि शेष ९/१० भाग जनसंख्या किस सुविधा के लिए यहाँ ठहरी हुई है? जनसंख्या के इतने बड़े भाग को ही सारे पाशविक अत्याचारों को भुगतना पड़ता है और इसका हरजाना चुकाने की कोई सोचता तक नहीं। मेजर ट्रूप को तर्कों के अभाव में अपनी ऊलजलूल बातों से ही अपने स्वामियों को संतुष्ट करना पड़ता है। यदि उनसे पूछा जाय कि इतनी बड़ी जनसंख्या केवल कुछ लोगों को ही संतुष्ट देख कर भी यहाँ रहने के लिए क्यों अधीर रहती है? कम-से-कम उसे तो अवध छोड़ ही देना था? इन प्रश्नों के उत्तर में मेजर ट्रूप मौन धारण कर लेने के अतिरिक्त कुछ न कर पायेंगे। अवध के निवासियों द्वारा अवध न छोड़े जाने के दो ही कारण संभव हैं—एक तो यह कि उन्हें यहाँ रहने में कुछ लाभ हो और दूसरा यह कि यदि उन्हें लाभ या अन्य सुविधाएँ न मिलतीं हों फिर भी उन पर अत्याचार न होते हों। किसी स्थान के लिए यह भी बात कही गयी थी कि (पृष्ठ २२१) वहाँ के निवासियों के रहने के लिए मुख्य आकर्षण है उनके पूर्वजों के मकबरे जिन्हें छोड़ कर वे नहीं जाना चाहते। लेकिन बादशाह द्वारा दिये गये उत्तर (पृष्ठ ५७) के अनुसार अवध में ऐसी बातों का विशेष महत्त्व अब नहीं रहा। अवध के बाहर कंपनी के अधीन कुछ प्रांत अवश्य अवध में सम्मिलित होना चाहते हैं, लेकिन यह कहना सफेद झूठ है कि अवध के लोग कंपनी के अधीन होना चाहते हैं। अवध पर झूठे और निराधार दोषारोपण को लार्ड डलहौज़ी और आउटरम की कोरी बकवास के अतिरिक्त कहा क्या जाय? इसके द्वारा कागज़ और स्याही की बरबादी ही की गयी है और कुछ नहीं। अतः इस अध्याय को यहीं समाप्त कर देना उचित होगा।

## अध्याय १०

## सन् १८३७ की संधि

अभी तक तो हमने बताया ही नहीं कि इस प्रकार के झूठे अभियोग लगाये जाने विषयक लार्ड डलहौजी का आचरण पिछली सभी संधियों और विशेषतया सन् १८३७ वाली संधि का खुला उल्लंघन था। इस विषय पर हम स्वयं कुछ न कह कर डा० ट्रेवर्स ट्विस के मत का उल्लेख करना चाहते हैं।

सन् १८५७ में प्रकाशित 'पार्लियामेंटरी रिटर्न आफ ट्रीटीज़' में सन् १८३७ की संधि के विषय में निम्नलिखित उल्लेख मिलता है :—

"सरकार ने संधि के उस भाग को हटा लेना स्वीकार कर लिया है जिसके अनुसार अवध राज्य को तोपचियों की सेना का भार भी उठाना था। बादशाह को ८ जुलाई को सूचना मिली कि वह तोपवाले सैनिकों के व्यय के भार से मुक्त कर दिया गया और यह भार ब्रिटिश सरकार ने स्वयं अपने ऊपर ले लिया है।" इससे यह साफ पता चल जाता है कि संधि की अधिकांश शर्तों का पूर्णरूप से उल्लंघन किया गया। केवल कुछ बची-खुची शर्तों का ही उचित रूप से पालन किया गया। परिशिष्ट १ में दिये गये लार्ड आकलैंड और अवध के बादशाह के बीच इस अवसर पर हुए पत्र-व्यवहार से हमारे इस कथन की पुष्टि हो जाती है। इस पत्र-व्यवहार में प्रस्तुत संधि को ही मान्यता दी गयी थी। परंतु लार्ड हार्डिज के उस विरोध-पत्र से, जो उसने अवध के बादशाह के नाम लिखा था और उसमें अवध की वर्तमान दशा के सम्बन्ध में असंतोष प्रकट किया गया था, (यह विरोध-पत्र परिशिष्ट १ में विस्तार से दिया गया है) सन् १८३७ की संधि के उल्लंघन का ही सूचक है। इसी तरह १० दिसम्बर, १८५१ में कर्नल स्लीमैन ने भी अवध की वर्तमान दशा पर अपने विचार प्रकट किये हैं। इनमें अंग्रेज़ सरकार के कार्यों के औचित्य की बड़ी वकालत की गयी है। इसमें बताया गया है कि अंग्रेज सरकार पर सन् १८३७ की संधि के अनुसार अवध की शासन-व्यवस्था के संबंध जो भी उत्तरदायित्व थे, उसके अधिकारियों ने उन्हें निभाने की पूरी-पूरी कोशिश की है। सन् १८५३ में

ईस्ट इंडिया कंपनी की ओर से 'हाउस आफ लार्ड्स' का आदेश था कि कंपनी और पड़ोसी एशिया की अन्य शक्तियों के साथ जो-जो संधियाँ हुई हों उनकी प्रतियाँ भेजी जायें। इस आदेश-पत्र में सन् १८३७ की संधि का भी उल्लेख था। इस 'ब्ल्यू बुक' में एडवर्ड के हस्ताक्षरयुक्त एक प्रकार की भूमिका है। एडवर्ड उस समय इंडिया हाउस में अनुसचिव था। इसमें उसने स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि जिन संधियों और तत्संबंधी सूचनाओं का उल्लेख किया गया है, वे विदेश विभाग के लेखे-जोखे पर आधारित हैं। एडवर्ड ने विदेश विभाग के डिप्टी-रजिस्ट्रार मिकी का भी उल्लेख किया है क्योंकि तत्संबंधी सूचनाएँ एकत्र करने में उसने एडवर्ड की काफी सहायता की थी। एडवर्ड ने इस सहायता के लिए मिकी के प्रति आभार-प्रदर्शन किया है। एडवर्ड के शब्दों में मिकी "सरकार और पड़ोसी राज्यों के संबंध में अंतरंग जानकार होने के कारण" उसके बड़े भारी सहायक रहे। लॉर्ड डलहौज़ी को यह संधि फूटी आँखों भी नहीं भा रही थी क्योंकि उसके लूट मचाने के उद्देश्य की पूर्ति के मार्ग में यह बहुत बड़ी बाधा थी। अतः वह इस संधि की बिल्कुल बेकार होने की घोषणा कर इसे अमान्य ठहरा देता है। इस प्रकार उसका रास्ता अब बिल्कुल साफ हो जाता है।[1]

१. यह बात ध्यान देने योग्य है कि इन विचारों को प्रकट करते समय लॉर्ड डलहौज़ी ने एक बात अर्द्धसत्य के रूप में ही स्वीकार की है। अवध ब्ल्यू बुक (पृष्ठ ४९) में उसके सचिव के २१ नवम्बर, १८५५ को लिखे गये एक पत्र का उल्लेख मिलता है। इस पत्र में जॅनरल आउटरम को आदेश दिये गये हैं। इसमें जनरल आउटरम से कहा गया है कि लखनऊ पहुँच कर वह अवध की वर्तमान दशा के संबंध में जाँच करने के लिए उपस्थित हों। जाँच करके उसे यह पता लगाने को कहा गया है कि "कर्नल स्लीमैन ने जैसा वर्णन यहाँ का किया है तथा क्या अभी तक हालत वैसी ही बनी है? यह भी पता लगायें कि सात वर्ष पूर्व लॉर्ड हार्डिंज ने बादशाह के संमुख सन् १८०१ की संधि का उल्लेख करके यहाँ की दशा में सुधार करने की माँग की थी—उस पर थोड़ा-सा भी ध्यान दिया गया या नहीं? इस संधि के आधार पर ब्रिटिश सरकार पर भी कुछ कर्त्तव्यों के पालन का उत्तरदायित्व आता था। इसके संबंध में सन् १८३१ में लार्ड विलियम बेंटिक और सन् १८४७ में लार्ड हार्डिंज ने भी लिखा था। अतः यह जाँच भी करनी थी कि क्या वास्तव में उनका पालन हुआ है और क्या उनसे अवध में "दीर्घकाल" से चली आ रही बुराइयों के निराकरण में कोई सहायता मिली है? 'अवध ब्ल्यू बुक' के अनुच्छेद १४७ और १६६ में लॉर्ड डलहौज़ी के द्वारा प्रकट किये जाने वाले अस्पष्ट विचार भी उल्लेखनीय हैं।

इस प्रकार के असाधारण एवं उल्लेखनीय कृत्य का मुख्य आधार है—अपर्याप्तता। डा० ट्रेवर्स ने इस सत्य का रहस्योद्घाटन किया और संक्षेप में लॉर्ड डलहौजी ने निम्न-लिखित शब्दों में इसे प्रकट किया है :—

"६—सन् १८०१ की संधि को ही मुख्य आधार मानकर ब्रिटिश सरकार और अवध सरकार के बीच पारस्परिक संबंधों को मान्यता दी गयी है। लोगों की ऐसी धारणा बन गयी है कि सन् १८३७ में लॉर्ड ऑकलैंड ने इस संधि का संशोधित रूप प्रस्तुत किया था। किन्तु यह संधि निरर्थक एवं अव्यावहारिक-सी है। ब्रिटिश कंपनी के परामर्शदाता निर्देशकों ने इसे पाते ही अमान्य ठहरा दिया। १० अप्रैल, १८३८ को 'गवर्नर जनरल इन-कौंसिल' ने एक गुप्त सभा बुलायी थी और निश्चय किया था कि सन् १८३७ वाली संधि हटा दी जाय और पहले की तरह ब्रिटिश सरकार और अवध सरकार के बीच संबंध स्थापित किये जायें। इस सभा में यह भी निर्णय किया गया कि अवध के लोगों के लिए अच्छी से अच्छी सरकार बनाने में हम पूर्ण रूप से सहयोग देंगे। सन् १८०१ की संधि के अनुसार ही हम यह कह रहे हैं।

"सन् १८०१ की संधि से इसका साम्य कहाँ तक है—यह अलग से देखने की बात है।"

"हाउस आफ कामंस में भेजे जाने वाले आवेदन-पत्र में इस असाधारण सिद्धांत को बादशाह अवध के शाही परिवार द्वारा अस्वीकृत कर दिया जाना स्वाभाविक ही था। इसके अनुसार अवध के लोगों और बादशाहों को इसी संधि को मानने के लिए अकारण ही बाध्य कर दिया गया था। यह भी कहा गया था कि इस संधि को भंग करने का कोई भी प्रयास अंतर्राष्ट्रीय स्तर का अपराध माना जायगा। शाही परिवार के लोगों का कहना था कि जिस संधि का (सन् १८३७) अवध के शासक एवं ब्रिटिश कंपनी के अधिकारी लगभग १८ वर्षों से सहर्ष पालन करते चले आये हैं—और अभी तक वह पूर्ण रूप से मान्य समझी जाती रही है, उसे इस प्रकार हटा लेना समझ से बाहर की बात है। यह संधि तो पूर्णरूप से संशोधित थी। अचानक ही न जाने क्यों अवैध घोषित कर दी गयी। आगे चलकर बादशाह और शाही परिवार के लोगों ने लिखा है कि राष्ट्रों के लिए संधियों का बड़ा ही महत्त्वपूर्ण एवं शीर्षस्थ स्थान होता है। किसी भी देश की शांति एवं उन्नति के लिए इन संधियों का पालन करना अनिवार्य होता है। इसके बिना सरकार जनता का विश्वास नहीं प्राप्त कर पाती और अपना अस्तित्व खो बैठती है।"

इस विरोधी स्वर के विषय में हम पहले ही डा० ट्रैवर्स ट्विस के मत का उल्लेख कर चुके हैं। अतः इस अध्याय का हम इसी संमति द्वारा किसी निर्णय पर पहुँचने का प्रयास करेंगे।

## डा० ट्रेवर्स ट्विस का मत

अवध के बादशाह की ओर से प्राप्त होने वाले जिन कागजातों को मुझे ध्यान से देखने का मौका मिला है, वे निम्नलिखित हैं :—

१. कंपनी और अवध के शासकों के बीच सन् १७६५ से सन् १८७३ की संधियाँ, जो ईस्ट इंडिया कंपनी की संधियों के संग्रह में भी प्रकाशित की गयी हैं, २४ जून, १८५३ को 'हाउस ऑफ लॉर्ड्स' के सम्मुख पेश की गयी थीं।

२. भारत सरकार के पत्र-व्यवहार एवं मिनिट इत्यादि, 'जिनमें अवध के कागज भी शामिल हैं, सन् १८५६ में एक आदेश के अनुसार पार्लियामेंट में प्रस्तुत किये गये थे।

३. ऑकलैंड के अर्ल, भारत के गवर्नर जनरल की ओर से अवध के बादशाह के नाम ८ जुलाई, १८३९ को भेजी गयी सूचना। इसमें ११ वीं सितंबर, १८३७ की संधि का उल्लेख है और इस संबंध में बादशाह की ओर से दिया गया उत्तर भी है।

४. भारत के गवर्नर जनरल, लॉर्ड हार्डिंग की ओर से अवध के बादशाह को भेजा गया, दिनांक २३ नवम्बर, १८४७ का एक विरोध-पत्र।

५. ब्रिटिश सरकार के परामर्शदाताओं की ओर से १० दिसंबर, १८५६ को भारत के गवर्नर जनरल के नाम पत्र जिसमें अवध सरकार की उस स्वीकारोक्ति के संबंध में उल्लेख मिलता है जो हाउस ऑफ कामंस के ५ फरवरी, १८५७ के आदेशों के अनुसार थी।

सबसे पहले मेरा ध्यान सन् १७९८, सन् १८१० और सन् १८३७ की संधियों (अवध ब्ल्यू बुक में अनुच्छेद ७८, ७५, ९२) की ओर जाता है, क्योंकि इनमें लॉर्ड आकलैंड और लॉर्ड हार्डिज के पत्रों के द्वारा सन् १८०१ और सन् १८३७ की संधियों पर प्रकाश पड़ता है। यही संधियाँ अवध के बादशाह और ईस्ट इंडिया कंपनी के बीच समस्या उत्पन्न किये हुए हैं, अतः विशेष महत्त्व की हैं।

ऐसा लगता है कि सन् १७९८ के पूर्व की गयी संधियों में दोनों ओर से समान रूप से मैत्रीभाव था, किन्तु बाद की तीन संधियों अर्थात् सन् १७९८, सन् १८०१ और सन् १८३७ की संधियों में ऐसा भाव नहीं प्रदर्शित होता। इनके कारण ईस्ट इंडिया सरकार और अवध राज्य के बीच राजनीतिक संबंधों की एक श्रृंखला-सी बन गयी है। इसी श्रृंखला के द्वारा ही दोनों में संबंध स्थापित है। लेकिन दोनों की अपनी-अपनी राजनीतिक विशेषताएँ हैं जो एक दूसरे से पूर्णतया भिन्न हैं। सन् १७९८ की संधि दोनों ही पक्षों की ओर से आक्रामक भी है। और सुरक्षात्मक भी। अवध के अन्य राज्यों के संबंधों के विषय में इस संधि में सहयोग करने का आश्वासन भी दिया गया था। अतः यह मैत्रीपूर्ण भी थी।

सन् १८०१ की संधि में अवध को अपनी सीमाओं का समर्पण करने को कहा गया था और ईस्ट इंडिया कंपनी को सीमा का हस्तांतरण भी करना था। सन् १८३७ की संधि के अनुसार अवध के बादशाह को राज्य-संचालन का भार कंपनी को देना था और कंपनी को उसकी सुरक्षा का प्रबंध करना था। इन सभी संधियों में ईस्ट इंडिया कंपनी को सैनिक सहायता देने की आवश्यकता पर बल दिया गया था। यह सहायता वार्षिक वित्तीय सहायता के रूप में भी हो सकती थी और अपनी सीमा के कुछ भाग को स्थायी रूप से दान देकर भी। इस प्रकार सर जॉन शोर की सन् १७९८ की संधि के द्वारा ईस्ट इंडिया कंपनी को ७६ लाख रुपयों का वार्षिक अनुदान मिला था। संधि की बारहवीं और तेरहवीं शर्तों के अनुसार बादशाह को जनहित के अपने कार्यों के व्यय में कमी करने के लिए स्वयं ही परामर्श दिया। इसके अतिरिक्त उसने यह भी वचन दिया कि किसी विदेशी शक्ति के साथ संबंध स्थापित करते समय प्रत्येक बात की सूचना कंपनी को भी दी जायगी।

लॉर्ड वेलेज़ली की सन् १८०१ की संधि के अनुसार अवध के बादशाह ने ईस्ट इंडिया कंपनी को अपने क्षेत्र के कुछ भाग वित्तीय सहायता के रूप में दे डाले थे। इसके बदले में उसे कंपनी की ओर से (तीसरी शर्त के अनुसार) यह आश्वासन दिया गया कि सभी प्रकार के शत्रुओं से अवध के शेष भागों की रक्षा की जायेगी। इसके अतिरिक्त छठीं शर्त के अनुसार वज़ीर को यह आश्वासन भी दिया गया कि शेष क्षेत्र पर उसके उत्तराधिकारियों का अधिकार रहेगा। वज़ीर ने यह वचन दिया था कि वह अपने निजी अधिकारियों के सहयोग से शासन की ऐसी व्यवस्था करने का प्रयास करेगा कि जिससे लोगों के पास धन और समृद्धि की वृद्धि हो और सामान्य जनों के धन एवं प्राण सुरक्षित रह सकें। इस संबंध में उसने कंपनी के अधिकारियों से परामर्श लेकर ही कोई कदम उठाने का भी वचन दिया था।

लॉर्ड आक्लैंड की सन् १८३७ की संधि में सन् १८०१ की संधि पर यह आरोप लगाया गया है कि इसमें यह वचन तो दिया गया है कि अवध के शासक अपने अधिकारियों के द्वारा एक ऐसी शासन व्यवस्था स्थापित करेंगे जिससे उनके अधीनस्थ लोगों के धन एवं समृद्धि में वृद्धि हो सके और वहाँ के निवासियों के धन एवं प्राण सुरक्षित रह सकें, लेकिन इसमें यह कहीं नहीं कहा गया कि इस कर्तव्य की अवहेलना करने पर कौन-सा निदान किया जाना चाहिए। इसका उल्लेख होना बहुत जरूरी है क्योंकि अवध के शासक इस संबंध में बड़े बदनाम रहे हैं। अतः सन् १८०१ की नवीं शर्त में संशोधन किया जाना उचित ही होगा।" इसकी सत्रहवीं शर्त में सन् १८०१ के संधि की छठीं शर्त का संशोधित रूप प्रस्तुत किया गया है। इसके अनुसार अवध के बादशाह रेजिडेंट के सहयोग से अपने राज्य की पुलिस, अदालतों एवं कर-व्यवस्था में व्याप्त दोषों को दूर करने में कोई

कसर बाकी नहीं रखेंगे। यदि बादशाह ब्रिटिश सरकार के प्रति उपेक्षा का भाव प्रदर्शित करेगा और अवध में अत्याचारों, लूट-मार एवं शासन में कुप्रबंध की शिकायतों में कमी न होगी तथा नागरिक सुरक्षा में किसी प्रकार का व्याघात पड़ने की आशंका होगी—तो ब्रिटिश सरकार को उसके स्थान पर अपने अधिकारियों को नियुक्त कर सकने का पूरा अधिकार होगा। वह भाग, जिसमें इस तरह की शिकायतें सुनने में आयेंगी —चाहे छोटी हो या बड़ी—आवश्यक समय तक उन अधिकारियों के नियंत्रण में रहेगा। इन आरोपों के असत्य सिद्ध होने पर वहाँ की आय-व्यय की सभी रसीदें बादशाह को सौंप दी जायेंगी। इसका हिसाब बिल्कुल सही रखा जायगा।"

आठवीं शर्त के अनुसार भारत के गवर्नर जनरल को सातवीं शर्त में दिये गये अधिकार में काट-छाँट करने की छूट दी गयी थी। यह कहा गया कि वे जहाँ तक संभव होगा, निर्धारित सीमा-क्षेत्रों में शासन-व्यवस्था का एक निश्चित स्तर बनाये रखने का पूरा प्रयास करेगा। जिससे समयानुसार अनुकूल परिस्थितियाँ आने पर आवश्यक सुख-सुविधाएँ प्राप्त हो सकें।"

यह संधि लखनऊ के ब्रिटिश रेजिडेंट लेफ्टिनेंट कर्नल लो ने भारत के गवर्नर जनरल की ओर से तैयार की थी। इस पर लॉर्ड आक्लैंड के अतिरिक्त कौंसिल के तीन अन्य सदस्यों के हस्ताक्षर हैं। इसकी भारत के गवर्नर जनरल ने भी पुष्टि की है। गवर्नर जनरल के अवध के बादशाह के नाम लिखे गये सन् १८३९ और सन् १८४७ के दो पत्रों से पता चल जाता है कि इसके पूर्व सन् १८३७ की संधि ही मान्य थी। पहला पत्र तो उस अवसर पर लिखा गया था जब अवध के बादशाह को ८ जुलाई, १८३९ को सूचित किया गया था कि नयी संधि की चौथी शर्त के अनुसार अतिरिक्त सैनिक शक्ति पर होने वाले व्यय-भार से उसे मुक्त कर दिया गया।

दूसरा पत्र उस अवसर पर लिखा गया जब लॉर्ड हार्डिंज ने अवध से गुजरते समय बादशाह के साथ हुई व्यक्तिगत भेंट के पश्चात् २३ नवम्बर, १८४७ को एक पत्र भेजा था।

इस पत्र में लॉर्ड हार्डिंज ने बादशाह का ध्यान सन् १८०१ और सन् १८३७ की संधियों की ओर आकर्षित कराया है। इस पत्र में छठीं शर्त के अनुसार वहाँ के निवासियों के अधिकारों की रक्षा करने का उल्लेख था। इसके अतिरिक्त सन् १८३७ की संधि की सातवीं शर्त के अनुसार आवश्यकता होने पर ब्रिटिश सरकार का अवध को अपने अधिकार में ले सकने का भी उल्लेख था। पत्र में आगे चल कर यह भी लिखा था कि बाद की संधि सन् १८०१ की संधि की ही पुष्टि करती है और साथ ही ब्रिटिश सरकार को यह अधिकार भी देती है कि जनता की सुरक्षा के लिए वह हस्तक्षेप कर सके।"

सन् १८३७ की संधि के विषय में कर्नल स्लीमैन के विचार भी कुछ इसी प्रकार के हैं। कर्नल उस समय लखनऊ के रेजिडेंट था। उसने गवर्नर जनरल के नाम लिखे गये दिनांक १० दिसम्बर, १८५१ के एक पत्र में इसका उल्लेख किया है। इस पत्र का उल्लेख लॉर्ड डलहौजी के एक मिनिट में मिलता है (अवध पेपर्स, पृष्ठ १६६)। इसमें कर्नल स्लीमैन ने लिखा है कि उसके मत के अनुसार उसकी सरकार सन् १८३७ की संधि की उस शर्त को व्यवहार में लाने से अपने को रोक सकने में बिल्कुल असमर्थ है जिसमें उसे अवध की शासन-व्यवस्था अपने अधिकार में ले लेने की स्वतंत्रता मिली हुई थी।

मुझे यह कहने में थोड़ा भी संकोच नहीं है कि सन् १८३७ की संधि ही एकमात्र मान्य संधि कही जा सकती है। दोनों ही पक्षों को इसी संधि रूपी सूत्र ने परस्पर बाँध रखा है। इस संधि के अनुसार भारत के गवर्नर जनरल को विशेष परिस्थितियों में अवध को हस्तगत कर लेने का अधिकार तो अवश्य दिया गया था, परंतु इसका यह मतलब नहीं था कि उस पर गवर्नर जनरल हमेशा के लिए जम जाये। उसे तो केवल बादशाह या उसके उत्तराधिकारियों के प्रबंधक के रूप में कार्य करना था। लेकिन गवर्नर जनरल को भला उचित-अनुचित की परवाह क्यों होने लगी।

लॉर्ड डलहौज़ी के १८ जून, १८५५ के एक 'मिनिट' से (अवध पेपर्स, पृष्ठ १४९) ऐसा प्रतीत होता है कि भारत के गवर्नर जनरल सन् १८३७ की संधि का पालन करने के लिए ब्रिटिश सरकार को बाध्य नहीं मानते। निम्नलिखित उद्धरण से यह बात स्पष्ट है:—

"अब ब्रिटिश सरकार और अवध के बीच मैत्रीपूर्ण संबंध बनाये रखने के लिए सन् १८०१ की संधि को ही मुख्य माना जायगा। लोगों की यह एक सामान्य धारणा-सी बन गयी है कि सन् १८३७ में लॉर्ड आक्लैंड की संधि में इन संबंधों में और अधिक दृढ़ता एवं सुधार लाने का प्रयास किया गया था। लेकिन वास्तव में यह संधि निरर्थक-सी है। १० अप्रैल, १८३८ की कौंसिल में हुई एक गुप्त बैठक में सदस्यों ने गवर्नर जनरल को यह परामर्श दिया था कि १८ सितम्बर, १८३७ की संधि को अवैध घोषित कर दिया जाय और इस प्रकार अवध सरकार के साथ हमारे संबंध पहले-जैसे ही गहरे और मैत्रीपूर्ण हो जायें।" इस समिति ने बादशाह से यह भी कहा था कि सन् १८०१ की संधि की शर्तों के अनुसार ब्रिटिश सरकार लोगों के हित में अच्छी से अच्छी सरकार बनाने में, उसे हर प्रकार से सहायता देगी।

प्रत्येक देश में ऐसा माना जाता है कि सरकार का प्रतिनिधित्व करने वाले मंत्रियों के किसी कार्य का समर्थन करने के लिए किसी एक पक्ष के सुयोग्य अधिकारी तैयार न हों, और इस इनकार की सूचना दूसरे पक्ष को भी मिल चुकी हो तो संधि तैयार करने वाले मंत्री के कार्य का कोई भी महत्त्व नहीं रहता। इसी प्रकार दो राज्यों के बीच किसी

प्रकार की संधि को उसी दिशा में उचित माना जाय जब उसे उस राज्य की कार्य प्रबंधक सरकार ने राज्यों के म्युनिसिपल कानून के द्वारा निर्देशित विधि से तैयार किया हो।

दूसरी ओर यदि राज्यों के शासक राजकीय कामों में हस्तक्षेप न करते हों, सारा प्रबंध वहाँ की प्रबंधक सरकार के हाथों में हों, तो उसके द्वारा किये गये कार्यों से भी संधि को ही प्रामाणिक माना जायगा। (ग्रोटियस, बी, २, सी० १५, एस० १७)।

सन् १८३७ की संधि तैयार करने में दोनों ही पक्षों का समान रूप से सहयोग रहा था। इसका कुछ भाग तो लखनऊ में ब्रिटिश रेजिडेंट ने भारत के गवर्नर जनरल, लॉर्ड आक्लैण्ड की ओर से तैयार किया था और शेष भाग अवध के बादशाह ने अपने और अपने उत्तराधिकारियों के लिए तैयार किया था। बाद में भारत के गवर्नर जनरल की ओर से इसकी पुष्टि की गयी थी। इस प्रकार देश के कानून को इससे कोई भी आघात नहीं पहुँचाया गया था। इसे दोनों ही पक्षों ने स्वीकार कर लिया था और पिछली अन्य संधियों के समान ही इस संधि की पुष्टि भी पूर्व रूप में ही हो गयी।

यहाँ पर यह जान लेना आवश्यक है कि यह पुष्टीकरण म्युनिसिपल कानून के विपरीत है या नहीं। यह कानून १३ जार्ज ३, सी० ६३ और ३३ जार्ज ३, सी० ५२ में देखा जा सकता है। पहले कानून के अनुसार गवर्नर जनरल को युद्ध घोषित करने तथा शांति एवं मैत्रीपूर्ण संधियाँ तैयार करने का पूरा अधिकार दिया गया है। दूसरे के अनुसार गवर्नर जनरल के अधिकारों पर कुछ नियंत्रण लगाया गया है। इसके अनुसार गवर्नर जनरल को, जब तक असाधारण रूप से आवश्यक न हो, युद्ध तथा शांति की घोषणा करने का अधिकार नहीं दिया गया है। इसके अतिरिक्त गवर्नर जनरल को भारत की किन्हीं भी राज्य-सीमाओं में युद्ध के अभिप्राय से घुसने का तब तक अधिकार नहीं है जब तक उसे ऐसा करने विषयक अपनी सरकार का आदेश प्राप्त न हो जाय। ये आदेश भारत के कमिश्नरों की ओर से नियुक्त किये गये निर्देशकों अथवा गुप्त समिति की ओर से दिये जायेंगे।

लेकिन उपर्युक्त कानून (३३ जार्ज ३, सी० ५२) के अंतर्गत गवर्नर जनरल को जो अधिकार दिये गये थे, सन् १८३७ की संधि उसके अंतर्गत किसी भी श्रणी में नहीं आती। जब तक यह संभावना न हो कि गवर्नर जनरल को १३ जार्ज ३ सी० ६३ का पालन करने में कुछ कानूनी रुकावटें न रही हों और जिनके विषय में मुझे कुछ मालूम न रहा हो, तब की बात दूसरी है। लेकिन वैसे जहाँ तक मेरा विचार है म्युनिसिपल कानून के अंतर्गत गवर्नर जनरल को सन् १८३७ की संधि को ही अनुमोदित करने का पूरा अधिकार था। यदि गवर्नर जनरल ने इसे अनुमोदित कर दिया होता तो शायद यह ऐसे ही चलती रहती। सन् १८३९ में लॉर्ड आकलैंड ने और सन् १८४७ में लॉर्ड हार्डिज के कार्यों ने सन् १८५५ में इस संधि को निकाल कर बाहर कर दिया।

अवध को सन् १८३७ की संधि के रद हो जाने की कोई भी सूचना नहीं थी। लखनऊ में रेजिडेंट के सहकारी फ्लेचर हेयस की रिपोर्ट (अवध पेपर्स, पृष्ठ ५३) से भी यही पता चलता है कि अवध सरकार के कानों में इसकी भनक भी न पड़ने पायी कि सन् १८३७ की संधि रद्द कर दी गयी। इसे लॉर्ड डलहौज़ी ने भी १५ जनवरी, १८५६ के एक मिनिट (अवध पेपर्स २३९) में स्वीकार किया है। वह लिखता है—"एस १६. बहुत संभव है कि रेजिडेंट और बादशाह के बीच जो विचारविमर्श होने जा रहा हो, उसमें बादशाह अपने पूर्वजों द्वारा की गयी सन् १८३७ की संधि का भी उल्लेख करे। रेजिडेंट को यह मालूम है कि सन् १८३७ की संधि इंगलैंड में उसी समय रद्द घोषित कर दी गयी थी जब वहाँ के निर्देशकों को वह मिली थी। रेजिडेंट को यह भी पता है कि बादशाह को केवल इतना ही सूचित किया गया था कि बढ़ायी गयी सैनिक शक्ति के संबंध में सन् १८३७ की कुछ शर्तों को रद्द घोषित कर दिया गया है। लेकिन उसे यह कभी नहीं सूचित किया गया कि यह संधि अब पूरी की पूरी रद्द घोषित कर दी गयी है।"

इस प्रकार के संबंधों के विषय में आजकल तो हम सोच भी नहीं सकते, क्योंकि इसकी कल्पनामात्र से बड़ी अजीब-सी उलझन मालूम देने लगती है। इससे भी बड़ी परेशानी की बात तो यह है कि सन् १८४५ में प्रकाशित संधियों की पुस्तक में अभी तक इस रद्द संधि की चर्चा की गयी है। इस परेशानी से बच निकलने का कोई रास्ता भी तो नहीं। अतः पलायनवादी प्रवृत्ति छोड़ कर इससे निपट लेना ही अधिक अच्छा रहेगा :—

"एस १७—बादशाह के इस प्रश्न का हमारे पास क्या उत्तर है कि सन् १८३७ की संधि में ब्रिटिश सरकार को जो बड़े-बड़े अधिकार मिले थे, उन्हें व्यवहार में क्यों न लाया गया? जब यह संधि रद्द की गयी थी तो नियमानुसार इसकी सूचना अवध के बादशाह के पास अवश्य भेजनी थी। अब बादशाह से इतना ही कहा जायगा कि उसे यह सूचना तभी दे दी गयी थी जब उसे सन् १८३७ की संधि की उस शर्त से छूट मिलने की सूचना मिली थी जिसके अनुसार अतिरिक्त सैनिकशक्ति के व्यय से उन्हें मुक्त कर दिया गया था। यह भी कह दिया जायगा कि बाकी शर्तों का उस समय उल्लेख करने की आवश्यकता इसलिए नहीं समझी गयी कि उनके संबंध में तुरंत कुछ भी करना न था। फिर रेजिडेंट दुःख प्रकट करते हुए ऐसी भूल दोबारा न दोहरायी जाने का आश्वासन दे देंगे और बात यों ही आयी-गयी हो जायगी।"

इस प्रकार गवर्नर जनरल द्वारा सन् १८३७ की संधि को अमान्य घोषित कर देना कहाँ का न्याय है? क्या इंगलैंड में भी इसी प्रकार से न्याय किया जाता है? इस प्रकार तो सन् १८३७ की संधि की नवीं शर्त का कोई अर्थ नहीं रह जाता जिसमें आश्वासन दिया

गया था कि अवध सरकार और ब्रिटिश सरकार के बीच हुई पिछली सभी संधियों की वे सभी शर्तें पूर्ववत् ही मानी जाती रहेंगी जो वर्तमान संधि से अप्रभावित रह गयी हैं। यहाँ तो बात ही एकदम बदल गयी। इसके कानूनी एवं नैतिक औचित्य का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता। अतः इस संबंध में सोचना व्यर्थ है।

इस प्रकार अच्छी तरह सोच-विचारकर मैं तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि भारत के गवर्नर-जनरल को सन् १८३७ की संधि भंग करने का कोई अधिकार नहीं था। उसने देशीय कानून के साथ खिलवाड़ करने की अनाधिकार चेष्टा की है। (अवध पेपर्स, पृष्ठ १४९)।

—**टेवर्स ट्विस**

डाक्टर्स कॉमन्स, फर० २४, १८५७।

# उपसंहार

अब हम ब्रिटिश शासकों की लूट के अध्याय के अंत तक आ पहुँचे हैं। हमने जो कुछ भी कहा उसके प्रमाण किसी से छिपे नहीं हैं। हर कोई इन्हें देख सकता है। फिर भी, यदि किसी को हमारे कार्य से संतोष न हुआ हो तो वह स्वयं ही जाँच करके देखे कि ब्रिटिश सरकार का अवध सरकार के प्रति अपनाया गया दृष्टिकोण कहाँ तक न्यायोचित था। बड़ा अच्छा हो, यदि कोई और भी अधिक जाँच करे और पता लगाये कि अवध को इस लूट के कारण कितनी भारी हानि उठानी पड़ी। यह जाँच करना इसलिए भी आवश्यक है कि इससे ज्ञात हो जायेगा कि अवध का जीर्णोद्वार करने के लिए इस समय कितने धन की आवश्यकता होगी ? ऐसा करके कम-से-कम जनता के प्रति अपने नैतिक कर्त्तव्य का तो पालन कर सकेंगे। इससे इस कांड में भाग लेने वाले ब्रिटिश अधिकारियों के चरित्र का भी भंडाफोड़ हो जायेगा। वैसे मैंने इस संबंध में जो सूचनाएँ एकत्र की हैं, वे विश्वस्त सूत्रों से प्राप्त हुई हैं और उनसे अधिक प्रामाणिक सूचनाएँ एकत्र करना किसी के लिए भी संभव नहीं। इसके अतिरिक्त जाँच के द्वारा कई दूसरे प्रश्नों के उत्तर भी मिल जायेंगे। इस लूट ने हमारी व्यापारी स्थिति को कितना लाभ पहुँचाया ? हमारा भारतीय राज्य एकीकृत (Consolidated) किन अर्थों में कहा जाता है ? क्या ऐसे कार्यों से इन प्रदेशों के निवासियों से हमारे संबंधों में मैत्री भावना की वृद्धि होती है ? क्या अपने इन कृत्यों के द्वारा चिन्तनशील लोगों की दृष्टि में हम न्यायप्रिय बने रह सकते हैं ? ऐसे कृत्यों के लिए हम सभ्य जगत के लोगों को क्या उत्तर दे सकेंगे ? क्या उनके सम्मुख हमारी आँखें शर्म से झुकी नहीं रहेंगी ? क्या इस लुटेरी सरकार को अपने कुकृत्यों के लिए किसी भी प्रकार का भय नहीं प्रतीत होता ? क्या हम इस समय कह सकते हैं कि हमारे भारती राज्य की संक्रांति-बेला की अग्नि-परीक्षा पर इसका प्रभाव नहीं पड़ेगा।[1]

**१. इस विषय पर विशेष रूप से ७ जुलाई, १८५७ के 'टाइम्स' में प्रकशित लॉर्ड एल्बमार्ले द्वारा हाउस ऑफ लॉर्ड्स में दिया गया वक्तव्य पठनीय है। इसके अतिरिक्त २० जुलाई, १८५७ को 'हाउस ऑफ कामंस' में डिसरेइली का प्रसिद्ध वक्तव्य भी पठनीय है।**

इन प्रश्नों के उत्तर कहीं भी और किसी के द्वारा भी पूछे जा सकते हैं। हम इसकी जाँच के कार्य को आगे नहीं बढ़ा रहे हैं। क्या हमने थोड़ी देर के लिए भी कोई ऐसी बात सोचने का कभी कष्ट किया जिससे कि अवध के लोगों का कुछ भला हो सके? क्या उन लोगों पर रोज नये-नये कमरतोड़ करों का बोझा लाद देना, उनकी सरकार के सभी साधन छीन कर पूर्णतया अपंग बना देना और करों से प्राप्त धन को इधर-उधर खर्च कर देना इत्यादि हम उनकी भलाई के लिए ही कर रहे थे ? हमने उनके वज़ीरों को "करदाता" एवं बादशाह को "उदारता की खान" की संज्ञा देकर उनके बड़े-बड़े प्रांतों को हड़प लिया। बदले में या तो उन्हें उन्हीं दामों पर या फिर अधिक मूल्य लेकर कोई बहुत छोटी-सी जगह बेच दी गयी। खरीदे हुए स्थानों का मूल्य चुकाने की तो हमने स्वप्न में भी नहीं सोची। क्या यह सब अवधवासियों के कल्याण के लिए ही किया जा रहा था ? उनकी सरकार के उन्नति में सहायता देना तो दूर की बात, उल्टे उन्हें कमजोर और छिन्न-भिन्न करने का ही प्रयास हमने किया। जब भी कभी उन्होंने स्वतंत्र रूप से अपनी सरकार की उन्नति के लिए कोई प्रयास किये तो हमने उन पर प्रतिबंध लगा दिये। क्या यह भी अवध के लाभ को ही ध्यान में रख कर किया गया था ? क्या हमारा यह व्यवहार कृतघ्नता की चरम सीमा का सूचक नहीं कहा जायगा ? इन्हीं सबका परिणाम हमें आज देखने को मिल रहा है। संधियों को निरंतर भंग किया जा रहा है। अवध के लोग स्वतंत्रता से दूर होते जा रहे हैं। मताधिकार की माँग भी काफी जोर पकड़ती जा रही है। क्या इसी लिए मंत्रियों को अपना अधीनस्थ, और बादशाहों को 'उदारता की खान' बनाया जा रहा है ? उनके सूबे के सूबे छीन लिये गये और उन्हें बदले में कुछ न दिया गया। क्या अवध की जनता के लाभ के लिए वहाँ की सरकार नियमित रूप से छिन्न-भिन्न की गयी, और उनके पुनर्गठन करने के प्रयत्नों में बाधा डाली गयी ? क्या स्लीमैन का उपयोग अवध में बदमाशी करने के लिए उसी प्रकार नहीं किया गया जैसे मैंशिकाफ़ का तुर्की में किया गया था, और जिसके कारण यूरोप में हलचल मच गयी थी ?

और अब जब सरकार अपने लक्ष्य पर संधिभंग, अकृतज्ञता तथा विश्वासघात का आश्रय लेकर पहुँच गयी है—अब जब अवध के लोग "स्वतंत्र" हो गये हैं तब देखना चाहिए कि हमारे प्रति कितना कृतज्ञ हैं और राज्य के ये परिवर्तन उनके लिए कहाँ तक वरदान सिद्ध हुए हैं। लेकिन यदि हम सूचनाओं पर विश्वास करें जो हमें हाल में ही मिली हैं तो हमें ज्ञात हो जायेगा—कि लोग अब पहले से भी बदतर हाल में हैं। बादशाह के द्वारा (पृष्ठ ५७ पर) दिये गये उत्तर से उसके राज्यों के छीने जाने, नयी-नयी शर्तें लगाये जाने, अपराधों की संख्या में होने वाली वृद्धि और अवध से उसके निकाले जाने के विषय में बहुत कुछ पता चलता है। अगर हम निष्पक्ष भाव से इन तथ्यों को स्वीकार करने के

लिए तैयार हों तो यह बात स्पष्ट रूप से प्रकट हो जायेगी कि हमारे शासन में न तो जनता संतुष्ट है और न फलती-फूलती ही दिखाई पड़ती हैं।[१] २० जून को एक विख्यात समाचार-पत्र में हमारी लूट के परिणामों के विषय में उल्लेखनीय वक्तव्य छपा था। भारत के विभिन्न विषयों के संबंध में इस समाचार-पत्र को काफी जानकारी रहती है। वक्तव्य निम्नलिखित है :—

"यदि भारतीय पत्रों की बातों पर हम विश्वास करें तो हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि अवध का अपहरण करने के समय से हमारे अधिकारियों में बड़ा कुप्रबंध चला आ रहा है। इस अपहरण कांड में केवल लूट-पाट या उपद्रव ही हुए होते तब तो कोई

१. बादशाह के 'हाउस ऑफ कामंस' को लिखे गये एक पत्र में यह अभियोग लगाया गया है कि "जबसे अवध के राज्य का अपहरण सैनिक शक्ति के द्वारा कर लिया गया है, देश भर में अशांति और उपद्रवें की संख्या बढ़ती जा रही है। जिस समय अवध पर केवल बादशाहों का राज्य था, चारों ओर हँसी-खुशी व्याप्त थी। अवध छोड़ कर जाने की कौन कहे, ग्रेट ब्रिटेन के असंख्य लोग भी यहीं पर बस जाने के इच्छुक थे और धीरे-धीरे बसते भी जा रहे थे। लेकिन जब से ब्रिटिश सरकार की यह लूट-पाट शुरू हुई है, न जाने कितने लोग यहाँ से जान बचा कर भागने लगे हैं। विदेशियों को भी यहीं बस जाने का विचार छोड़ देने के लिए विवश होना पड़ा। उनका यहाँ आना एकदम बंद हो गया है। गणना करने पर पता चला लगभग एक लाख व्यक्तियों ने कंपनी की दासता स्वीकार करने से इनकार कर दिया। इन व्यक्तियों में से कई उच्च सरकारी पदों पर आसीन व्यक्ति एवं कई बर्खास्त सैनिक भी सम्मिलित हैं। इस प्रकार इन लोगों ने अपनी जीविका के साधन स्वयं ही ठुकरा देना पसंद किया। देश भर के सारे उद्योग-धंधे धीरे-धीरे ब्रिटिश अधिकारियों एवं सैनिकों के हाथों पहुँच गये थे। जमींदारों के संरक्षकों को उनके पदों से हटा दिया गया। यहाँ के लिपिकों एवं नौकरी पेशे वाले बाबुओं को हटाकर उनकी जगह पर ब्रिटिश कंपनी के सेवक नियुक्त कर दिये गये। सभी प्रकार के भत्ते एवं पेंशन देने बंद कर दिये गये। साधारण लोगों के अतिरिक्त शाही परिवार से संबंधित कई लोगों तक को भी दाने-दाने का मोहताज कर दिया गया। निम्न वर्ग के लोगों के प्रति हमारी सरकार का व्यवहार इतना कठोर था कि उसकी कोई सीमा नहीं। लखनऊ में न्याय मिलने की धूमिल सी आशा भी नहीं की जा सकती। इतने बड़े अपराध की उपेक्षा किस प्रकार की जा सकती है जिसमें एक शाही सत्ता ही लूट ली गयी हो। कितना धन, हीरे, जवाहरात लूटे गये इसका हिसाब लगाना सरल नहीं"

विशेष बात न होती। यहाँ तो धन-सम्पत्ति की आधार-शिला ही इस बुरी तरह से ध्वस्त कर दी गयी है कि सभ्यजगत में अब तक ऐसी कल्पना भी न की गयी होगी। यदि 'रेड रिपब्लिकन' लोगों ने यहाँ स्वयं अधिकार कर लिया होता तो वे भी कम-से-कम स्वामित्व संबंधी, विशेषतया भू-स्वामित्व संबंधी अधिकारों का इतनी निर्दयता से हनन न करते। हर तरफ से शिकायतें सुनने में आ रही हैं—कहीं लोगों की ज़मीनें छीन ली गयी हैं—तो कहीं पंचों के निर्णय पर उन भू-स्वामियों को निकाल बाहर कर दिया गया जिन्हें अभी तक मुफ्त रहने की सुविधा मिली हुई थी। सभी ज़िलों के कानूनों के साथ खिलवाड़ हो रहा है। दूसरे शब्दों में कंपनी अवध को लूटते समय, केवल करों की लूट तक ही सीमित नहीं रही, बल्कि यहाँ की सारी धन-संपदा ही बटोर ले गयी। वास्तव में यह एक अछूता महाद्वीप था जिसके अन्वेषकों ने यहाँ मनमाना किया क्योंकि ऐसा करना वे अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते थे। यदि हमारे अधिकारियों में अवध के प्रति इसी प्रकार की दुर्भावनाएँ होने की बात सत्य है तो यह अनुमान लगाने में ज़रा भी कठिनता न होनी चाहिए कि सिपाहियों की आस्था अपने अधिकारियों की अपेक्षा बादशाह में अधिक होने का क्या कारण था। अतः उन सिपाहियों पर दोषारोपण करना स्वयं अपने को दोषी घोषित करने में समान होगा। इस विषय को लेकर जो कुछ कहा गया है उसमें कितनी अतिशयोक्ति है, यह बता सकना हमारे लिए कठिन है। इस संबंध में सरकारी सूचनाएँ उपलब्ध नहीं हैं। लेकिन एक बात उनके पुष्टीकरण के लिए अवश्य कही जा सकती है कि इतने वर्षों में तीन बार शासन व्यवस्था परिवर्तित की गयी। ऐसा प्रतीत होता है ब्रिटिश कार्य-कर्ताओं में परस्पर भी उतना ही मतभेद था जितना उनके एवं भू-स्वामियों तथा अवध के दूसरे लोगों के बीच था। जनता पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए अनुभवी व्यक्ति इस मतभेद को अच्छा नहीं समझते। शायद ये कार्यकर्त्ता इस सत्य से अभी अनभिज्ञ हों कि एकता ही सबसे बड़ी शक्ति है और एकता के अभाव में बड़ी-से-बड़ी शक्ति भी पराजित हो सकती है।"

यह पत्र आगे चल कर हमारी सरकार पर दोषारोपण करते हुए लिखता है कि इंग्लैंड की तरह भारत में भी षड्यंत्रकारियों एवं कलहप्रिय नेताओं का ज़ोर केवल इसलिए बढ़ गया है कि सरकार के दुर्व्यवहार के कारण समाज में असंतोष फैल गया है। ऐसे ही वातावरण में तो इन्हें पनपने का अवसर प्राप्त होता है। यदि ये तत्त्व इसी प्रकार ज़ोर पकड़ते गये तो कुछ समय बाद देश की जो दशा होगी, उसे समय ही बतला सकेगा। अभी समय है कि न्याय को अपना कर स्थिति को और अधिक बिगड़ने से बचा लिया जाय। अवध के बादशाह और शाही परिवार से जो न्याय की माँग की गयी थी, आजकल 'हाउस ऑफ़ कामंस' में पेश है। इसमें अन्याय के विरुद्ध जाँच किये जाने की बात कही

गयी है। जाँच न करना सहन नहीं किया जा सकता। यह जाँच सर्वसाधारण के सम्मुख खुले रूप में की जानी चाहिए। इस जाँच की सीमा निर्धारित करने के लिए इसमें हाल में ही घटित होने वाले ऐतिहासिक महत्त्वपूर्ण अंशों का ही उल्लेख होना चाहिए। अपराधी और उसके द्वारा किये गये अपराधों का पता लगाने के लिए अधिक दूर जाने की आवश्यकता नहीं। हम तो लॉर्ड डलहौज़ी की ओर ही संकेत करना चाहते हैं क्योंकि अवध-राज्य को झूठे बहानों की ओट में हड़प लेने के लिए सबसे बड़े अपराधियों में से ये ही बचे हैं। उन्हें अपने अपराधों के प्रायश्चित के लिए कौन-सी सज़ा दी जाय —इसका निर्णय वे स्वयं ही करें। निष्पक्ष दृष्टि से जाँच करने पर उन्हें अपने सम्मान की रक्षा करने में एड़ी-चोटी का जोर लगा कर भी सफलता मिल पाना बहुत कठिन होगा। क्या वे इस चुनौती को स्वीकार कर सकने का साहस रखते हैं ? क्या वे अपना अपराध स्वीकार कर लेंगे अथवा प्रतिवाद करेंगे ? क्या वे इंग्लैंड की पार्लियामेंट के सम्मुख अपने को अपराधी अथवा निरपराध घोषित कर सकते हैं ?

# परिशिष्ट १

## सन् १८३७ की सन्धि का उल्लेख करने वाले लॉर्ड आकलैंण्ड और लॉर्ड हार्डिज के पत्र

भारत के गवर्नर जनॅरल, अर्ल ऑफ आक्लैंड का अवध के बादशाह के नाम जुलाई सन् १८३९ को लिखे गये एक पत्र का अनुवाद :—

"साम्राज्य के गौरव के भूषण, राजकीय सिंहासन के वैभव और प्रताप के अलंकरण, अपनी दया रूपी बादलों से अपने राज्य को पुष्पित, पल्लवित तथा हरा-भरा रखने वाले सम्राट् की भाग्य-लक्ष्मी को सर्वशक्तिमान् परमात्मा अक्षुण्ण रखे।

"आपका मन दर्पण जैसा स्वच्छ है। अतः मैं आपसे कुछ छिपाये बिना यह बताना चाहता हूँ कि कुछ मास पूर्व आप के इस मित्र अर्थात् मुझमें एवं मेरे शासन निर्देशकों के बीच कुछ पत्र-व्यवहार हुआ था जिसमें ११ सितम्बर, १८३७ की संधि के विषय में उल्लेख किया गया गया था। यह संधि आपके इस मित्र अर्थात् मेरे एवं आप जैसे महान् एवं ताज की शोभा बढ़ाने वाले बादशाह के बीच हुई थी। इसमें आप की सरकार ने अतिरिक्त सैन्य शक्ति के लिए प्रतिवर्ष १६ लाख रुपये देने की स्वीकृति दी थी। लेकिन बाद में आप की इस आपत्ति पर कि इससे अवध को हानि उठानी पड़ रही है, हमारी सरकार ने अपने इस निर्णय में परिवर्तन कर दिया है।

"ब्रिटिश सरकार ने अनुभव किया कि जब से आप जैसे महान्, ऐश्वर्यशाली एवं सौभाग्यशाली शासक ने अवध के राज्यसिंहसान की शोभा बढ़ायी है, अवध की दशा में निरंतर सुधार हो रहा है। आप के यहाँ जैसा सुप्रबंध एवं उत्तम न्याय-व्यवस्था इतिहास में कहीं नहीं देखने में आयी। पिछले समय का इतिहास तो बुराइयों, कुप्रबंधों की शिकायतों, धन को लेकर होने वाले लड़ाई-झगड़ों तथा इसी प्रकार की दूसरी बातों से भरा पड़ा है। परंतु आप की तो बात ही और है। अतः आपके इस मित्र अर्थात् मुझे यह आदेश दिया गया है कि मैं अवध को अतिरिक्त सेना पर किये जानेवाले व्यय के भार से मुक्त कर दूँ, क्योंकि अवध यह भार उठाने में अब असमर्थ है। नयी संधि के अनुसार अब यह भार ब्रिटिश सरकार स्वयं उठायेगी। मुझे अपनी सरकार के आदेशों का पालन करते हुए हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। आप का मित्र होने के कारण

मैं इनका पालन करने के लिए विशेष रूप से इच्छुक हूँ। ये आदेश अपनी सरकार की उदारता, स्वतंत्रता-प्रियता एवं सहृदयता के कारण प्राप्त हो सके हैं।

"आपका यह मित्र अर्थात् मैं प्रायः इस विषय पर सोचा और कहा करता था कि संधि के कारण अवध पर अतिरिक्त सैन्य-शक्ति के व्यय का भारी बोझ आ पड़ा है। संभवतः इसी कारण से वहाँ के लोगों को कर चुकाने में बड़ी कठिनाई हो रही है। करों का इतना भारी बोझ उठा पाना उनके लिए बड़ा कठिन हो गया था। अब निश्चित रूप से उनकी यह परेशानी दूर हो गयी है। इससे केवल करदाताओं को ही नहीं, शासन के अधीनस्थ लोगों को भी काफी राहत मिलेगी। जनता को लाभ पहुँचाने की दृष्टि से यह पग उठाया गया है। इससे नयी-नयी इमारतें, बाज़ारें, सरायें तथा कई अन्य सार्वजनिक महत्त्व के निर्माण-कार्य किये जा सकते हैं तथा देश के लोगों को सुख-सुविधा के सैकड़ों साधन उपलब्ध कराये जा सकते हैं। इनसे हमेशा के लिए एक यादगार बन जायगी। मेरा यह विश्वास है कि करों को उचित रूप में न्यायपूर्ण ढंग से वसूल करने से ही जनता का कल्याण संभव है। राज्याधीन लोगों को शांति प्राप्त होना भी इसी पर निर्भर होता है। मनुष्यता, स्नेहभाव एवं मित्रता का कारण न्याय ही है। कार्य उचित ढंग से सम्पन्न कराये जाने के लिए सरकार की ओर से ईमानदार एवं कर्तव्य-परायण व्यक्ति चुने जाने चाहिए। दुष्ट प्रकृति के व्यक्तियों को इनमें स्थान देना भारी भूल है। अतः उन्हें निकाल बाहर करना ही उचित होता है। यही लोग तरह-तरह के अत्याचार करके, खुले आम रिश्वतें लेकर लोगों की दृष्टि में बादशाह को गिराने की कोशिश करते हैं। आप अपने राज्य के हर भाग में इस कार्य में संलग्न लोगों की आदतों तथा तौर-तरीकों के विषय में तो परिचित ही होंगे। अतः किस मामले में क्या करना चाहिए किसे सज़ा दी जाय और किसे छोड़ा जाय—यह सब आप को बताने की जरूरत नहीं। आप इस संबंध में ज़्यादा बेहतर जानते होंगे। आशा है आपके शासन में दिनदूनी रात चौगुनी प्रगति होती रहेगी क्योंकि आप एक सर्वगुण संपन्न व्यक्ति हैं, अतः आप से ऐसी आशा करना अनुचित न होगा। आप का यह मित्र आप के स्वास्थ्य के संबंध में सुसंवाद सुनने के लिए सदैव आतुर रहेगा। क्या अपने इस मित्र को अपने पत्र और सुंदर-सी टिप्पणियाँ भेज कर उसे कृतार्थ होने का अवसर देने की कृपा करेंगे। भगवान् से मेरी प्रार्थना है कि आप को सदैव सुखी एवं प्रसन्न बनाये रखे और आप दीर्घायु हों।"

## बादशाह की ओर से दिये गये उत्तर का अनुवाद

"आपके गुणों की कहाँ तक प्रशंसा करूँ। आप जैसे व्यक्ति दुनियाँ में मुश्किल से मिलेंगे। ऐसी दुर्लभ मित्रता पाकर आप के मित्रों की छाती मारे प्रसन्नता के फूल कर गज़ भर की हो गयी। ऐसी मित्रता एवं स्नेह भाव और कहाँ मिलेंगे। आपने

कोमल शब्दों के द्वारा संबोधित करके मेरे प्रति जो स्नेह-भाव प्रदर्शित किया है, मेरे अनुवादक तथा व्याख्याकार महोदय की सहायता ने उसका बड़ा स्पष्ट-सा चित्र मेरे मानस-पटल पर अंकित कर दिया है। आप के शब्दों से आप के निर्मल हृदय का सच्चा चित्र मेरे मानस-पटल पर अंकित कर दिया है। आपके शब्दों से आपके निर्मल हृदय का सच्चा चित्र अंकित हो जाता है। (आप के शब्दों के चयन से आप की दयालु एवं परोपकारी मनोवृत्ति का बड़ा ही स्पष्ट चित्र अंकित हो जाता है। इसके अतिरिक्त आप का स्नेह साफ झलकता नज़र आता है।) आपने अपने पत्र में जो शुभ संवाद भेजा है उससे हम लोगों को असीम प्रसन्नता हुई। आपने ११ सितम्बर, १८३७ की संधि के विषय में अपनी सरकार के परामर्शदाताओं के साथ जो वार्तालाप किया उससे आपकी व अन्य सभी निर्देशकों की उदारता एवं निःस्वार्थ भावना प्रकट होती है। आप लोगों ने मेरे ऊपर से ६० लाख रुपये प्रतिवर्ष के व्यय का भार हटा कर जो उदारता एवं महानता प्रदर्शित की है, ईश्वर अवश्य उसका फल आपको देगा (ईश्वर करे आप सदैव ही ऐसे महान बने रहें)। इस कृपा के लिए आप को लाखों धन्यवाद। आपकी उदारता एवं महानता प्रकट करने वाले पत्र से दुनियाँ भर के सभी लोगों के सम्मुख हमारी पारस्परिक मैत्री की भावना स्पष्ट रूप से प्रकट हो गयी है। कई शंकालुहृदय लोगों में आप की इस मैत्री भावना के प्रति अवश्य संदेह था। अब उनका संदेह दूर हो गया। मुझे तो आप की मैत्री का पूर्ण विश्वास था और मैं बराबर आप की प्रशंसा करता रहता था। अब तो स्वप्न में भी किसी प्रकार का संदेह करना लोगों की मूर्खता ही होगी, क्योंकि प्रत्यक्ष के लिए प्रमाण देने की आवश्यकता ही क्या है ? ईश्वर की सौगंध खा कर कहता हूँ कि आप तथा आप की सरकार ने जो न्यायप्रियता दिखलायी है, उसकी प्रशंसा करने के लिए उपयुक्त शब्दों को ढूँढ़ पाने में मैं अपने को असमर्थ पा रहा हूँ। कोई गूंगा व्यक्ति मिठाई के स्वाद का वर्णन करे भी तो कैसे ? ठीक वही दशा मेरी भी है। आपने जो मैत्री-भाव प्रदर्शित किया है उसके लिए बार-बार धन्यवाद स्वीकार कीजिए। आप की इस उदारता से यहाँ के बादशाहों के सिर से भारी सैनिक व्यय के कारण होने वाली चिंता का बोझ हट जायगा। आपकी महानता का उल्लेख करने में कलम की स्याही भी सूखी जा रही है, अतः मेरे हार्दिक भावों को प्रकट करने में असअर्थ है। आपकी दयालुता एवं उदारता के कारण हम दिनोदिन अधिक सुखी एवं समृद्ध हो सकने में समर्थ होंगे। आपने यहाँ के निवासियों के प्रति जो दयालुता प्रदर्शित की है, उससे आपके सम्मान में सदैव वृद्धि होती रहेगी।

आपने अपने मित्रतापूर्ण पत्र में यहाँ के निवासियों एवं राज्य कर्मचारियों की समृद्धि एवं शांति के लिए स्मारक इत्यादि बनवाने, ईमानदार एवं सम्माननीय कार्यकर्ताओं को नियुक्त करने तथा अत्याचारियों एवं रिश्वतखोरों को निकाल बाहर करने आदि के विषय

में जो कुछ भी लिखा है, उससे आपके निर्मल एवं दर्पण के समान स्वच्छ मस्तिष्क का पता चलता है। आपका मन भी किसी साधारण दर्पण के समान नहीं, वरन् ऐसे दर्पण के समान है जिसमें ईश्वरीय प्रकाश का भी अंश हो। इससे यह भी प्रदर्शित होता है कि पहले की और आज की परिस्थितियों में कितना अंतर आ गया है। आप ईश्वर के भेजे हुए कोई देवदूत प्रतीत होते हैं जो मेरे नौकरों तक की सुख-समृद्धि एवं भ्रष्टाचार तथा अत्याचार को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए इतने आतुर हैं और चाहते हैं कि कोई न्यायपूर्ण प्रणाली इस संबंध में लागू कर दी जाय। मैं आपका सच्चा एवं अभिन्न मित्र हूँ। अतः अंत में यह आशा प्रकट करते हुए पत्र समाप्त कर रहा हूँ कि अपने स्वस्थ होने का सुसंवाद भेज कर मुझे प्रसन्न होने का अवसर देंगे। आशा है आप पत्रोत्तर देने की कृपा कर हमें अनुग्रहीत करेंगे।

दिनांक

२८ जमादुलव्वल १२५५ हिजरी — "वास्तविक अनुवाद"

अर्थात् ८ सितम्बर, १८५६.

कलकत्ता — **थामस मेन्जाइन**

८ सितम्बर १८५६. — "अवध बादशाह के प्रतिनिधि"

इसी विषय पर निम्नलिखित पत्र इस पत्र की अपेक्षा कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। यह पत्र सन् १८४७ में लॉर्ड हॉर्डिंज ने अवध के बादशाह के नाम लिखा था :—

यह तो आपको विदित ही होगा कि सन् १८०१ की संधि के अनुसार रेज़िडेंट पर अवध के बादशाहों को आवश्यकतानुसार परामर्श देते रहने का भार सौंपा गया था। संधि में यह भी कहा गया था कि बादशाहों के लिए भी सरकार के प्रतिनिधियों से परामर्श लेते रहना होगा और उसी के अनुसार आचरण करना होगा। ऐसा करने का उद्देश्य केवल इतना ही था कि आपको ईस्ट इंडिया कंपनी की अवध के प्रति सद्भावनाओं का पूर्ण रूप से विश्वास हो जाय। ब्रिटिश सरकार और आपके बीच स्नेह की यह भावना पिछले ४६ वर्षों से इसी प्रकार चलती आ रही है। अतः सरकार यह भी आशा करती है कि अवध का बादशाह कोई शक्तिशाली व्यक्ति ही हो, जो अपने अधिकारों का अतिक्रमण किये बिना भी सम्मानजनक रीति से शासन की व्यवस्था कर सके। सरकार संधि का पालन करने में कितनी दृढ़ रही है इसका जीता-जागता प्रमाण है पंजाब और कश्मीर में उसकी असीम शक्ति। एक ओर तो सरकार संधि का बड़ी दृढ़ता से पालन कर रही थी और बादशाहों की सहायता कर रही थी, वहीं दूसरी ओर खेतिहर लोगों की उन्नति का भी पूरा ध्यान रखा गया था। उदाहरणार्थ, पिछले वर्ष सरकार ने रेजिडेंटों के लिए यह आदेश जारी किया था कि जबतक वे लोग खेतिहरों को अत्याचारों से पूण

सुरक्षा नहीं दिलवा सकेंगे, पंजाब में उनकी सुरक्षा के लिए कोई भी प्रबंध सरकार की ओर से नहीं किया जायगा। आप के पूर्वजों और ब्रिटिश सरकार के बीच हुई सन् १८०१ की संधि में जन-साधारण के लिए कुछ अधिकारों की व्यवस्था की गयी थी। अतः इसकी छठीं शर्त में कहा गया था कि :—

"बादशाह आश्वासन दे रहे हैं कि वे अपने राज्य में एक ऐसी शासन-प्रणाली स्थापित करेंगे जिससे राज्यकर्मचारियों में समृद्धि की वृद्धि होगी और वहाँ के निवासियों की धन-संपत्ति एवं जान सुरक्षित रह सकेगी। यह शासन-व्यवस्था उनके ही अधिकारियों द्वारा संचालित की जायगी।

"सन् १८०२ में नवाब वजीरुलमुल्क और गवर्नर जनरल लॉर्ड वेलेज़ली के बीच एक संधि हुई थी जिस पर दोनों ही के हस्ताक्षर हैं। इसमें भी खेतिहरों की सुरक्षा एवं उन्हें सच्चा न्याय लाभ कराने की व्यवस्था की गयी थी। इसमें कहा गया था कि बादशाह के आदेशों का पालन करवाने में सरकार उनकी सहायता करे।

"ये शर्तें पिछले ४६ वर्षों से इसी प्रकार चलती आयी हैं और बराबर उनका पालन किया जाता रहा है। इनसे इतना तो स्पष्ट हो ही जाता है कि ब्रिटिश सरकार, जहाँ एक ओर बादशाहों के अधिकारों की सुरक्षा का ध्यान रखती है, वहीं उसे खेतिहरों की सुरक्षा का भी पूरा ध्यान रहता है। सन् १८३७ की संधि में निम्नलिखित अंश देखिये :—

**सातवीं धारा :**—छठीं शर्त का संशोधन करके यह निश्चित हुआ है कि बादशाह ब्रिटिश रेज़िडेंट के सहयोग से फौरन किसी ऐसी योजना को कार्यान्वित करने पर विचार करेंगे जो उनके राज्य की पुलिस, कर-व्यवस्था तथा न्यायालयों में व्याप्त दोषों को यथाशीघ्र दूर करने में समर्थ हो सके। बादशाह यदि ब्रिटिश सरकार अथवा उसके प्रतिनिधि के परामर्शों की उपेक्षा करते दिखाई देंगे और (भगवान न करे ऐसा हो) अत्याचार तथा शासन-व्यवस्था का कुप्रबंध दूर न हुआ या यदि फिर कभी देखने में आया तो अवध के उतने भाग पर बादशाह को हटाकर अपने अधिकारियों को नियुक्त कर देने का ब्रिटिश सरकार को अधिकार होगा। ये अधिकारी उस भाग के शासन-प्रबंध की व्यवस्था जब तक आवश्यकता समझी जायगी, करते रहेंगे चाहे, वह भाग कितना ही छोटा क्यों न हो। ऐसी दशा में वहाँ की सारी आय में से खर्च की गयी धनराशि घटाकर सारा धन बादशाह के खज़ाने में जमा कर दिया जायगा। इसमें खर्च और आमदनी में एक - एक पैसे का हिसाब दिया जायगा और बाकायदा सारी रसीदें भी दी जायँगी।"

सन् १८३७ की यह संधि सन् १८०१ की संधि का ही एक संशोधित एवं विस्तृत रूप है। इसमें ब्रिटिश सरकार को आवश्यकतानुसार हस्तक्षेप कर सकने का अधिकार

दिया गया है। आशा है सन् १८०१ की संधि की छठीं धारा पर विचार करने से आपको विश्वास हो गया होगा कि अवध के खेतिहरों की सुरक्षा के विचार से गवर्नर जनरल के लिए उसकी शर्तों का कड़ाई से पालन करना आवश्यक हो गया है। वर्तमान समय में जैसी अव्यवस्था एवं विश्रृंखलता देखने में आ रही है गवर्नर जनरल चाहते हुए भी उसकी ओर से आँख बंद न करने के लिए विवश हैं। कारण यह कि उनकी अकत्तव्य-परायणता से ब्रिटिश सरकार के प्रति लोगों का विश्वास ही उठ जायगा। ऐसी परि-स्थितियों में बड़े दुःख की बात है कि अवध के शासक यह नहीं सोचते कि हस्तक्षेप न करने पर केवल गवर्नरजनरल की बदनामी ही नहीं होगी, वरन् ब्रिटिश राष्ट्र के कानूनों तथा उनकी उच्च भावनाओं को भारी आघात भी पहुँचेगा। यह बिल्कुल सत्य बात है कि ऐसे अवसरों पर कई बार मैत्रीपूर्ण रीति से सरकार की ओर से परामर्श दिया गया, लेकिन अवध सरकार ने उस पर कोई ध्यान न दिया। आशा है इस दिशा में आप अपने पूर्वजों की अपेक्षा अधिक बुद्धिमत्ता से कदम उठायेंगे, क्योंकि कहीं ऐसा न हो कि परामर्श देने के स्थान पर पूरे राज्य पर ही अधिकार कर लिया जाय। लॉर्ड बेंटिंक (जो उस समय भारत के गवर्नरजनरल थे) ने सन् १८३१ में दिवंगत बादशाह को इसी प्रकार का कोई परामर्श दिया था। उस समय गवर्नरजनरल ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि उन्होंने बादशाह को अच्छी तरह से समझा दिया था कि इसे न मानने पर क्या दशा की जायगी। तब कहीं जाकर उन्होंने अपने अधिकारियों से अनुमोदन किया था कि अवध को ब्रिटिश शासन-व्यवस्था के अंतर्गत ले लिया जाय।

"आप से एक और बात भी छिपी नहीं रहनी चाहिए क्योंकि आप के मन में अकारण ही किसी प्रकार का संदेह नहीं रहना चाहिए। सरकारी निर्देशकों की ओर से हमारे पास प्रस्ताव आये हैं कि अवध की समस्याओं को सुलझाने का काम अधिकारियों के अधीन कर दिया जाये। काफी विचार-विमर्श करने के बाद हमारे सरकारी निर्देशक इस निर्णय पर पहुँचे कि इस संबंध में गवर्नरजनरल जैसा चाहें करें। यदि अवध की दशा में सुधार न किया गया तो कौंसिल के सदस्यों को विवश होकर गवर्नर जनरल की बात मान लेनी पड़ेगी और अवध को अपने अधीन ले लेना होगा। इसी के अनुसार ५ जनवरी, १८३५ को लार्ड विलियम बेंटिक ने बादशाह को एक पत्र लिखा जिसमें उन्हें अपने राज्य-प्रबंध में सुधार कर लेने के लिए कड़ी चेतावनी दी गयी थी और संधि की शर्तों का पालन करने के लिए भी कहा गया था। सारा पत्र ऐसी ही बातों से भरा था। एक जगह पर लिखा हुआ था—" बादशाह को यह अच्छी तरह ज्ञात है कि उनके शासन प्रबंध में कुप्रबंध होने की दशा में संधि के अनुसार हमारे उनके संबंध कैसे हैं ? फिर तो यह आवश्यक हो जाता है कि गवर्नरजनरल जैसा उचित समझते हैं वैसा ही व्यवहार उनके साथ

किया जाय। इसमें किसी प्रकार की छूट न दी जानी चाहिए, बल्कि संधि का अनिवार्य रूप से पालन किया जाना चाहिए।"

"अब से तीन वर्ष पूर्व स्वर्गीय बादशाह के पास आये एक पत्र में निम्नलिखित आक्रोश व्यक्त किया गया था :—

"अवध के राज्य में कुप्रबंध अपनी चरम सीमा पर हैं, अतः इसमें पर्याप्त सुधार किया जाना बहुत आवश्यक है। मुझे बड़ा दुःख है कि रेज़िडेंट की इच्छा के विपरीत, मोदरुल महोम को अपने पद से त्यागपत्र दे देने के लिए विवश होना पड़ा। आपने जैसे ही शासन की बागडोर अपने हाथों में सँभाली उसे बर्ख़ास्त करके उसके स्थान पर एक ऐसे व्यक्ति को नियुक्त कर दिया जो रेजिडेंट द्वारा दी गयी सलाह के प्रतिकूल था। संधि के अनुसार गवर्नर जनरल को पूरा अधिकार था कि रेज़िडेंट द्वारा मनोनीत व्यक्ति को चुनने के लिए आप पर ज़ोर डाले। रेजिडेंट ने इस संबंध में आपको लिखा भी था। इतना निश्चित जानिए कि आपके द्वारा मनोनीत व्यक्ति मोदरुल महोम जब तक सच्चाई, ईमानदारी और मेहनत से काम करते रहेंगे और सर्वसाधारण के अधिकारों को छीनने की कोशिश न करेंगे—आपको रेजिडेंट का हार्दिक सहयोग मिलता रहेगा। रेजिडेंट को आदेश दिये गये हैं कि वे आपके वर्तमान मंत्री को देश की भलाई के संबंध में परामर्श देकर उन्हें सहयोग देते रहें। मुझे यह सुन कर बड़ा दुःख होता है कि अवध की अदालतों एवं कर-विभाग में अभी तक भ्रष्टाचार अपनी चरम सीमा पर है। यह भी बड़े दुःख की बात है कि आपने शासन सँभालने के कुछ ही सप्ताह बाद कुछ गुमराह करने वाले लोगों के कहने से हिंदुओं के कई शिवालयों को ध्वस्त कर देने के आदेश दिये हैं। इसी तरह की कई और शिकायतें भी सुनने में आयी हैं जिनके विषय में कुछ न कहना ही बेहतर होगा। उनके विषय में विस्तार से कुछ भी कहने से निरर्थक मनोमालिन्य ही बढ़ेगा। केवल इतना ही कह देना पर्याप्त है कि अत्याचारों और लूटखसोट आदि की बहुत-सी शिकायतें हैं जो सच सिद्ध हो चुकी हैं। सीमा पर नियुक्त हमारे अधिकारियों की ओर से उनका पुष्टीकरण भी किया जा चुका है। अतः उनकी सत्यता के संबंध में कोई संदेह नहीं रह जाता। इन सब बातों को सुन कर मैं तुरंत कुछ नहीं लिख रहा हूँ। कलकत्ता जाते समय मैं आपसे स्वयं मिल कर इस संबंध में सविस्तार बातचीत करूँगा। ऐसे समय आपका कर्त्तव्य हो जाता है कि लोगों के साथ आप पूर्ण रूप से सम्पर्क स्थापित करें जिससे वे आपकी भावनाओं को ठीक से समझ सकें। उन्हें यह भी समझाइए कि आप वास्तव में सुधार करके उन लोगों को अत्याचारों से मुक्त कराना चाहते हैं। आपका यश तभी सुरक्षित रह पायेगा जब कि आप अत्याचारों और भारी करों से लोगों की रक्षा करवाने का शीघ्र प्रबंध करें और उन्हें नष्ट होने से बचा लें।

"इस नीति के अनुसार आचरण करने में थोड़ी भी देर करना भयावह होगा क्योंकि ब्रिटिश सरकार अवध को अपने अधिकार में ले लेने का निश्चय कर चुकी है। सुधार करके आप नाम कमा सकते हैं। ईश्वर करे आपके राज्य के अपहरण की नौबत कभी न आये। लेकिन यदि मुझे कर्त्तव्य-पालन के लिए विवश होना पड़ा तो मेरे लिए यह बड़े दु:ख की बात होगी। दु:ख होने का कारण मेरी हार्दिक इच्छा है कि मेरे मित्र राज्यों के सम्मान तथा शान-शौकत में कोई कमी न आने पाये।

"इन सब मामलों में आप अभी अनुभवहीन हैं—यह मैं भली-भाँति जानता हूँ। अत: मैं आपको यह सुझाव नहीं दूँगा कि आप ब्रिटिश सरकार के निर्देशकों की बात मान कर अपने अधिकार खो बैठें। मैं यह भी नहीं चाहता कि आपके पूर्वजों के अत्याचारों के संबंध में आपसे स्पष्टीकरण की माँग की जाय। मैं आपसे यह आशा नहीं करता कि आप सारी अव्यवस्था तुरंत दूर कर देंगे क्योंकि ऐसा तो कोई चमत्कारिक ही कर सकता है, सामान्य मनुष्य नहीं। लेकिन यह बहुत आवश्यक है कि इस ओर आप तत्काल ही आवश्यक क़दम उठायें। इतना विश्वास रखिए कि देश के हक़ में सरकार चाहे जैसा भी कदम क्यों न उठाये, आपके अधिकारों पर ज़रा भी आँच न आने पायेगी। मैं जो भी व्यवस्था निश्चित करूँगा, शीघ्र ही सबके सामने आ जायेगी। अंग्रेज़ सरकार पुरानी परंपराओं में परिवर्तन लाये बिना ही खेतिहरों की सुरक्षा एवं उन्नति के लिए भरसक प्रयत्न करेगी। ऐसा कर पाना बहुत ही कठिन है। लेकिन मोदरुल महोम और रेजिडेंट को यदि आपका हार्दिक सहयोग मिलता रहा तो इसके पूरे होने में कोई संशय नहीं। ऐसे तरीके अपनाने का परिणाम कितना अच्छा हो सकता है निम्नलिखित घटना से प्रकट है :—

"नागपुर को ब्रिटिश सरकार ने पहले अपने शासन में ले लिया था। और बाद में इसे फिर इसके पुराने स्वामियों को वापस लौटा दिया गया। परिणामस्वरूप वहाँ के शासकों के अधिकारों की सुरक्षा तो हो ही गयी, साथ ही करों से आय में भी वृद्धि हो गयी। वहाँ के राज्य कर्मचारी पहले की अपेक्षा कहीं अधिक सुखी हो गये। उन्हें पहले की अपेक्षा शांति भी अधिक मिल गयी। सबसे पहला काम तो आप यह करें कि छोटे-छोटे नगरों एवं कस्बों की कुल आय का पता लगायें और उसी के अनुसार वहाँ के लोगों पर उचित कर निर्धारित कर दें। इससे खेतिहरों को पता लग जायगा कि उन पर होने वाले खर्च की लागत क्या है। यह व्यवस्था कम-से-कम पाँच वर्षों तक तो लागू रहेगी ही। बाद में भी रेजिडेंट की अनुमति लिये बिना यह समाप्त नहीं की जा सकेगी। इस नयी व्यवस्था का प्रभाव दो ही वर्षों में अर्थात् फ़सली १२५८ के प्रारंभ में ही दिखाई दे जाना चाहिए। इतना समय बीत चुकने पर ब्रिटिश अधिकारी नयी व्यवस्था की सफलता या असफलता का अनुमान कर लेंगे। लेकिन यदि गवर्नर जनरल को इतने समय के बाद भी

लोगों पर होने वाले अत्याचारों में कमी होती न दिखाई दी तो वे अपने उस अधिकार को प्रयोग में लायेंगे जो संधि के अनुसार उन्हें मिला है। प्रत्येक वर्ष के अंत में मंत्री इस योजना की प्रगति के संबंध में गवर्नर जनरल को सूचित करता रहेगा। यह सब गुप्त रूप से किया जायगा क्योंकि जन-साधारण के बीच इस विवरण को प्रकाशित करने से शायद आपकी भावनाओं को आघात पहुँचे। यदि आपके अधिकारी अपने कार्यभार को सँभाल सकने में अपने को असमर्थ पायें तो वे ब्रिटिश अधिकारियों से सहायता ले सकते हैं। ये अधिकारी राज्य के आंतरिक भागों में जाकर शासन के भ्रष्टाचार को स्वयं अपनी आँखों से देखने का प्रयास करेंगे। वे ऐसे निदान भी सुझायेंगे जिनके द्वारा नयी व्यवस्था बराबर चलती रहे। इस व्यवस्था के विषय में मंत्री, रेजिडेंट से विस्तारपूर्वक विचार-विमर्श करेंगे। यदि आपने इस दिशा में निष्ठा एवं लगन से कार्य किया तो आप देखेंगे कि दो वर्षों में अत्याचारों का कहीं नाम भी सुनने को न मिलेगा। इसके अतिरिक्त आपके अधिकारों, सम्मान एवं यहाँ की परंपराओं को किसी भी प्रकार की ठेस नहीं पहुँचेगी। यदि आपने इन सुझावों पर ध्यान न दिया अथवा कुछ समय तक व्यवहार में लाकर छोड़ दिया तो ब्रिटिश सरकार आपके साथ कैसा व्यवहार करेगी, आप भली-भाँति जानते हैं। सभी बादशाहों को पता चल जायगा कि बादशाह ने एक मैत्रीपूर्ण परामर्श को न मानकर अवध का कितना भारी अहित किया है। उस समय जो भी परिणाम होगा आप को ही उसके लिए उत्तरदायी ठहराया जायगा।

"सन् १८०१ की संधि के अनुसार अवध में इतनी बड़ी सेना रखना अनुचित है। उस संधि में कहा गया था कि नवाब वज़ीरुल मोमालिक को पैदल सैनिकों की चार बटालियनें, हाथी सवारों की एक बटालियन, २००० घुड़सवार सैनिक एवं ३०० गोलंदाजों को रखने का अधिकार है। लेकिन आपकी सेना में ५००० तोपधारी, ४०० बंदूक-धारी, ४००० घोड़सवार एवं ४०,००० पैदल सैनिक हैं। यह सेना खेतिहरों पर बलप्रयोग करने के लिए है। यदि सैनिकों की संख्या घटायी गयी तो खेतिहर विद्रोही बन जायेंगे और अपनी अलग सरकार बना लेंगे। लेकिन जो नयी व्यवस्था सोची गयी है उससे खेतिहरों को प्रसन्नता होगी। इसके द्वारा सेना की संख्या में कमी भी आसानी से की जा सकेगी और आमदनी भी बढ़ जायेगी। न्यायानुशासन एवं न्यायालय की स्थापना करना बड़ा आवश्यक है। मेरी एक प्रार्थना है। रेजिडेंट ने आपके दरबार में गायकों, संगीतकारों तथा कई दूसरे फालतू लोगों की उपस्थिति के संबंध में जो विरोध प्रकट किया था उस पर तत्काल ध्यान देने की कृपा करें। वैसे मैंने सुना है कि रेजिडेंट के परामर्श के अनुसार आपने अपने यहाँ से निम्नकोटि के लोगों को हटा दिया है। इन लोगों के कारण आप की बड़ी बदनामी होती थी। मुझे पूरी आशा है कि भविष्य में आप इस प्रकार के लोगों को

अपने यहाँ बिल्कुल स्थान नहीं देंगे। यदि कोई ऐसे व्यक्ति होंगे भी तो उन्हें नौकरी से हटा देंगे। ऐसा करके आप अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय देंगे जैसा कि नितांत आवश्यक है। अतः इन सब बातों का उत्तर विस्तारपूर्वक और एक सप्ताह के भीतर ही रेजिडेंट को अवश्य दे दीजियेगा। रेजिडेंट आपके उत्तर को मुझ तक पहुँचा देंगे। वैसे यदि आप चाहें तो छोटी-छोटी बातों पर भी मंत्री एवं रेज़िडेंट से, मौखिक रूप से बात कर सकते हैं। इतना सब लिखने का उदेश्य केवल यही है कि आपका सम्मान इसी प्रकार बना रह सके क्योंकि आप भारत भर के सभी राजाओं की अपेक्षा श्रेष्ठ एवं बुद्धिमान् हैं। अतः आप हमारे सभी मैत्रीपूर्ण परामर्शों पर ध्यान देकर अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय दे सकें। और संधि का भी आप बड़ी ईमानदारी से पालन कर सकें। इससे आपकी यशोवृद्धि भी होगी और खेतिहरों की सुरक्षा भी हो सकेगी। इससे बढ़ कर कोई दूसरी चीज़ मुझे संतोष नहीं दे सकती। विश्वास कीजिए कि मैं सदैव आपके कल्याण एवं समृद्धि की बात ही सोचता हूँ क्योंकि आपके और ब्रिटिश सरकार के बीच मित्रता एवं स्नेह की भावनाएँ काफी पुराने समय से चलती आ रही हैं। आशा है, आपके यश और सम्मान में वृद्धि होगी और खेतिहरों को भी सुख एवं संतोष प्राप्त होगा।

(हस्ताक्षर)—**हार्डिज**
(वास्तविक अनुवाद)
सैय्यद अबदुल्ला
(फारसी अनुवादक)

# परिशिष्ट २

## अवध के बादशाह का पक्ष

२५ अगस्त को 'दि मार्निग पोस्ट' में एक बड़ा महत्त्वपूर्ण लेख प्रकाशित हुआ था। उसके उत्तर के बाद में दो पत्र भी भेजे गये थे, लेकिन उन्हें उस समाचार-पत्र में स्थान नहीं दिया गया।

अंग्रेजों के प्रेसों में तो यह आम रिवाज़-सा हो गया है कि कुछ योग्य एवं प्रतिभाशाली व्यक्तियों के द्वारा कई झूठ-मूठ के तथा शरारतपूर्ण संपादकीय लिखवा कर अपने पत्रों म प्रकाशित करते हैं। जब उन आरोपों का प्रतिवाद करने के लिए कोई कुछ लिखता है तो ये पत्र उसे छापने से इनकार कर देते हैं। यह कहाँ का और कैसा न्याय है ? ऐसे न्याय को, जिसमें विचारों को प्रकट करने की भी स्वतंत्रता नहीं दी गयी हो, न्याय शब्द का मखौल उड़ाना ही कहा जायगा।

यह लेख भी इन्हीं लेखों में सम्मिलित किया जा सकता है। इसमें अवध के बादशाह को झूठ-मूठ में बदनाम करने का प्रयास किया गया है और उन्हें एक पतित शासक के रूप में प्रदर्शित किया गया है।

"इंग्लैंड के राज्य पर बड़ा भारी ख़तरा इस बात का आ गया है कि कहीं उस पर पूर्व का रंग न चढ़ जाय। पूर्व की एक अपदस्थ रानी हमारी रानी के पास यह शिकायत लेकर आयी हैं कि इंग्लैंड की रानी उस अन्याय की हिस्सेदार हैं जिसके द्वारा अवध के राजा से उसका राज्य छीन लिया गया है, उसकी प्रजा तथा करों की आय से उसे बंचित कर दिया गया है (यद्यपि ये कर कठोरता से वसूल किये जाते थे, तथा अनिच्छापूर्वक दिये जाते थे।)। साउथेम्पटन के मेयर ने उनके प्रति बड़ा ही विनम्र एवं सम्मानजनक व्यवहार प्रदर्शित किया। रानी साहिबा के साथ उनकी नौकरानियाँ भी थीं जिन्होंने रानी साहिबा को इस प्रकार सजा रखा था कि दूर से ही पता चल जाय कि वे कोई उच्च-पदाधिकारिणी हों। वे सभी अपने कर्त्तव्य-पालन में बड़ी जागरूक हैं। बादशाहों के उत्तराधिकारी राजकुमार अपनी प्रशंसा सुन कर अभिभूत हो गये। हीरे-जवाहरात से युक्त अपनी लंबी पोशाकों में सम्भवतः इसी कारण वे बड़े प्रसन्न दिखाई दे रहे हैं। उनके सेवकों की हालत भी खस्ता है। उनके मुंशी लोग अपने स्वामियों के द्वारा बतायी गयी

बातों को घंटों तक लिखने में व्यस्त रहा करते हैं। ये उत्तराधिकारी अपने अधिकारों के संबंध में कुछ-न-कुछ लिखवाते रहते हैं। इन बेचारों को पहली बार ऐसी जगह पर आने में कितना अजीब मालूम हुआ होगा जहाँ की संतानों ने बिना किसी प्रकार के संघर्ष के उनके राज्य पर अधिकार कर लिया हो। सुनने में आया है कि रीजेंट पार्क के पाँच मकानों में ये लोग मिलजुल कर ठहरे हुए हैं।

"यह समझ में नहीं आता कि अवध से इस प्रकार यहाँ अभियान करने का क्या उद्देश्य हो सकता है। यही हो सकता है कि वे देखना चाहते हों कि जिन लोगों ने उनकी कमज़ोरियों का लाभ उठा कर उन्हें आज इस हालत में पहुँचा दिया है, उनका जीवन और रहन-सहन किस प्रकार का होता है। यह विचार एकदम मूर्खतापूर्ण है जो केवल पूर्वी देशों (भारत आदि) के लोगों के ही मस्तिष्क में आ सकता है कि इंग्लैंड की सरकार के बड़े-बड़े अधिकारी अपने कृत्यों के लिए दुःख प्रकट करेंगे। ऐसे कार्यों से किसी प्रकार के लाभ की आशा करना व्यर्थ है। इससे अवध के कुछ दुष्ट लोगों को भले ही कुछ लाभ मिल जाय, इनके छिने हुए राज्य तो मिलने से रहे। इस दशा में तो हमें इनकी बुद्धि पर तरस ही आता है। ऐसी योजना बनाने से क्या लाभ जिससे कोई सुपरिणाम की आशा ही न की जा सके। लार्ड डलहौज़ी ने अवध में जो अपहरण इत्यादि किया था, काफी सोच-विचार कर किया था। अतः इसकी थोड़ी भी आशा नहीं है कि अवध की राजमाता को, जो बात मनवाने के लिए अपने दल-बल को लेकर आयी हैं, अपने प्रयास में सफलता मिल सकेगी।

"अवध की इस कहानी के तथ्य एकदम सीधे-सादे हैं। अवध क्षेत्रफल एवं जनसंख्या की दृष्टि से स्काटलैण्ड के लगभग बराबर ही होगा। अवध के प्राप्त हो जाने से हमारी कठिनाइयाँ कुछ बढ़ी ही हैं—कम नहीं हुई हैं। कारण यह है कि देश भर के लगभग सभी बादशाहों को हमारे उस आश्वासन पर पूरा विश्वास था कि विदेशी शत्रुओं के आक्रमण से हम उनके प्रदेशों की रक्षा करेंगे। वे लोग जनता की भलाई की चिंता छोड़ कर निश्चिंत थे। अतः रागरंग में उनका लिप्त हो जाना कोई अस्वाभाविक बात तो थी नहीं। यही बात अवध राज्य में थी। उन्हें बार-बार चेतावनी दी गयी कि वे अपनी सुरक्षा के लिए रखी गयी शर्तें भंग कर रहे हैं। जब स्थिति बिल्कुल नियंत्रण के बाहर हो गयी और देश की न्याय-व्यवस्था एवं कानून खुले आम छिन्न-भिन्न किये जाने लगे तो लॉर्ड डलहौज़ी को उस पर अधिकार कर लेने के लिए विवश हो जाना पड़ा। इस प्रकार की गड़बड़ी वाले राज्य हमेशा खतरनाक होते हैं, अतः उन्हें इसी प्रकार नहीं छोड़ा जा सकता। ऐसा करके हमने कोई बुराई नहीं की। हमारे उठाये गये इस कदम का किसी ओर से भी विरोध नहीं किया गया। जो लोग राज्य के प्रति अपने कर्त्तव्य को भूले हुए थे, उन्हें

हमने हटाकर अच्छाई ही की है, बुराई नहीं। हमने जो कुछ भी किया, हर समझदार व्यक्ति उसका समर्थन करेगा। अवध के बादशाह के एकतंत्र शासन को समाप्त कर देने के लिए हम विवश हो गये थे क्योंकि उसकी कमजोरियों के कारण उसके राज्य कर्मचारियों एवं पड़ोसी प्रदेशों को भी खतरा था। हमने उसे भारी अवकाश वृत्ति (पेंशन) दिला कर उन जिम्मेदारियों से छुट्टी दिला दी जिनके लिए वह सर्वथा अनुपयुक्त था। हमें पता चला है कि निकट भविष्य में वह यहाँ आने वाला है। उसकी ग़लतियों को भुला कर हम उसका हार्दिक स्वागत करने के लिए तैयार हैं। हम उसे यह जता देंगे कि भारत की शासन-व्यवस्था इंग्लैंड का प्रतिबिम्ब मात्र ही है। गवर्नर जनरल ने जो भी किया इंग्लैंड की साम्राज्ञी की इच्छा के अनुसार ही किया। हम उन्हें यह भी जतला देंगें कि इंग्लैंड किसी जगह को तब तक अपने अधिकार में नहीं लेता जब तक इसके लिए उसे मजबूर न कर दिया गया हो। किसी तानाशाह के कहने मात्र से हम अपने बढ़े हुए कदम को वापस नहीं लौटा सकते। हमें ऐसे कर्तव्यहीन एवं शक्ति का दुरुपयोग करने वाले लोगों की अपेक्षा अवध की जनता के हित का बड़ा ध्यान है।"

## "दि मार्निंग पोस्ट" के सम्पादक के नाम एक पत्र

श्रीमान् जी,

एक प्रख्यात महिला के संबंध में जिस प्रकार अभद्रतापूण ढंग से आपके पत्र म विचार प्रकट किये गए हैं—विश्वास कीजिए—हमें कोई आश्चर्य नहीं हुआ। अपना पराक्रम प्रकट करने का जमाना तो अब रहा नहीं। परंतु आदरणीय पत्रकार महोदय ने एक महिला की भावनाओं को ठेस पहुँचा कर इसका प्रयास अवश्य किया है। वह महिला जो कि इन पत्रकार महोदय का शिकार बनायी गयी है कोई साधारण महिला नहीं, वरन् एक शाही घराने से संबंधित सम्भ्रांत महिला हैं। महानता एवं निष्ठा की जो मिसाल उन्होंने कायम की है वह अपूर्व है। लीडेन हाल स्ट्रीट के लोगों की इतनी संकुचित एवं अन्यायपूर्ण मनोवृत्ति की मिसाल मिलना भी कठिन है जैसा आपने लिखने का कष्ट किया है।

श्रीमन्! जिन्हें आपने भ्रमवश पदच्युत बादशाह की जीवनसंगिनी समझ लिया है वास्तव में वह उनकी माँ हैं। कितना साहस है उनमें? जिस महिला ने कलकत्ते पहुँचने के पहले समुद्र तो दूर रहा, नाव तक के दर्शन न किये हों, वह इस लंबी यात्रा में आनेवाली सभी असुविधाओं एवं खतरों की चिंता छोड़ कर केवल अपने बेटे के लिए न्याय माँगने इंग्लैंड तक चली आयें—क्या कम साहस की बात है? एक माता के स्नेह के इस मार्मिक उदाहरण पर कोई पागल व्यक्ति ही आँखें मूंदे बैठा रह सकता है। प्रत्येक सहृदय व्यक्ति का ध्यान इस ओर आकर्षित हुए बिना नहीं रह सकेगा। उनकी माँगों में काफी बल है।

केवल हमारी सहानुभूति की दृष्टि से ही नहीं, वरन् राजनीतिक परिस्थितियों के अनुसार भी उनकी माँगें पूर्ण न्यायोचित हैं।

उस समय को क्यों भुला दिया गया जब हमारी दशा अत्यंत शोचनीय हो रही थी और हमारे खजाने खाली हो चले थे। उस समय इन्हीं राजमाता के स्वजनों ने ही अपने सैनिक एवं धन भेज कर हमें डूबने से उबार लिया था। उस सहायता का मूल्य उस समय कितना अधिक था इसका अनुमान निम्नलिखित पत्रों द्वारा लगाया जा सकता है जो उस समय के भारत के गवर्नर जनरल लार्ड एमहर्स्ट ने मीरडांट रिकेट को लिखे थे। रिकेट उस समय अवध में ब्रिटिश रेजिडेंट थे।

बैरकपोरज़,२१ अगस्त, १८२५

प्रिय महोदय,

यद्यपि समयाभाव है, फिर भी आपके संदेशवाहक को, मैं आपके ११ तारीख वाले उस पत्र के लिए अपना हार्दिक संतोष प्रकट किये बिना नहीं भेज पा रहा हूँ जिसमें आपके अत्यन्त कठिन एवं नाजुक-से संधिपत्र को समाप्तप्राय घोषित किया गया है।

(हस्ताक्षर) **"एमहर्स्ट"**

श्री एम० रिकेट की सेवा में
प्रेषित

"१६ सितम्बर १८२५

प्रिय महोदय,

(सारांश)

मैं एक बार फिर कहना चाहता हूँ कि आपकी ऋण प्राप्त कर सकने वाली संधि के कारण जनता को काफी लाभ पहुँचा है। इसके द्वारा वास्तव में आपने बड़ी महत्त्वपूर्ण सेवा की है।

(हस्ताक्षर) **"एमहर्स्ट"**

प्रिय महोदय,

आपका १९ तारीख वाला पत्र मुझे अभी मिला है। इससे आपकी बुद्धिमत्ता प्रकट होती है। इसे लेकर मैं कौंसिल में जा रहा हूँ। इस समय तो मुझे केवल इतना ही कहना है कि आपसे पहले वाली संधि के द्वारा युद्ध के लिए आवश्यक काफी बड़ी धनराशि प्राप्त हुई थी। इससे हमें बड़ी सहायता मिली थी। दूसरी बार की संधि से प्राप्त होने वाली धनराशि भी हमें काफी सहायता दे सकेगी। इस समय धन की हमें बहुत आवश्यकता है। आपने इस प्रकार अपनी सरकार की जितनी बड़ी अमूल्य सेवा की है, उसके लिए मुझे हार्दिक धन्यवाद प्रकट करने की अनुमति देने की कृपा करें।

(हस्ताक्षर) **"एमहर्स्ट"**

श्री एम० रिकेट की सेवा में,

अवध के शासकों ने हर समय हर अवसर पर यूरोपियन शासकों के प्रति उदारता दिखलायी है। यूरोप के लोगों के प्रति भी उनका व्यवहार इसी प्रकार का रहा है। यूरोप के जो लोग कभी अवध आये हैं उनकी यात्रावर्णन की पुस्तकों तथा उनके व्यक्तिगत पत्रों में अवध की बड़ी सराहना की गयी है। लेकिन जैसा व्यवहार अवध के बादशाह की माँ के साथ किया गया है उसे देख कर मस्तक लज्जा से झुक जाता है। इससे हम, लोगों की नज़रों में उठ सकेंगे—ऐसा लगता तो नहीं।

श्रीमन्, यदि इस जगह पर अवध की राजमाता के स्थान पर कोई जर्मन राजकुमार होता तो उसके आगमन पर उसके स्वागत के लिए सभी उच्च अधिकारियों को सतर्क रहने का आदेश दे दिया गया होता। उसके स्वागत के लिए स्पेशल ट्रेनें चलतीं, दावतें, नाच-गाने इत्यादि अनेक प्रकार की धूम-धाम की जाती, भले ही जर्मनी से रत्ती भर लाभ की आशा न होती। लेकिन पिछले दिवंगत बादशाह की संगिनी, अभी हाल में ही हटाये गये बादशाह की बूढ़ी माँ, तथा अन्य दूसरे बादशाहों की तरफ किसी का भी ध्यान नहीं जाता है। ये सदैव हमारे मित्र रहे हैं। और इनके उपकारों के ऋण से हम सदैव ही दबे रहेंगे। इनके प्रति क्या हमारा कुछ भी कर्त्तव्य नहीं है?

अगले पत्र में मैं आपको यह दिखलाने का प्रयास करूँगा कि इन लोगों के प्रति आपकी जो गत धारणाएँ बन गयी हैं, वे अकारण हैं। क्योंकि वे त्रुटिपूर्ण प्रमाणों पर आधारित हैं, अतः उन्हें विशेष महत्त्व नहीं दिया जा सकता।

सदैव आपका ही आज्ञाकारी बने रहने का इच्छुक
**जान डेवेन पोर्ट**
६. ग्रोव टेरेंस, सेंट जान्स उड,
अगस्त २६, १८५६.

## "दि मार्निंग पोस्ट" के सम्पादक के नाम एक पत्र

महोदय,

इस पत्र का उद्देश्य, जैसा कि मैंने पिछले पत्र में लिखा था, यह सिद्ध करना है कि आपने २५ तारीख वाले लेख में जिन मान्यताओं को आधार माना है, वे सत्य के बिल्कुल विपरीत हैं। अतः उनमें कोई दम नहीं है।

आप लिखते हैं :—

१. यह हस्तांतरण बिना किसी विरोध के किया गया, अतः इससे पता चलता है कि अवध के निवासी इसके पक्ष में थे।

२. इसके लिए किसी ने भी दुःख नहीं प्रकट किया।

३. बादशाह के कर्मचारियों ने भी कोई विरोध नहीं प्रकट किया।

४. हस्तांतरण करने के तरीके के औचित्य के संबंध में कोई भी व्यक्ति सहमत हुए बिना नहीं रह सकता।

अब मैं क्रमशः इनके उत्तर देने का प्रयास करूँगा।

१. यह ठीक है कि इस कार्य में शांति स्थापित रही, लेकिन उसका कारण यह था कि बादशाह रक्तपात से दूर रहना चाहते थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि ब्रिटिश राष्ट्र और पार्लियामेंट में अंततः उन्हें न्याय अवश्य मिल जायगा। अतः उन्होंने अपने कर्मचारियों को किसी प्रकार का विरोध न प्रकट करने के आदेश दे रखे थे। मेरे कथन की सत्यता निम्न-लिखित पत्र-व्यवहार से प्रमाणित हो जायगी जो बादशाह और ब्रिटिश रेजिडेंट के बीच हुआ था।

"रेजिडेंट बादशाह को सूचित करते हैं, कि उन्हें ज्ञात हुआ है कि बादशाह ने अपने सभी सैनिक पुलिस तथा कोतवाली आदि बरखास्त कर दिये हैं। अतः रेजिडेंट बादशाह को यह सूचित करना आवश्यक समझते हैं कि जब तक ब्रिटिश सरकार अवध की शासन-व्यवस्था नहीं सँभाल लेती तब तक के लिए इन लोगों को बरखास्त कर देना उचित नहीं। बृहस्पतिवार की सुबह तक के लिए ब्रिटिश सरकार यह भार सँभाल सकने में असमर्थ है। दुर्भाग्य से इस बीच यदि उपद्रव उठ खड़ा होता है तो उसका उत्तरदायित्व आप पर होगा और आप से इसका उत्तर माँगा जायगा।"

यह पत्र पाते ही बादशाह ने तत्काल ही यह आदेश जारी किया।

"सभी आमिलों, ताल्लुकेदारों, मालगुजारों, जमींदारों, सेना के अधिकारियों तथा सभी राज्य कर्मचारियों को सूचित किया जाता है कि ब्रिटिश सरकर के आदेश के अनुसार अवध की शासन-व्यवस्था का संचालन अब से उसी के द्वारा नियुक्त किये गये लोगों के हाथों में रहेगा। इसलिए उन्हीं लोगों के आदेश का पालन किया जाना चाहिए और कर इत्यादि भी उन्हीं को चुकाये जाने चाहिए। आप लोग वफादारी से ब्रिटिश सरकार की सेवा करते रहें। इसके लिए किसी प्रकार का विरोध अथवा विद्रोह नहीं किया जायगा। यदि किसी प्रकार का विरोध या विद्रोह किया गया तो ब्रिटिश सरकार के कर्मचारी ऐसे लोगों को दंडित करेंगे।

"जब बादशाह कलकत्ते में गवर्नर जनरल के पास अपनी फरियाद लेकर जायँ और बाद में इसी उद्देश्य से महारानी साहिबा के साथ इंग्लैंड जायँ तो आप लोग उनका साथ देने की कोशिश करें। पत्र में तारीख नहीं लिखी है। फरवरी १८५६ केवल इतना ही लिखा है।

"अधिकारियों एवं सिपाहियों को आदेश"

"आप लोगों को सूचित किया जाता है कि आप लोग अपने पदों पर पहले की तरह ही बने रहें और सदैव की तरह ही अपने कर्त्तव्य-पालन के लिए तत्पर रहें। किसी भी परिस्थिति में आप लोग कोई गैरकानूनी एवं अशांति उत्पन्न करने वाले कार्य न करें। कोई भी ऐसा आचरण न प्रदर्शित करें जो एक सिपाही की मर्यादाओं के प्रतिकूल हो।

"आप लोगों का वेतन, ईस्ट इंडिया कंपनी चुकायेगी। यहाँ तक आने पर हुए खर्च को काट कर ब्रिटिश कंपनी आपको वेतन चुका देगी।

"कोई भी व्यक्ति अपने पद को छोड़े नहीं और इन आदेशों की ओर विशेष रूप से ध्यान दे।

## अवध के बादशाह का पत्र मेजर जनरल आउटरम के नाम

(आवश्यक संबोधन और अभिवादन के पश्चात्)

बादशाह के यूरोप जाने के संबंध में रेजिडेंट ने रेज़ीडेंसी के वकील से जो कुछ कहा था उसके संबंध में बादशाह ने लिखा है कि उनके द्वारा जो आदेश जारी किये गये थे वे निम्नलिखित कारणों से थे :—

जैसे ही राज्य कर्मचारियों को इस नये प्रबंध की सूचना मिली थी, उन्होंने खाना-पीना तक छोड़ दिया था और उनके दुःख का पारावार न रहा। यदि सभी कर्मचारी इसी प्रकार शोक से अभिभूत होकर बैठ गये तो कर इत्यादि वसूल करने में बड़ी परेशानी हो सकती थी। यही सोच कर बादशाह ने उन सबको ऐसा न करने के लिए आदेश भेजे थे। ये आदेश रेजीडेंट के संदेश मिलने से पहले ही भेजे जा चुके थे।

बादशाह के इस प्रस्ताव की सराहना की जानी चाहिए कि उन्हें अच्छी तरह से ज्ञात था कि उनकी सेना के प्रत्येक हिंदू और मुलमान सैनिक ने शपथ ले रखी है कि अपने बादशाह और देश की रक्षा के लिए वे युद्ध करते-करते अपने प्राण गँवा देंगे। दूसरी ओर बादशाह यह भी जानते थे कि ब्रिटिश सेना के अधिकांश सैनिक अवध के ही रहने वाले थे और उन्होंने अपने ही सगे-संबंधियों पर गोली चलाने से इनकार कर दिया था। राजाओं और जमींदारों नें भी उन्हें बार-बार आश्वासन दिलाया था कि यदि उन्हें कंपनी द्वारा किये जाने वाले हस्तांतरण को रोकने के लिए अधिकार मिल जायँ तो वे लोग एक लाख आदमियों और १०० तोपें लेकर कंपनी का कड़ा मुकाबला करने के लिए तैयार हैं। बादशाह द्वारा इस सहायता को स्वीकार न किये जाने से बड़ा ही असंतोष फैल गया था। बादशाह ने केवल इतना ही नहीं किया, जिस समय ब्रिटिश सेनाएँ अवध की ओर बढ़ रहीं थी, यूरोपीय लोगों तथा वहाँ के निवासियों के काम में आने वाली हर प्रकार की वस्तुओं से लस करके ५००० आदमियों को उनके पास भेजा। इतने लोगों को एकत्र देख कर ब्रिगेडियर जनरल

ग्रे को संदेह हुआ कि ये लोग सम्भवतः उनसे युद्ध करना चाहते हैं, लेकिन पता लगाने पर जो उत्तर उन्हें मिला वह उनके लिए अप्रत्याशित था। उन लोगों का उत्तर था—"अपने बादशाह के मित्रों से युद्ध करने के लिए हम नहीं आये हैं। हमें तो केवल इसलिए भेजा गया है कि आप लोगों को जिस चीज़ की भी आवश्यकता हो—हम आप तक पहुँचा दें।" क्या महानता एवं उदारशीलता के इस अविस्मरणीय उदाहरण से जनरल ग्रे तथा उनके सैनिक चकित से नहीं रह गये थे ?

२. बादशाह ने जब अपने कर्मचारियों तथा अन्य लोगों के द्वारा सहायता दिये जाने के प्रस्तव को अस्वीकार कर दिया और उन्हें सूचित किया कि कंपनी के द्वारा किये गये अन्याय एवं अत्याचारों के संबंध में न्याय की माँग लेकर वह पहले कलकत्ता और फिर इंग्लैंड जाने वाले हैं तो उन सभी लोगों ने अवध छोड़ कर उनके साथ ही चल देने का दृढ़ निश्चय कर लिया। बादशाह के बहुत मना करने पर भी असंख्य स्त्री-पुरुष जुलूस बना बना कर दुःख प्रदर्शित करते हुए कानपुर तक और कई लोग तो कलकत्ते तक भी, उनके साथ-साथ जा पहुँचे। बड़ी ही कठिनाई से बादशाह उन्हें अपने-अपने घरों को वापस लौट जाने के लिए राज़ी कर पाये। अपने बादशाह के प्रति लोगों का इतना लगाव होना असाधारण ही कहा जायगा। अवध के निवासी अपनी जन्मभूमि को छोड़ने के लिए किसी भी तरह तैयार न थे। इस तथ्य की सत्यता उन उत्तरों से भी सिद्ध हो जायगी जो भिन्न-भिन्न मैजिस्ट्रेटों की ओर से रेज़िडेंट जरल आउटरम को दिये गये थे। ये मैजिस्ट्रेट इस उद्देश्य से नियुक्त किये गये थे कि वे पता लगायें कि क्या यहाँ के निवासी अवध छोड़ कर हमारे साथ मिल सकने के लिए तैयार हैं। इस जाँच में जो उत्तर मिले वे इस प्रकार थे:—

जौनपुर मैजिस्ट्रेसी,
४ जनवरी, १८५५

"मुझ तो ऐसा नहीं सुनने में आया कि हाल में ही अवध की जनसंख्या में कुछ कमी हुई हो, या अवध से कोई व्यक्ति भाग कर हमारी सीमाओं में आया हो।"

(हस्ताक्षर) **"सी० टी० ले बास"**
( C. T. LE Bas )

फर्रुखाबाद मैजिस्ट्रेसी,
१५ फरवरी १८५५.

"मुझे विश्वास है कि अवध छोड़ कर हमारी सीमा में बस जाने वाले लोगों की संख्या बहुत ही सीमित है।"

(हस्ताक्षर) **"डब्ल्यू० सी० एस० कनिंघम"**
( W. C. S. Conringham )

लखनऊ, २७ दिसम्बर, १८५४.

"मेरे पास अब तक ऐसी कोई सूचना नहीं आयी कि अवध के लोग हमसे मिल जाने के लिए कभी तैयार हुए हों।"

(हस्ताक्षर) **"मेजर ट्रंप"**

"(कमान्डेन्ट आफ दि सेकेंड अवध इनफन्ट्री)"

३. आपकी बातों का खंडन इस साधारण-सी बात से भी किया जा सकता है कि राजमाता (अवध के बादशाह की माँ) अपने साथ ५०,००० से अधिक व्यक्तियों के हस्ताक्षरों से युक्त एक प्रार्थना पत्र भी लेकर आयी हैं। इसमें सभी लोगों ने ईस्ट इंडिया कंपनी की निरंकुश शक्ति के लिए विरोध प्रकट किया है और अपने बादशाह के प्रति लगाव का प्रदशन किया है। इसे अगली बार दोनों 'हाउसेज़ आफ पार्लियामेंट' में भी पेश किया जायगा।

४. निम्नलिखित तथ्यों से भी कंपनी की उदारता का कहीं दूर तक पता नहीं चलता।

"लगभग १००,००० व्यक्ति पूर्ण रूप से बादशाह के द्वारा दी जाने वाली सहायता पर ही निर्भर थे। बादशाह के 'सिंहासन-च्युत' होते ही इनमें से अधिकांश व्यक्ति भूख से तड़प-तड़प कर मर गये।

बादशाह के हटते ही उनके सभी अधिकारियों, परिचारकों, महावतों साईसों और घरेलू नौकरों को नौकरी से अलग कर दिया गया। उनकी आजीविका के सभी साधन उनसे छीन लिये गये और उन्हें कंगालों की हालत में पहुँचा दिया गया।

"श्रीमन्, यही वे 'उदारतापूर्ण' तरीके हैं—जिनके द्वारा लॉर्ड डलहौज़ी ने अवध का हस्तांतरण किया था। यह उदारता बिल्कुल उसी तरह की थी जैसी इन महानुभाव (डलहौज़ी) ने इस हस्तांतरण के तीन सप्ताह के बाद उस बदनसीब तानाशाह (?) को निम्नलिखित पत्र भेज कर दिखायी थी। पत्र में कोरी भावुकता का ही प्रदर्शन किया गया था—कोई मतलब की बात इससे ढूंढ़ निकालना असंभव है।" भगवान् बचाये ऐसे मित्रों से!"

मार्क्विस आफ लॉर्ड डलहौज़ी के बादशाह के नाम लिखे गये २९ फरवरी, १८५६ वाले पत्र का अनुवाद :—

"कुछ समय से आपके इस मित्र यानी मेरा इरादा इंग्लैंड वापस लौट जाने का हो रहा था। इसीलिए मैंन गवर्नर जनरल के पद से अपना त्यागपत्र साम्राज्ञी की स्वीकृति के लिए भेज दिया था। उन्होंने सहर्ष इसके लिए अनुमति दे दी है। मेरे उत्तराधिकारी के रूप में लार्ड कनिंग को नियुक्त कर दिया गया है। लार्ड—कैनिंग बहुत ही उच्च एवं सम्मानित श्रेणी के व्यक्ति हैं। और अपनी सजगता के लिए विख्यात हैं। उनके द्वारा किये गये महान् कार्यों से भी उन्हें काफी ख्याति प्राप्त हुई है। कुछ ही दिनों में मैं इंग्लैंड के लिए

रवाना हो जाऊंगा। मैंने जब से इस देश में रहना शुरू किया है तब से अवध सरकार और ईस्ट इंडिया कंपनी के बीच मित्रता के बंधन दिनोदिन दृढ़ होते रहे हैं। इस मित्रता की नींव आपके पूर्वजों ने रखी थी और आज वह पहले की अपेक्षा और भी अधिक मजबूत हो गयी है। इसी कारण मुझे बड़ा संतोष मिला है। इसमें संदेह नहीं कि लार्ड कैनिंग भी मेरी ही भाँति इस मित्रता को और भी अधिक दृढ़ करने का प्रयास करते रहेंगे। वे भी इस प्रकार संधियों और इकरारनामों का ध्यान रखते रहेंगे, इसमें भी कोई संदेह नहीं। मैं भी लार्ड कैनिंग को अच्छी तरह समझा दूँगा कि अवध के साथ सुखद संबंध बनाये रखने के लिए किन परंपराओं पर चलना आवश्यक है और इस मित्रता को किस प्रकार से बनाये रखा जा सकता है। मुझे पूरा विश्वास है कि आपकी सच्ची तथा विशेष (व्यक्तिगत) मित्रता को मैं कभी भी भूल न सकूंगा। आप से भले ही कितनी दूर चला जाऊँ, लेकिन आपकी मित्रता की जो गहरी छाप मेरे मन में लगी है, वह कभी भी नहीं मिट सकती। इसके अतिरिक्त मेरी यह इच्छा भी कि आप सदैव सुखी एवं समृद्ध रहें, सदैव ही इसी प्रकार बनी रहेगी। आशा है अपना हितैषी समझ कर अपने स्वास्थ्य एवं कल्याण के समाचार इसी प्रकार से मुझे देते रहने की कृपा करेंगे।

**टिप्पणी** :—संबोधन करते समय "भगवान् सदैव आप के राज्य को सुरक्षित बनाये रखे" के स्थान पर "आप का पद सदैव बना रहे" लिखा गया है।

(मूल से अनूदित) **राबर्ट बिल्बर फ्रोर्स बर्ड**

श्रीमन् कोई भी व्यक्ति अगर थोड़ा भी समझदार होगा तो वह बड़ी आसानी से समझ सकता है कि इतने उच्च पद पर आसीन व्यक्ति पत्र लिखते समय कितनी नीचता पर उतर आया। विश्वास मानिए अपने बड़े-से-बड़े अत्याचार पर पर्दा डाल कर लोगों की दृष्टि में आप शायद अब भी भले बने रह सकते हों, लेकिन इस पत्र की भावना पर पर्दा डाल सकना आपके लिए असंभव है।

आपका सदैव आज्ञाकारी बना रहने वाला सेवक

**जॉन डेवेनपोर्ट**

सेंट जान्स उड, लंदन।

६ ग्रोव टेरेस
२७ अगस्त १८५६